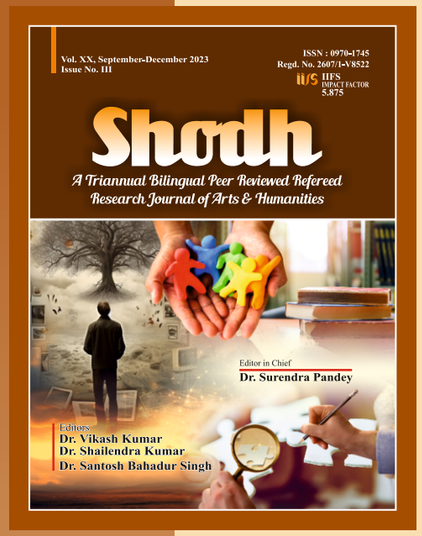

Published by

History & Historical Writing Association,
U.P., Varanasi (INDIA)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari,
Varanasi, Email: shodh1984@gmail.com

Shodh A Triannual Bilingual Refereed Journal of Arts & Humanities ■ Sept.-Dec. 2023

Vol. XX, September-December 2023
Issue No. III

ISSN : 0970-1745
Regd. No. 2607/1-V8522
IIFS IMPACT FACTOR 5.875

Shodh

A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Arts & Humanities

Editor in Chief
Dr. Surendra Pandey

Editors
Dr. Vikash Kumar
Dr. Shailendra Kumar
Dr. Santosh Bahadur Singh

Vol. XX Issue No. III, Sept.–Dec. 2023, ISSN: 0970-1745 **Impact Factor 5.875**

Regd. No. 2607/1-V8522 ISSN: 0970-1745

SHODH

[A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Art & Humanities]

Chief Editor
Dr. Surendra Pandey
Editors
Dr. Vikash Kumar
Dr. Shailendra Kumar
Dr. Santosh Bahadur Singh

Published by
History & Historical Writing Association, U.P., Varanasi (India)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari, Varanasi
Mob. 9451173404, 9868477818, 9470828492 Email: shodh1984@gmail.com

Printed by
Akhand Publishing House, Delhi (India)
L-9/A, First Floor, Street No.42, Sadatpur Extension, Delhi
Mob. 9968628081, 9555149955, 9013387535 Email: akhandpublishing@yahoo.com

Note: The responsibility of the facts given and opinions expressed in articles of journal is solely that of individual author and not to the publisher.

First Issue Publication 1984

Chief Editor :

Dr. Surendra Pandey
Assistant Professor,
Kuba P.G. College,
Dariyapur, Newada, Azamgarh

Editors

Dr. Vikash Kumar
Assistant Professor,
Department of Hindi,
Sri Varshney College, Aligarh, U.P

Dr. Shailendra Kumar
Assistant Professor,
Department of Management
Sikkim University, Sikkim

Dr. Santosh Bahadur Singh
Assistant Professor
Department of English
Lady Irwin College, University of Delhi

Executive-Editors

Dr. Varsha Singh
Associate Professor
Department of English
Deshbandhu College, University of Delhi

Dr. Arun Kumar Mishra
Assistant Profesar
Hindi M D PG College
Pratapgarh, UP

Co-Editors

Dr. Abhishekh Kumar Pandey
Principal
Vidya College of Professional Studies,
Patna Bihar

Dr. Sudhir Kumar Sah
Former Research Scholar
Faculty in P. G. Deptt of
Commerce TMBU Bhagalpur,
Bihar

Sub-Editors

Dr. Ravendra Rajput
Associate Professor, Deptt. of Teacher Education
Shri Varshney College Aligarh

Dr. Abhay Kumar
Assistant Professor, BRM College,
Munger, Munger University, Bihar

Vol. XX Issue No. III, Sept.–Dec. 2023, ISSN: 0970-1745 **Impact Factor 5.875**

SHODH

.....A Triannual Bilingual Refereed Research Journals of Arts & Humanities

Patrons
Dr Jai Ram Singh
Principle Degree College, Palahipatti, Varanasi

Editorial Board

1. Prof. Hirocko, Nagasaki, Osaka University, Japan.
2. Prof. Ashok Singh, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
3. Prof. Ravindra Nath Singh, AIHC Department, Banaras Hindu University.
4. Prof. Rangnath Pathak, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
5. Prof. Chandrakala Tripathi, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
6. Prof. Anita Singh, Department of English, Banaras Hindu University.
7. Prof. Abha Singh, Pro Vice Chancellor, B.N. Mandal University, Bihar.
8. Prof. Sharvesh Pandey, Principal DCSK PG College, Mau, UP
9. Prof. Yogesh Kumar Sharma, Department of English, Swami Shraddhanand College, University of Delhi.
10. Prof. Sanghmitra, Department of Political Science, Bodoland University Assam.
11. Dr Nirmla Kumari, Associate Professor, Hindi Department, Shri Varshney College, Aligarh.
12. Dr Varsha Singh Associate Professor English Department, Deshbandhu College, University of Delhi.
13. Dr Anupam Kumar, Associate Professor of English, SGT University, Budhera, Badli Road, Gurugram, Haryana
14. Dr O.P. Singh, Harishchandra P.G. College, Varanasi.
15. Santosh Patel, Assistant Registrar, Delhi Teacher University, Delhi.
16. Dr Ratnesh Tripathi, Assistant Professor, Department of History, Satyawati College, University of Delhi.

17. Dr Vikash Kumar Singh, Assistant Professor, AIHC Department, Banaras Hindu University.

18. Satyendra Kumar, Assistant Professor, Department of English, Kirori Mal College, University of Delhi.

19. Dr. Shubhanku Kochar, Assistant Professor, Department of English, Guru Govind Singh Indraprastha University, Dwarka New Delhi.

20. Vijay kumar, Assistant Professor, Department of English, Satyawati College, University of Delhi.

21. Dr Bhartendu Kumar Pathak, Assistant Professor, Department of Hindi, Kashmir University, Shrinagar (J&K).

22. Dr Priyadarshini, Assistant Professor, Department of Hindi, The English Foreign Languages University, Haiderabad, Telangana.

23. Dr. Rashmika Mishra Assistant professor department of vocal music Mmv Bhu

24. Dr. Bhupendra Kumar Assistant Professor Department of Sanskrit Kirori Mal College, University of Delhi.

विषय-सूची
Contents

PART–I

1. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् छात्राओं में महिला सशक्तिकरण का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन 3
—डॉ० राकेश कुमार

2. महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुवाद कर्म का स्वाधीनता एवं पुनर्जागरण से सम्बन्ध 16
—सदरे आलम

3. अमृतपुरुष डॉ. अमरेन्द्र रो अंगिका बाल-साहित्य 21
—डॉ० श्वेता भारती

4. गाँधीजी एवं उनका दर्शन 29
—डॉ० रवीन्द्र कुमार

5. काशीनाथ सिंह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व 32
—डॉ० विजय लक्ष्मी गुप्ता

6. बौद्ध कालीन शिक्षा पद्धति : एक विवेचन 41
—डॉ० रवेन्द्र राजपूत

7. कार्ल वान क्लॉजविट्ज की युद्धनीति 49
—डॉ० कमलेश प्रताप सिंह

8. काशीनाथ सिंह की कहानियों में पारिवारिक जीवन 55
—संजय सिंह

9. उपनिषद् : आध्यात्मिक चिंतन की अमूल्य धरोहर 62
—अलका केशरी

10. दर्शन एवं शिक्षा का सम्बन्ध 66
—डॉ० रवेन्द्र राजपूत

11. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में निहित संवेदना का भाव 74
—नम्रता सिंह

12. अद्वैतवेदान्ते चैतन्य महाप्रभु: 79
—डॉ० राहुल चौधरी

13. चांदायन का वस्तु वर्णन 82
—डॉ० तारा कुमारी

14. भारतीय सिनेमा में थर्ड जेंडर 93
*— *कुलदीप कुमार पाठक, **डॉ. संजीव कुमार, **डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह*

15. विद्यालयी समावेशी विकास की समस्याओं का एक विश्लेषण 109
—डॉ. अभिषेख कुमार पाण्डेय

16. पर्यावरणीय दृष्टि से श्रीराम 115
—डॉली देवी

17. द्विवेदी युग के उद्‌भव के कारण 120
—डॉ० अरुण कुमार मिश्र

18. हिन्दी साहित्य में बालश्रम शोषण की अभिव्यक्तियाँ 129
—डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय

19. भोजपुरी संस्कृति में लोक साहित्य की लोकप्रियता 134
—डॉ० विकास कुमार

20. स्त्री संघर्ष का लोक निर्मित स्वरुप 141
—डॉ. संगीता मौर्य

21. अमरकांत के उपन्यासों में ग्रामीण संवेदना 148
—चन्दन राम

22. आधुनिक काल में सशक्त स्त्री की दशा एवं दिशा 155
*— *राजश्री, **डॉक्टर चित्रलेखा*

PART–II

1. Microfinance: A Comprehensive Review of The Existing Literature 3
—Dr. Shashimala Kumari

2. Experimental Investigation on Utilization of Municipal Solid Waste in Bricks 12
*— *R.Saravanan, **R. Someswaran, ***Anbuchezian Ashokan, ****C. Anbalagan*

3. Sleep Deprivation and Stress among Indians during COVID-19 23
*—Anusha Popli, **Shreya Biswas, ***Dr. Om Prakash Koli*

4. Assessing the Imperatives for Electoral Reforms in Strengthening Indian Democracy 33
*—*Swati Upadhyay, **Gokul Chandra Fulara*

5. Gender Equality and Empowerment of Women Through Sports 44
—Mrs. Anuradha

6. An Appraisal of Crime of Acid Attack in India 50
—Prof. (Dr) Shiti Kanth Dubey

7. Effects of Cypermethrin Induced Toxicity on Environment and Human Health 59
—Jayanti jha

PART – I

उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् छात्राओं में महिला सशक्तिकरण का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन

डॉ० राकेश कुमार
पीएच०डी० (शिक्षाशास्त्र)

सारांश

समस्या कथन के अन्तर्गत "उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् छात्राओं में महिला सशक्तिकरण का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन" किया गया है। चयनित समस्या में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है, जो वर्णनात्मक प्रकार के अनुसंधान के अन्तर्गत आती है। शोध समष्टि के रूप में प्रयागराज जनपद के महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्राओं को जनसंख्या माना गया है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रयागराज जनपद के महाविद्यालयों की सूची में से बालिका महाविद्यालयों को अलग करके एक सूची बनाई, जिसमें से चार बालिका महाविद्यालयों का चयन किया जिनमें से दो शहरी क्षेत्र तथा दो ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित है। प्रत्येक विद्यालय से 50-50 छात्राओं का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया। न्यादर्श चयन हेतु यादृच्छिक प्रतिचयन विधि क प्रयोग किया गया। जिसके अन्तर्गत उक्त चारों विद्यालयों का चयन 'लॉटरी विधि' से किया गया। उपलब्धता के आधार पर 200 छात्राओं का चयन कर लिया गया। उच्च स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं में महिला सशक्तिकरण का स्तर ज्ञात करने हेतु शोधकर्त्ता ने डॉ० देवेन्द्र सिंह सिसोदिया एवं डॉ० अल्पना सिंह द्वारा निर्मित प्रश्नावली (मैनूअल-पुस्तिकाद्ध [Adolescent Girls' Empowerment Scale (AGES)] *का प्रयोग किया है। आँकड़ों के विश्लेषण हेतु टी-अनुपात सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि- उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण का प्रभाव है तथा जाति के आधार पर उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् छात्राओं में महिला सशक्तिकरण का प्रभाव है जबकि उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् संकाय के आधार पर छात्राओं में महिला सशक्तिकरण का प्रभाव नहीं है।*

मुख्य शब्द- उच्च शिक्षा, छात्रा, महिला सशक्तिकरण, कला, विज्ञान, वाणिज्य, सामान्य जाति, पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति/जनजाति

प्रस्तावना

वर्तमान युग में वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण पूरा विश्व एक परिवार के सदृश्य हो गया है। इस भौतिकवादी युग में बालक जन्म लेने के साथ ही भौतिकवादी जीवन के प्रभाव में आ जाता है। ये बालक एवं बालिकाएँ विद्यालयीय जीवन में उम्र बढ़ने के साथ-साथ किशोरवय में पहुँचते-पहुँचते अपने को अलग-अलग महसूस करने लगते है। इसके लिए समाज की निकृष्ट मानसिकता उत्तरदायी है।

समाज को अपनी इस मानसिकता को बदलने की आवश्कयता है। स्त्री को सिर्फ औरत की निगाह से न देखकर समष्टि की इकाई के रूप में देखा जाए। इसी प्रकार स्त्री को भी अपनी मानसिकता को परिवर्तित करके समाज को एक दिशा देने की आवश्यकता है। इसमें सरकारी के साथ ही साथ गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है।

नारी सिर्फ भोग एवं वाद-विवाद की वस्तु न होकर क्रान्ति का रूप ले चुकी है। महिला सशक्तिकरण सम्मान और अधिकार प्राप्त करने का नारा बन गया है। वर्तमान में स्त्रियों को विविध प्रकार के अधिकार प्रदान किए गए हैं। अब प्रश्न यह है कि उन पर कितना अमल हो रहा है। अब यह अधिकार की लड़ाई न होकर उसे अर्जित करते हुए विकास के शिखर को छूने की उत्कंठा है। स्त्रियों की उपेक्षा करके मानव पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता है। महिला सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है कि समाज का प्रत्येक वर्ग चाहें वह किसी क्षेत्र से सम्बद्ध हो, उसमें भागीदार बनें। महिला परिवार एवं समाज की नींव हैं, बिना नींव को सुदृढ़ किए सशक्त समाज की कल्पना निरर्थक है। यद्यपि भारत इस सन्दर्भ में जागरूक रहा है, अपितु संक्रमण-काल में सदियों की उपेक्षा को एक दिन में बदला नहीं जा सकता है। इसके लिए सुनियोजित प्रयास की आवश्यकता है, जिसके माध्यम से विकास के पथ पर उत्तरोत्तर अग्रसर होते हुए सशक्तिकरण सम्भव है।

प्रत्येक समाज में स्त्रियों एवं पुरुषों की सामाजिक स्थिति उनके आदर्शों एवं कार्यों के अनुसार निश्चित होती है। इन आदर्शों एवं कार्यों का निर्धारण उस समाज की संस्कृति निश्चित करती है। इसी से समाज में स्त्रियों का स्थान सुनिश्चित होता है कि वे पुरुषों के ऊपर, बराबर या नीचे होगा।

20वीं शताब्दी में भारत सहित पूरे विश्व में स्त्रियों की स्थिति में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है। इसके पीछे महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यद्यपि भारत में सशक्तिकरण द्वारा स्त्रियों का काफी विकास हुआ है, तथापि ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में इसका अंधकारमय पक्ष विकट तस्वीर पेश करता है।

भारत में महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसके द्वारा विकास के ज्योति-पुँज को समाज के निचले स्तर तक पहुँचाया जा सके। यह उनके अपने अधिकार एवं स्वतंत्र अस्तित्व को सुनिश्चित करेगा। स्वास्थ्य, शिक्षा एवं कल्याण के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपनाने पर बल देगा। स्वायत्तता एवं आत्म-निर्भरता के लिए प्रेरित करेगा। निर्णय लेने की प्रक्रिया को सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु। समाज एवं राष्ट्र के विकास में भागीदारी को प्रोत्साहन देने के लिए महिलाओं की क्षमताओं को विकसित करेगा। सामाजिक, राजनीतिक एवं कानूनी रूप से जागरूक बनाएगा, जो कि स्वयं एवं परिवार के विकास को एक नया आयाम

देगा। समाज में होने वाली नई गतिविधियों एवं उसके प्रसार के लिए सूचना माध्यमों की उपयोगिता के प्रति रूझान बढ़ेगा। इससे वे शिक्षा एवं उसके प्रभाव का सही आकलन करके सच्च अर्थों में समाज को एक नई दिशा देने में सक्षम हो सकेंगी।

नारी सशक्तिकरण का अर्थ वर्तमान संदर्भ में स्वच्छंता, पश्चिमीकरण का अंधाधुंध अनुकरण, नैतिक मूल्यों से दूरी और अमर्यादित जीवन शैली आदि हो गया है, जो भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कहीं से भी उचित नहीं है। स्वतंत्रता का अर्थ पुरुष वर्चस्व की जगह नारी वर्चस्व को स्थापित कर देने से (जैसा देखा जा रहा है) समस्या का समाधान संभव नहीं है यह शोषक एवं शोषित के बीच स्थान परिवर्तन मात्र है, इससे न नारी मुक्त होगी और न सशक्त। अतः आज नारी को अपनी स्वतंत्रता को अपनी सहज और स्वाभाविक प्रकृति प्रदत्त क्षमताओं के संदर्भ में परिभाषित करना होगा। पुरुष की बराबरी में न वह पुरुष रहेगी न नारी। नारी–पुरुष एक दूसरे के पूरक है ऐसा कोई समाज उचित हो ही नहीं सकता जिसमें नारियाँ पुरुषों से अलग होकर उनसे स्पर्धा करें। गाँधी जी ने नारी को सम्पूर्ण जगत् के परिवेश में रखकर देखा और उसे जाग्रत होने को कहा। उन्होंने बार–बार उसे बताया कि नारियाँ अपनी शक्ति को पहचाने और शक्ति के अनुरूप कर्तव्यों को ठीक अंजाम दें। वे नारी में पवित्रता, दृढ़ता, संयम और अभय के गुणों का पूर्ण विकास देखना चाहते थे। वे मानते थे कि इन गुणों का विकास नारी को शरीर बुद्धि से ऊपर उठा देगा।

अतएव आज आवश्यक है कि नारी अपनी इस लड़ाई में स्वयं अपना दृष्टिकोण बदले और गाँधी के विचारों के अनुरूप नारीत्व के गौरव को पहचाने, अपनी लड़ाई पुरुष को सहयोगी मानकर लड़े, प्रतिद्वन्द्वी मानकर नहीं क्योंकि स्वयं प्रकृति में नारी एवं पुरुष को एक–दूसरे के सहयोगी के रूप में रचा है। नारी पुरुष से किसी तरह कम नहीं है यदि वह अपनी प्रवृत्ति एवं क्षेत्र में अपनी क्षमता का पूर्ण उपयोग कर अपने व्यक्तित्व का विकास करें, तो उसका ऐसा व्यक्तित्व नारी गौरव को समाज में पुनः स्थापित कर देगा, यही उसका स्वातंत्र्य भी होगा जिसका समर्थन स्वयं गाँधी जी ने किया हैं।

भारतीय मूल की कल्पना चावला एवं सुनिता विलियम्स को नासा के अंतरिक्ष यात्री दल के लिए चुने गये सिविलियन मिशन विशेषज्ञों के दल में शामिल किया गया। प्रसिद्ध धाविका रोसा कुट्टी एवं भारोत्तोलक कर्णम मल्लेश्वरी, अंजली भागवत, साईना नेहवाल इत्यादि महिलाओं से प्रेरणा प्राप्त करके वैसे ही करने को प्रेरित होंगी। समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति सचेत होने की प्रेरणा मिलेगी। आज कन्या भ्रूण हत्या, अशिक्षा, यौन–हिंसा, पत्नियों की अदला–बदली, बच्चियों का यौन, उत्पीड़न दुष्कर्म एवं लड़कियों की खरीद–फरोख्त के मामले बढ़े है। दहेज–प्रथा महिलाओं की मौत का एक प्रमुख कारण है।

गृह–मंत्रालय की अपराध पंजीकरण शाखा की रिपोर्ट के अनुसार 1987 से 1991 तक दहेज के कारण हत्याओं में 170 प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी।

स्पष्ट है कि जन्म से मृत्यु तक महिलाओं का जीवन संघर्षमय है और उनका जीवन तिल–तिल जल रहा है। केवल कानूनों के निर्माण से कुछ नहीं होगा, इसके लिए पुरुषों को अपनी मनोवृत्ति बदलनी होगी।

स्त्रियों को अपनी असशक्तता त्यागकर सशक्त होना होगा, जिसके लिए सशक्तिकरण आवश्यक है। इसके लिए स्थानीय स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक समाज का पुनर्निर्माण होना चाहिए। जिससे उनका आँचल उसकी गुलामी का नहीं अपितु आजादी का परचम बनकर लहराएं।

महिला सशक्तिकरण के सम्बन्ध में ऑफिस ऑफ द यूनाइटेड नेशंस हाई कमीश्नर फॉर ह्यूमन राइट्स का कहना है कि- "यह औरतों को शक्ति, क्षमता तथा काबिलियत देता है ताकि वे अपने जीवन-स्तर को सुधार कर अपने जीवन की दिशा को स्वयं निर्धारित कर सकें।"

परिवार प्रथम पाठशाला माना जाता है यदि महिलाएँ सशक्त होगी तो उनकी आने वाली पीढ़ी भी जागरूक एवं विकासोन्मुख होगी। महिला सशक्तिकरण द्वारा महिलाएँ अपने अधिकार एवं अपने लिए कार्यरत उपबन्धों के बारें में जान पाऐंगी, जिससे वे राष्ट्र एवं समाज के लिए कुछ करने में सक्षम होगी।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्यों का निर्धारण समस्या कथन के समस्त पक्षों को ध्यान में रखकर किया गया है। इसके उद्देश्य निम्नवत् है-

1. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् कला, विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

प्रस्तुत समस्या के सम्भावित समाधान के रूप में निम्नलिखित शोध परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है-

1. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् कला, विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि

चयनित समस्या में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है, जो वर्णनात्मक प्रकार के अनुसंधान के अन्तर्गत आती है।

जनसंख्या

शोध समष्टि के रूप में प्रयागराज जनपद के महाविद्यालयों में अध्ययनरत् छात्राओं को जनसंख्या माना गया है।

न्यादर्शन विधि एवं न्यादर्श का आकार

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयागराज जनपद के महाविद्यालयों की सूची में से बालिका महाविद्यालयों को अलग करके एक सूची बनाई, जिसमें से चार बालिका महाविद्यालयों का चयन किया जिनमें से दो शहरी क्षेत्र तथा दो ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित है। प्रत्येक विद्यालय से 50–50 छात्राओं का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया।

न्यादर्श चयन हेतु यादृच्छिक प्रतिचयन विधि क प्रयोग किया गया। जिसके अन्तर्गत उक्त चारों विद्यालयों का चयन 'लॉटरी विधि' से किया गया। इसमें समष्टि के समस्त विद्यालयों का नाम कागज के छोटे–छोटे टुकड़ों में लिखकर उन्हें एक डिब्बे में डाल दिया गया और एक छोटे बच्चा की आँखों पार काली पट्टी बाँधकर एक–एक चिट को निकालने के लिए कहा। इस प्रकार चिट के माध्यम से विद्यालयों का चयन कर लिया गया। तत्पश्चात् उपलब्धता के आधार पर 200 छात्राओं का चयन कर लिया गया।

प्रयुक्त उपकरण

उच्च स्तर पर अध्ययनरत छात्राओं में महिला सशक्तिकरण का स्तर ज्ञात करने हेतु शोधकर्त्ता ने डॉ० देवेन्द्र सिंह सिसोदिया एवं डॉ० अल्पना सिंह द्वारा निर्मित प्रश्नावली (मैनूअल–पुस्तिका) [Adolescent Girls' Empowerment Scale (AGES)] का प्रयोग किया है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय प्रविधियाँ

प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु निम्नलिखित सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है–

1. मध्यमान
2. मानक विचलन

3. मध्यमानों के अन्तर की मानक त्रुटि

4. 'टी–अनुपात' परीक्षण

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

1. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन–

H_1– उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर है।

H_{01}– उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नही है।

सारणी संख्या–1

उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता के मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–अनुपात

प्रतिदर्श	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S)	मध्यमानों का अन्तर (D)	मानक त्रुटि (σD)	परिगणित T–अनुपात (T)	परिणाम (R)
शहरी	100	183.01	14.74	18.06	2.03	8.89'	>.05 सार्थक
ग्रामीण	100	164.91	13.93				>.01 सार्थक

तालिका संख्या 1 के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता स्तर का मध्यमान क्रमशः 183.01 और 164.91 है तथा मानक विचलन क्रमशः 14.74 व 13.93 है। मध्यमानों का अन्तर 18.06 है तथा मानक त्रुटि 2.03 है। दोनों प्रतिदर्शों के परिगणित टी–अनुपात का मान 8.89 है जो कि .05 व .01 सार्थकता स्तर पर दिये गये सारणी मान 1.98 तथा 2.60 से अधिक है। अतः मध्यमान का अन्तर उक्त सार्थकता स्तर पर सार्थक है और शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है तथा शोध परिकल्पना स्वीकृत होती है।

परिणामतः उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता ग्रामीण छात्राओं की अपेक्षा उच्च है।

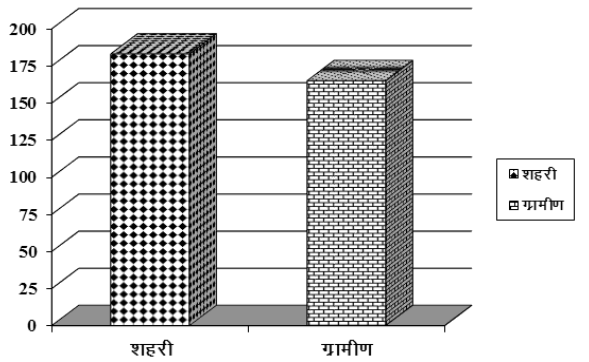

ग्राफ 1 : *उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता के मध्यमानों का आरेख चित्र*

2. *उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् कला, विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन–*

H_2– उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् कला, विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर है।

H_{02}– उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् कला, विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नही है।

सारणी संख्या–2

उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् कला, विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–अनुपात

वर्ग	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S)	मध्यमानों का अन्तर (D)	मानक त्रुटि (σD)	परिगणित T–अनुपात (T)	परिणाम (R)
कला	68	173.44	19.52	1.57	3.12	0.50	>.05 असार्थक
विज्ञान	69	175.01	16.86				>.01 असार्थक
कला	68	173.44	19.52	0.01	2.95	0.003	>.05 असार्थक
वाणिज्य	63	173.43	13.92				>.01 असार्थक
विज्ञान	69	175.01	16.86	1.58	2.69	0.58	>.05 असार्थक
वाणिज्य	63	173.43	13.92				>.01 असार्थक

तालिका संख्या 2 के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् कला, विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता स्तर का मध्यमान क्रमशः 173.44,

175.01 और 173.43 है तथा मानक विचलन क्रमशः 19.52, 16.86 व 13.92 है। तीनों के मध्यमानों का अन्तर क्रमशः 1.57, 0.01 एवं 1.58 है तथा मानक त्रुटि क्रमशः 3.12, 2.95 एवं 2.69 है। तीनों प्रतिदर्शों के परिगणित टी–अनुपात का मान क्रमशः 0.50, 0.003 एवं 0.58 है जो कि .05 व .01 सार्थकता स्तर पर दिये गये सारणी मान से कम है। अतः मध्यमान का अन्तर उक्त सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है और शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है तथा शोध परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

परिणामतः उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् कला, विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में समानता है।

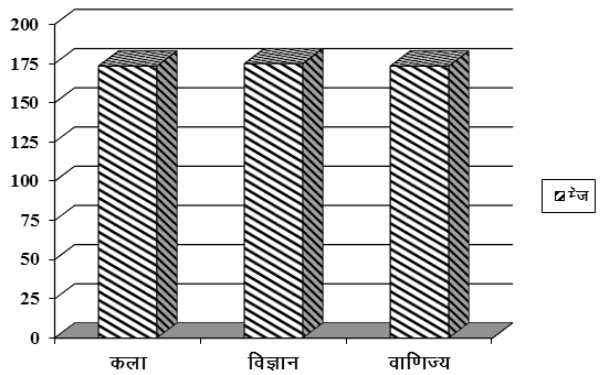

ग्राफ 2 : *उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् कला, विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता के मध्यमानों का आरेख चित्र*

3. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन–

H_3– उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर है।

H_{03}– उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नही है।

सारणी संख्या-3

उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात

वर्ग	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S)	मध्यमानों का अन्तर (D)	मानक त्रुटि (σD)	परिगणित T-अनुपात (T)	परिणाम (R)
सामान्य	67	179.61	13.33	6.43	2.58	2.49	>.05 असार्थक
पिछड़ी	67	173.18	16.37				>.01 असार्थक
सामान्य	67	179.61	13.33	10.53	2.85	3.69	>.05 असार्थक
अनुसूचित जाति/जनजाति	66	169.08	19.15				>.01 असार्थक
पिछड़ी	67	173.18	16.37	4.10	3.09	1.33	>.05 असार्थक
अनुसूचित जाति/जनजाति	66	169.08	19.15				>.01 असार्थक

तालिका संख्या 3 के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता स्तर का मध्यमान क्रमशः 179.61, 173.18 और 169.08 है तथा मानक विचलन क्रमशः 13.33, 16.37 व 19.15 है। तीनों के मध्यमानों का अन्तर क्रमशः 2.49, 3.69 एवं 1.33 है तथा मानक त्रुटि क्रमशः 2.58, 2.85 एवं 3.09 है। तीनों प्रतिदर्शों के परिगणित टी-अनुपात का मान क्रमशः 2.49, 3.69 एवं 1.33 है। सामान्य एवं पिछड़ी जाति की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता पर प्राप्त टी-मान जो कि .05 सार्थकता स्तर पर दिये गये सारणी मान से अधिक है जबकि सामान्य एवं अनुसूचित जाति/जनजाति की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता के मध्य प्राप्त टी-मान 3.69 है जो .05 एवं .01 सार्थकता स्तर पर दिये गये मान से अधिक है तथा पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति/जनजाति की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता के मध्य टी-मान 1.33 है जो .05 एवं .01 सार्थकता स्तर पर दिये गये मान से कम है, अतः पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में अन्तर नहीं है। अतः मध्यमान का अन्तर उक्त सार्थकता स्तर पर सार्थक है और शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है तथा शोध परिकल्पना स्वीकृत होती है। परिणामतः सामान्य छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति/ जनजाति की छात्राओं से उच्च है।

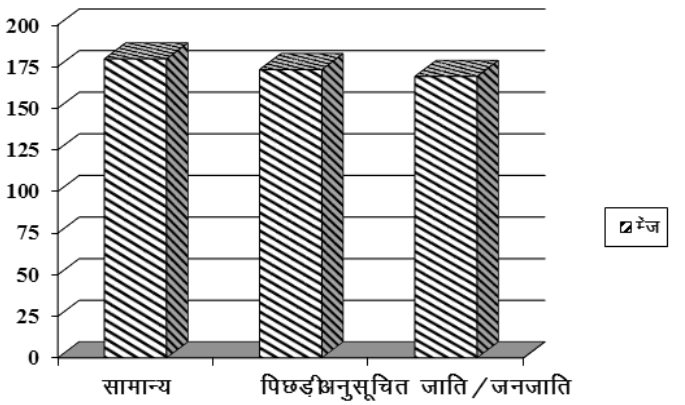

ग्राफ 3 : *उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् सामान्य, पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता के मध्यमानों का आरेख चित्र*

निष्कर्ष–

अध्ययनोपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में अन्तर है अर्थात् उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता ग्रामीण छात्राओं की अपेक्षा उच्च है। उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण का प्रभाव है।
- उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् कला, विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में अन्तर नहीं है अर्थात् उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् कला, विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में समानता है। निष्कर्षत: उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् संकाय के आधार पर छात्राओं में महिला सशक्तिकरण का प्रभाव नहीं है।
- सामान्य छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता पिछड़ी एवं अनुसूचित जाति/ जनजाति की छात्राओं से उच्च है अर्थात् जाति के आधार पर उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् छात्राओं में महिला सशक्तिकरण का प्रभाव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अहमद, रफीक एवं कुमारी, प्रतिभा, महिला सशक्तिकरण में पंचायती आरक्षण की भूमिका, जर्नल ऑफ सोशियो–एजुकेशनल एण्ड बल्चरल रिसर्च, वाल्यूम–1, नं० 3, पृ० 71–74
2. ओझा, प्रभात कुमार एवं अहमद, तौफीक (2016). महिला सशक्तिकरण के दौर में बदलते हुए पुरुष–नारी सम्बन्ध : भारत के विशेष सन्दर्भ में, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ ह्युमिनिट्ज एण्ड सोशल साइंस रिसर्च, वॉल्यूम–2, इश्यू–5, पृ० 38–39
3. आनन्द, रेनू (2016). समसामयिक परिप्रेक्ष्य में आधुनिक स्त्री की परिकल्पना, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दी रिसर्च, वॉल्यूम–2, इश्यू–3, पृ० 21–22
4. अग्रवाल, सुनीता (2017). ग्रामीण अनुसूचित जातियों की महिलाओं में राजनैतिक जागरूकता (छ.ग. राज्य के रायपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में), शोध मंथन, आर्टिकल नं० 4, दिसम्बर 2017, पृ० 18–25
5. कठेरिया, धरवेश एवं अन्य (2015). महिला जागरूकता एवं सामाजिक न्याय (निर्भया घटना: 16 दिसम्बर, 2012 के विशेष सन्दर्भ में), गोल्डेन रिसर्च थॉट, वॉल्यूम–4, इश्यू–9, पृ० 1–13
6. काकी, भगवतेश्वरी एवं सिंघल, बी०पी० (2018). राजनीति में महिलाओं की सहभागिता एवं निर्णयन: तुलनात्मक अध्ययन संयुक्त परिवार व एकांकी परिवार, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ केरेन्ट ट्रेण्ड्स इन साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, वॉल्यूम–8, इश्यू–03, पृ० 20624–20628
7. कुमार, कान्तेश्वर कुमार (2014). महिलाओं के सामाजिक एवं राजनीतिक सशक्तिकरण में स्वसंहायता समूह की भूमिका का विश्लेषण अध्ययन (राजनांदगाँव जिले के विशेष संदर्भ में), शोध–प्रबन्ध, पण्डित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ०ग०)
8. कुमार, मनोज (2017). महिला सशक्तिकरण की प्रासंगिकता, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एण्डवांस रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट, वॉल्यूम–2, इश्यू–2, पृ० 105–108।
9. कुमार, मनजीत (2015). "महिला सशक्तिकरण में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका : हरियाणा एवं राजस्थान का तुलनात्मक अध्ययन", पी०एच–डी० लोक प्रशासन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
10. कुमार, प्रमोद (2013). महिलाओं की स्थिति : दशा एवं दिशा, पी.एस.एस.एच. पृ० 1–5, http://pssh.in/papers/2013-june/pssh-2013-june-hi-07.pdf
11. कुमार, डॉ० एस० श्रवण; पल्लनिसामी, एम (2013), इम्पेक्ट ऑफ एजुकेशन ऑन वूमैन एम्पावरमेंट इन इण्डिया, तमिलनाडु, 2(11)।
12. कुमार, लोकेन्द्र (2013) ने महिला सशक्तिकरण में ग्रामीण परिवारों में पति–पत्नी के सम्बन्धों पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, शोध–ग्रन्थ, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, परिसर, मेरठ
14. कुमारी, प्रियंका (2016). महिला सशक्तिकरण में कानून की भूमिका : एक विश्लेषण, द ओपिनियन, वाल्यूम–5, नं० 10, पृ० 173–178
15. खाँ, इरसाद अली (2017). महिला अधिकार : दशा एवं दिशा, रिमार्किंग एन एनालाइजेशन, वॉल्यूम–2, इश्यू–9, पृ० 150–156
16. गौतम, रश्मि (2017). भारत में कामकाजी महिलाओं की समस्या का विश्लेषण, इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ मैनेजमेन्ट सोशियोलॉजी एण्ड ह्युमिनिटी, वॉल्यूम–8, इश्यू–5, पृ० 212–217

17. गुप्ता, अखिलेश कुमार (2015). राजस्थान में पंचायती राज-नवीन परिवर्तनों के साथ विकसित होती गाँव की सरकार पर अध्ययन, इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ मैनेजमेन्ट सोशियोलॉजी एण्ड ह्युमिनिटी, वॉल्यूम-6, इश्यू-2, पृ० 323-327

18. चौधरी, मंजू एवं गहलोत, सपना (2017). महिला सशक्तिकरण की अवधारणा, इण्टरनेशनल एजूकेशनल जर्नल, चेतना, वॉल्यूम-3, ईयर-2, पृ० 130-134

19. जीनगर, किरण (2017). भारत में महिला सशक्तिकरण, काव्य इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ आर्ट्स, ह्युमिनिट्ज एण्ड सोशल साइंस, वॉल्यूम-4, इश्यू-1, पृ० 70-73

20. जायसवाल, सतीश एवं शर्मा, डॉ० सचिन (2016). जनसंचार के माध्यम से ग्रामीण जीवन स्तर के बदलते आयाम, शब्द-ब्रह्म, भारतीय भाषाओं की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका, पीअर रीव्यूड रेफीड रिसर्च जर्नल, वाल्यूम-4, ईश्यू-6, ISSN 2320-0871

21. जोशी, वन्दना रानी (2016). जनसंचार और ग्रामीण जीवन, शब्द-ब्रह्म, भारतीय भाषाओं की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका, पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल, वाल्यूम-4, ईश्यू-6, ISSN 2320.0871

22. तिवारी, संजूलता (2016). महिला सशक्तिकरण- उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ, एन इण्टरनेशनल मल्टीडिस्पिलनरी रिसर्च ई-जर्नल, वॉल्यूम-2, इश्यू-III, पृ० 85-88

23. देवांगन, अन्नपूर्णा (2011). महिला सशक्तिकरण एवं महिला स्व सहायता समूह का अध्ययन (रायपुर जिले के संदर्भ में), शोध प्रबन्ध, पं० रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ०ग०)

24. दत्ता, नबनीता एवं भवता, कौशिक (2017), वूमैन एम्पावरमेंट : डाइमेन्शन, नीड एण्ड हर्डल इन इण्डिया, डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, प० बंगाल।

25. प्रसाद, भूमिका एवं कुमार, पवन (2017). मानवाधिकार में महिला सशक्तिकरण का महत्वांकन, नेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिस्पिलनरी रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट, वॉल्यूम-2, इश्यू-2, पृ० 256-261

26. बेरा, नवनीता (2016), वूमेन एम्पावरमेंट थ्रू एजूकेशन, वेस्ट बंगाल, वाल्यूम 2, 184-190।

27. भालसे, गिरधारीलाल एवं भालसे, विनीता (2015). महिलाओं के संवैधानिक अधिकार एवं स्थिति, शब्द-ब्रह्म, भारतीय भाषाओं की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका, वाल्यूम-4, इश्यू-9, पृ० 21-24

28. मूसा, सैय्यद जाफर एवं फात्मा, ततहीर (2015). लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली में महिला सशक्तिरण, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक एण्ड एनोवेटिव रिसर्च स्टडीज, वाल्यूम-3, इश्यू-12, पृ० 18-23

29. मिश्र, विजय लक्ष्मी (2017). महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयाम एवं नीतिगत क्रियान्वयन, इनोवेशन द रिसर्च कन्सेप्ट, वॉल्यूम-2, इश्यू-7, पृ० 168-173

30. रजक, कृष्ण बाबू प्रसाद (2011). लोकसभा एवं बिहार विधानसभा में महिला आरक्षण की स्थिति, इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ कार्मस आर्ट्स एण्ड साइंस, वॉल्यूम-2, इश्यू-1, पृ० 117-130

31. राजेश्वरी एम० शटर (2015).ए स्टडी आन इशूज एण्ड चेलेंजेज ऑफ वुमेन एम्पावरमेंट इन इण्डिया, जर्नल ऑफ बिजनेस एण्ड मैनेजमेन्ट, वाल्यूम-17।

32. वीरेन्द्र सिंह (2014). महिला सशक्तिकरण में भारतीय संसद की भूमिका, पी-एचडी०, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।

33. वन्दना, नौटियाल एण्ड दंगवाल, ए.आर. (2010). सर्विलांस ऑफ मीडिया ऑफ वाइलेसन्स ऑफ विमैन वुमैन राइट्स, शोध साहित्य बिलिंगुल जर्नल ऑफ ह्युमिनिट्ज एण्ड सोशल साइंसेस, वाल्यूम-1, इयर-1, 15 जनवरी 2010

34. सी. राम एब्आय (2013) "विमेन एम्पावरमेंट थ्रो सेल्फ हैल्थ ग्रुप : स्टडीज" पी-एच.डी. थीसिस, श्रीवैंकटेश्वर विश्वविद्यालय

35. सोनवाल, मुकुत कुमार (2013), इम्पैक्ट ऑफ एजुकेशन इन वूमेन एम्पावरमेंट : ए केस स्टडी ऑफ एस.सी./एस.टी. विमेन ऑफ सोनीतपुर डिस्ट्रिक्ट, आसाम।

36. सुगुना, एम (2011), एजुकेशन एण्ड वूमैन एम्पावरमेंट इन इण्डिया, तमिलनाडु, 2(1)।

37. सिंह, योगेश्वर (2015). ने मीडिया और महिला अधिकार : महिलाओं में जागरूकता व अवबोधन (शहरी व ग्रामीण महिलाओं पर एक तुलनात्मक अध्ययन). शोध आलेख, जनकृति विमर्श केन्द्रित अन्तर्राष्ट्रीय मासिक ई-पत्रिका, वर्ष 1, अंक 10, दिसम्बर 2015

महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुवाद कर्म का स्वाधीनता एवं पुनर्जागरण से सम्बन्ध

सदरे आलम
पीएच. डी. शोधार्थी
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने केवल मौलिक ही नहीं अपितु अनुवाद द्वारा भी नवजागरण को विकास की ओर उन्मुख किया। तत्कालीन परतंत्रता से आजाद होने के लिए जो भी और जैसे भी साहित्य का सृजन और संकलन उन्हें करना पड़ा, उन्होंने जमकर किया। अपने देश की जनता को स्वतंत्रता के प्रति जागृत करने में उन्होंने अनेकानेक अनुवाद किए। सन् 1905 में उन्होंने जॉन स्टुअर्ट मिल की *On Liberty* का अनुवाद *स्वाधीनता* नामक शीर्षक से किया।

देश में स्वतंत्रता के लिए नवसंचार करने के उद्देश्य से ही उन्होंने जनवरी, 1906 की *सरस्वती* पत्रिका में संस्कृत के 'वंदे मातरम्' गीत का हिन्दी और अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया। यह गीत आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का सबसे महत्त्वपूर्ण गीत बना।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अप्रैल, 1906 की *सरस्वती* पत्रिका में महारानी विक्टोरिया के सन् 1857 के घोषणा पत्र का अनुवाद प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने अड़तालीस साल पहले किए गए वादों की याद दिलाई: "अपनी प्रजा के कल्याण ही को हम अपना सामर्थ्य, उसके संतोष ही को हम अपने राज्य की मजबूती और उसकी कृतज्ञता ही को हम अपना उत्तम साफल्य समझते हैं।"[1]

इस प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने लेखन और अनुवाद कर्म से तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों और चिन्ताओं को जनसामान्य से रू-ब-रू कराया। समकालीन रचनाकारों को अनुवाद की प्रेरणा देते हुए उन्होंने स्वयं एक विस्तृत एवं सक्षम अनुवादक होने का परिचय दिया।

वे लम्बे समय तक *सरस्वती* पत्रिका के सम्पादक रहे। अपने पूरे कार्यकाल में उन्होंने देश और समाज के लिए जितना *सरस्वती* पत्रिका में लिखा है, वह यह बताने के लिए काफी है कि नवजागरण के तीसरे चरण का श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को ही जाता है।

इसी पत्रिका में उन्होंने अर्नेस्ट जोंस की एक कविता का भावानुवाद किया है। 'कवि और स्वतंत्रता' शीर्षक से संवाद शैली में लिखी गई रचना है जिसमें कवि देश को जागृत करने के भाव से 'स्वतंत्रता' के साथ बात करता है।

भारतीय नवजागरण के विकास एवं प्रवाह को अधिक प्रबल बनाने के लिए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'कलकत्ते की कोठरी' जैसे लेख लिखे। वे नवजागरण के प्रत्येक बिन्दु के प्रति अत्यधिक संवेदनशील और जागरूक थे, चाहे वह सामाजिक और धार्मिक सुधार का मुद्दा हो अथवा नारी चेतना का विषय हो। उन्होंने देश में व्याप्त सभी कुरीतियों और समस्याओं पर बेझिझक लिखा।

उनके समकालीन समाज को बड़े बदलावों की जरूरत थी, इसे उन्होंने सहज ही समझ लिया। उन्होंने अपने लेखन और अनुवाद से देश को सामूहिक रूप से उन्नति की राह पर ले जाने के लिए जनता को सन्देश दिया: "हमारे देश की उन्नति के लिए यह बहुत आवश्यक है कि लोग आधुनिक काल के सामाजिक आदर्शों और आन्दोलनों का ज्ञान प्राप्त करें। हमारे देशवासी अध्यात्म विद्या और धर्म-शास्त्र में तो बड़े निपुण हैं पर समाज तत्त्व के विषय में वे कुछ नहीं जानते।"

महावीर प्रसाद द्विवेदी भारत में लम्बे समय से चले आ रहे धर्मांधता, छुआछूत तथा साम्प्रदायिकता जैसे मामलों पर लेखनी चलाकर नवजागरण को सशक्त बनाया। उन्होंने गोत्र एवं जन्मपत्री को विवाह का आधार बनाने का विरोध करते हुए कहा कि यह सब वैज्ञानिक बुद्धि तथा विवेक के विपरीत हैं।

महाप्रतिभा के धनी महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मौलिक और अनूदित लेखन द्वारा नवजागरण को एक दिशा एवं सुदृढ़ दशा प्रदान की। उन्होंने हिन्दी के रूप को भी परिष्कृत और परिमार्जित किया। भाषा के शुद्धिकरण पर बल दिया। नवजागरण के समय नारी चेतना, अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता और रूढ़िवादिता आदि संवेदनशील मामलों पर ध्यान केन्द्रित किया। वैज्ञानिक चेतना का प्रसार किया।

सम्पूर्ण अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी ने नवजागरण काल को अपनी लेखनी, अनुवाद, विचारों से सशक्त एवं सार्थक बनाकर लोगों में चेतना और राष्ट्र प्रेम का आह्वान किया।

नवजागरण का प्रारम्भ भारतीय सन्दर्भों में अंग्रेजों के भारत में प्रवेश से माना जाता है। आधुनिकता से 'स्व' का बोध, वर्तमान की चिन्ता और भविष्य के प्रति सजगता से होती है। भारत में आधुनिकता की शुरुआत अंग्रेजों के प्रवेश से मानी जाती है। उनकी नई चिन्तन पद्धति, मनुष्य केंद्रियता, बुद्धि और तर्क को अधिक प्रश्रय देने की प्रवृत्ति ने भारत में आधुनिकता के बीज डाले और परिणामस्वरूप भारत में सामाजिक सुधारों की शुरुआत हुई।

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास में भारतीय संदर्भ में आधुनिक युगीन मानसिकता के लिए 'पुनर्जागरण' या 'नवजागरण' शब्द का इस्तेमाल किया है: "मनुष्य की बुनियादी अवधारणा में यह परिवर्तन केसे होता है, इसे समझने के लिए आधुनिक युगीन मानसिकता का व्यापक परीक्षण आवश्यक होगा। इस मानसिकता को सामान्य रूप में 'पुनर्जागरण' या 'नवजागरण' कहकर इतिहास और संस्कृति के संदर्भ में पुकारा गया है। संक्षेप में पुनर्जागरण दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा है। भारत के संदर्भ में यदि बात की जाए तो पुनर्जागरण अथवा कहें कि आधुनिकता की शुरुआत 19वीं शताब्दी में होती है। नई यूरोपीय वैज्ञानिक संस्कृति और पुरानी धार्मिक संस्कृति की टकराहट के फलस्वरूप।"

व्यापक अर्थों में आधुनिकता एवं नवजागरण से अभिप्राय आधुनिक विचारों एवं आधुनिक प्रयासों से है। आधुनिकता अथवा आधुनिक विचार परम्परागत विचारों का स्थान लेते हैं। किन्तु आधुनिकता से हमारा अभिप्राय यहाँ भारत में आधुनिकता के प्रारम्भ से है।

भारत में आधुनिकता की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी से होती है, यहाँ से हम विचारों और चिन्तन की पद्धति से लेकर जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन देखते हैं। साहित्य में भी यह परिवर्तन महत्त्वपूर्ण रूप से दिखाई देता है।

नई तकनीक की शुरुआत, प्रेस का प्रादुर्भाव और बड़ी मात्रा में हुए अनुवाद कार्य ने भारतीय साहित्य के पूरे परिदृश्य को बदल दिया। भारत में अंग्रेजी सत्ता के ढेरों दोष गिनाए जा सकते हैं। गिनाए भी गए हैं। इसके बावजूद इस औपनिवेशिक सत्ता से भारतीय जनता को एक अति विशिष्ट चीज प्राप्त हुई। वे हैं- नए, आधुनिक मूल्यों और विचारों का आगमन।

भारत में शासन की स्थापना करते ही अंग्रेजों को कर्मचारी वर्ग की आवश्यकता हुई। संख्या बल में कम अंग्रेजों ने इसके लिए भारतीयों में ही सम्भावना तलाशी। उन्होंने भारतीयों में से एक ऐसा वर्ग विकसित करने की कोशिश की जो उनके सत्ता सूत्र को सही ढंग से थामें रख सके। इस वर्ग की सांस्कृतिक उपादेयता भी स्पष्ट थी।

विलियम बेंटिक के समय सन् 1835 में प्रस्तुत लॉर्ड मैकाले की नई शिक्षा नीति का एक मुख्य उद्देश्य था कि 'भारतीयों में ही एक ऐसे वर्ग की स्थापना जो शक्ल-ओ सूरत में तो भारतीय हो, किन्तु विचारों में अंग्रेज।'

यद्यपि नई शिक्षा नीति में अंग्रेजों के साम्राज्यवादी-औपनिवेशिक हित छिपे हुए थे, तथापि इस नए किस्म की शिक्षा ने भारतीय मानस को बुनियादी स्तर पर प्रभावित किया। अभी तक कूप-मण्डूक बने भारतीय समाज का सामना अपेक्षाकृत अत्यंत विकसित समाज से हुआ: "18वीं शताब्दी में यूरोप में एक नवीन बौद्धिक लहर चल रही थी, जिसके फलस्वरूप एक 'जाग्रति के युग' का सूत्रपात हुआ। तर्कवाद और अन्वेषण की भावना ने यूरोपीय समाज को एक प्रगति प्रदान की। विज्ञान तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने राजनीतिक, सैनिक, आर्थिक, धार्मिक सभी पक्षों को प्रभावित किया और अब यूरोप सभ्यता का अग्रणी महाद्वीप था उसके विपरीत भारत एक निश्चल, निष्प्राण तथा गिरते हुए समाज का चित्र प्रस्तुत करता था।"

नव शिक्षित वर्ग का एक हिस्सा अपने शासकों के प्रति श्रद्धा, भय और विस्मय से इतना आप्लावित हो गया कि 'काला अँग्रेज' बन जाने में ही उसे अपना भविष्य दिखाई दिया। नव शिक्षित वर्ग का दूसरा हिस्सा एक नए विमर्श की ओर प्रवृत्त हुआ। उसके सम्मुख सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न था कि आखिर इस घोर वैषम्यता का कारण क्या है?

इस प्रश्न के उत्तर की तलाश में उसने भारतीय जीवन और संस्कृति की ऐतिहासिक पड़ताल की। इस विमर्श ने नए किस्म के इतिहास बोध और आधुनिक जीवन-दर्शन के प्रति सहज ही आकर्षण उत्पन्न किया। यह आकर्षण एकांतिक नहीं था बल्कि इसमें भारतीय जनता को साथ ले चलने, उससे समर्थन प्राप्त करने

की प्रबल चाह भी थी। इन भारतीय विद्वानों द्वारा की गई आलोचना के फलस्वरूप भारतीय समाज के पिछड़े होने के कई कारण सामने आए।

महत्त्वपूर्ण कारण थे- आधुनिक जीवन-दृष्टि और चेतना का नितांत अभाव। इस अभाव की पूर्ति हेतु क्रमागत प्रयास किए गए। इन्हीं प्रयासों के दौरान अनुवाद की सार्थकता स्पष्ट हो गई। वैचारिक आवश्यकताओं ने वैचारिक आयात की प्रक्रिया को जन्म दिया: "नई शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदल रही थी। उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नई उमंगें उत्पन्न हो रही थी। काल की गति के साथ-साथ उनके भाव और विचार तो बहुत आगे बढ़ गए थे, पर साहित्य पीछे ही पड़ा था। भक्ति, श्रृंगारादी की पुराने ढंग की कविताएँ ही होती चली आ रही थीं। बीच-बीच में कुछ शिक्षा सम्बन्धिनी पुस्तकें अवश्य निकल जाती थीं। पर देश काल के अनुकूल साहित्य निर्माण का कोई विस्तृत प्रयत्न तब तक नहीं हुआ था। बंग देश में नए ढंग के नाटकों और उपन्यासों का सूत्रपात हो चुका था। जिनमें देश और समाज की नई रूचि और भावना का प्रतिबिम्ब आने लगा था। पर हिन्दी साहित्य अपने पुराने रास्ते पर ही पड़ा था। भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जीवन के साथ फिर से लगा दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद पड़ रहा था उसे उन्होंने दूर कर दिया। हमारे साहित्य को नए नए विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिश्चन्द्र ही हुए।"

नेतृत्व के संकट से जूझते हिन्दी साहित्य को सन् 1900 के आसपास आखिरकार नायक के रूप में महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्राप्ति हुई। अगले बीस वर्ष तक हिन्दी साहित्य उनके दिखाए मार्ग पर ही चला; हालाँकि सन् 1916 से छायावाद कहे जाने वाले कवियों का एक दल अगले युग की पूर्व पीठिका का निर्माण करने लगा था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक मनुष्य की आवश्यकता को युगीन जरूरत के रूप में जितनी स्पष्टता से समझा, उतने ही मुखर रूप से इस दिशा में प्रयत्न भी किया।

वस्तुत: आधुनिकता के अर्थ को महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अवधारणात्मक और व्यावहारिक दोनों रूपों में ग्रहण किया। उन्होंने इसके लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पैठ बनाने की कोशिश की। इसके लिए अनुवाद का सहारा लिया। रामविलास शर्मा के अनुसार: "राजनीति और अर्थशास्त्र के साथ उन्होंने आधुनिक विज्ञान से परिचय प्राप्त किया और इतिहास तथा समाजशास्त्र का अध्ययन गहराई से किया। इसके साथ भारत के प्राचीन दर्शन और विज्ञान की ओर उन्होंने ध्यान दिया और यह जानने का प्रयत्न किया कि हम अपने चिन्तन में कहाँ आगे बढे हुए हैं और कहाँ पिछड़े हैं। इस तरह की तैयारी उनसे पहले किसी सम्पादक या साहित्यकार ने नहीं की थी। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी प्रदेश में नवीन सामाजिक चेतना के प्रसार के लिए वह सबसे उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध हुए। उनके कार्य का मूल्यांकन व्यापक हिन्दी नवजागरण के संदर्भ में ही सम्भव हैं।"

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. यायावर, भारत (सम्पा.), *महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली,* खण्ड 3, पृ. 240
2. यायावर, भारत (सम्पा.), *महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली,* खण्ड 4, पृ. 446

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, *हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,* पृ. 79–80
4. ग्रोवर, बी. एल./यशपाल, *आधुनिक भारत का इतिहास,* पृ. 270
5. शुक्ल, रामचन्द्र, *हिन्दी साहित्य का इतिहास,* पृ. 246
6. शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी *और हिन्दी नवजागरण,* पृ. 16

अमृतपुरुष डॉ. अमरेन्द्र रो अंगिका बाल-साहित्य

डॉ० श्वेता भारती
(स्नातकोत्तर अंगिका विभागद्ध
(तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुरद्ध

सारांश

.....

सिरिफ अंगिके बाल-साहित्य के लेखन अमृतपुरुष अमरेन्द्र से शुरू नै होय छै बलुक आय जों अंगिका बाल-साहित्य शीर्ष पर स्थित छै, ते ऊ भी अमृतपुरुष अमरेन्द्र के ही कारण। बाल-साहित्य के जे भी भेद हुए पारे, चाहे ऊ काव्य में मुक्तक रहे कि प्रबन्ध, तुक्तक रहे कि बाल-काव्यरूपक, ऊ चाहे बाल-उपन्यास रहे कि बाल-कहानी, या फेनु बाल-नाटके कैन्हें नी रहे, शायते बाल-साहित्य के हेनो कोय भेद छै, जे डॉ. अमरेन्द्र से घुटलो होतै।

जो अंगिका बाल-साहित्य से हिनको बाल-साहित्य के हटाय लेलो जाय, ते उपलब्धि आरो विविधता के नाम पर अंगिका बाल-साहित्य के पास बहुत अधिक शेष नै बचतै। ई साहित्यकार के बाल-साहित्य नै खाली संख्या के दृष्टि से, बलुक श्रेष्ठता के दृष्टि से भी अंगिका साहित्य में अद्वितीय छै।

कुछ प्रमुख शब्द : अंगिका बाल-साहित्य, अमृतपुरुष अमरेन्द्र, बाल-साहित्य रो विविध रूप।

भूमिका

बाल-साहित्य के सृजन सहज नै छै, यही कारण छै कि कोय भी भाषा कैन्हें नी रहे, वहाँ बाल-साहित्य आरो ओकरो लेखक के संख्या प्रायः ओतनै होय छै कि अंगुली पर गिनलो जावे सकै। अंगिका साहित्य में भी वही स्थिति छै, मतर सुख के बात यही छेकै कि यहाँ डॉ. अमरेन्द्र ने अकेले एतनाहै विपुल बाल-साहित्य के सृजन करले छै कि ऊ अंगिका भाषा के बाल-साहित्य के सदियो मजबूत बनैले रखतै।

प्रतिपाद्य विषय : जों डॉ. अमरेन्द्र के सम्पूर्ण अंगिका बाल-साहित्य के विचार-विमर्ष के विषय बनैलो जाय, ते यैमे हिनको लिखलो बाल-गीत, बाल-काव्य, बाल-नाट्य काव्य, तक्तुक काव्य, पहेली मुक्तक के अतिरिक्त बाल-उपन्यास, बाल-नाटक, बाल-कहानी आरनी विधा समाहित होतै। एकरा से एतना ते समझले जावे पारै छै कि अंगिका के डॉ. अमरेन्द्र द्वारा रचनो अंगिका बाल-साहित्य कत्ते विस्तृत आरो विविधता से पूर्ण छे, जबकि हिनको अनुवादित अंगिका बाल-साहित्य के बारे में बाते नै होलो छै आरो ई अनुवादित बालकाव्यसाहित्यो

कम फैललो होलो नै छै। नीचे पहिले हिनको अंगिका बाल-गीते पर विचारना जरूरी होतै, कैन्हे कि संख्या आरो फैलाव के दृष्टि से हिनको बालकाव्यसाहित्य सबसे पहले आवै छै आरो लोकप्रियतौ के दृष्टि से। हिनको रचित बाल काव्य-साहित्य निम्नांकित छै :

(1) ढोल बजै छै दम्मक ढंग (1994) (2) बुतरू के तुतरू (1999) (3) बाजै बीन, बजावै तीन (2005) (4) एक छड़ी पर अंडा नाचौ (2005) (5) तुक्तक मुक्तक (2008) (6) पाँच तिया पनरो (2009) (7) घटोत्कच (2011) (8) पंचामृत (2021) (9) पाला पर रौद (2021) (10)

ऊपर गिनैलो बाल-काव्य में 'घटोत्कच' ते बाल-खडंकाव्य छेकै, जबे कि 'पंचामृत' आरो 'पाला पर रौद' बाल-काव्य रूपक। 'एक छड़ी पर अंडा नाचौ' डॉ. अमरेन्द्र द्वारा रचित एक सौ एक बुझौव्वल (पहेली) के संग्रह छेकै। करिया झुम्मर खेलै छी में भी हिनको केएक कविता बालगीत ही छेकै। बाल-काव्य के अन्तरवस्तु पर विचार करै के पहले हिनको दसो बाल-काव्य के परिचय नीचे प्रस्तुत छै :

करिया झुम्मर खेलै छी : संपादक अभिनंदन ने जे डॉ. अमरेंद्र के अंगिका बाल-गीत समग्र के संपादन करले छै, वैमें ई कविता-संग्रह के भी स्थान देले छै, जबकि ठीक-ठीक देखलो जाय, ते ई संग्रह के कुछ एक कविता के छोड़ी के बाकी सब कविता प्रौढ़ पाठके लेली ही छै, यही कारण छै कि अपनो शोध-प्रबंध में डॉ. श्वेता रानी ने डॉ. अमरेन्द्र के बाल-गीत-संग्रह के सूची में 'करिया झुम्मर खेलै छी' के विवेचना के विषय नै बनैले छै, न बाद के अपनो ऊ आलोचना पुस्तके में, जे ई कवि के संपूर्ण बालसाहित्ये पर मूल्यांकन के पुस्तक छेकै। यहां यहू याद रखना जरूरी छै कि ई कविता-संग्रह के प्रकाशन 1982 ई में ही होय छै, मतर संपादक अभिनंदन में ई संग्रह के स्थान बालगीत समग्र के आखरी में रखले छै, जे ई बात के सिद्ध करै छै, कि संपादक के भी ई संग्रह में संकलित कविता के बालगीत होय पर शंका रहलो छै। ई संग्रह में बस आखरी के एक-दू गीत ही बालगीत छेकै। जेकरो ओर अमरेन्द्र के बालगीत के आलोचक डा. श्वेता रानी ने भी इशारा करले छै।[1]

वास्तव में 'ढोल बजै छै ढम्मक ढम' ही ऊ बालगीत-संग्रह छेकै, जे ई कवि के अंगिका कालगीतो के पहलो संग्रह छेकै, जेकरो पहिलो प्रकाशन 1994 ई में होलो छै आरो जेकरा में कवि के बत्तीस बालगीत संकलित छै। बाल-मनो के लुभावैवाला ई कविता-संग्रह के हेने घूम रहलै कि जल्दिये 1999 ई. में कवि रो दोसरो संग्रह 'बुतरू के तुतरु' प्रकाशित होलै, जेकरा में 28 अंगिका बालगीत संकलित छै। ई ऊ समय छेकै जबे अमृतपुरुष अमरेन्द्र के सौंसे ध्यान अंगिका बालसाहित्य के समृद्ध करै दिस मुड़ी गेलो छेलै। अंग प्रदेश में तखनी ई संग्रह के भी खासा प्रभाव रहलै। ई संग्रह के लोकप्रियता ते हेनो छेलै कि खिलौना लैके बदला बच्चां 'बुतरू के तुतरू' संग्रह लैले चाहै। डॉ. सत्यानंद द्वारा ई प्रसंग के उल्लेख भी बहुत रोयक छै। बालकाव्य के ई लोकप्रियता से प्रभावित होय के कवि अमरेन्द्र बालकाव्य के विविध शैली में मुक्तक-सृजन के दिस मुड़ै छै, 'एक छड़ी पर अंडा नाँचै वही काल के मुक्तक-संग्रह छेकै। ई बालकाव्य कवि के एक सौ एक बुझौव्वल (पहेली) के संग्रह छेकै, जेकरो प्रकाशन सन् 2005 ई होलै। ई बुझौव्वल-संग्रह के खास बात छेकै

कि यैमें जे भी विषय उठैलो गेलो छै, ऊ बाल–ज्ञान से बाहर के चीज नै छेकै। एकरो अन्तर्गत ऊ सब प्राणी, प्रकृति, यंत्र, खाद्य, पदार्थ, घरेलु वस्तु, देह–संबंधी, श्रृंगार–संबंधी वस्तु के पहेली के विषय बनैलो गेलो छै, जे बालक के देखलो–सुनलो, जानलो–पहचानलो छै। ई बात के नीचे के कुछ उदाहरण से समझना ठीक होते :

एक घड़ी पर अंडा नाचै
जैमें भिडियाँ आवै–जावै
अंडे गिरै नै छड़िये डोलै/कत्तो कोय्यो जोर लगावै।[2]
गाछ
पीछू कटै ते दारु पीयै आगू कटै बटोही
तीन वर्ण के घर के मोहै/चिड़ियाँ ले निरमोही।[3]
सुराही
ठीक यही बुझौव्वल–संग्रह एक छड़ी पर अंडा नाँचै के बाद ही डॉ. अमरेन्द्र के एक आरो बाल–मुक्तक–संग्रह आवै छै –– (तुक्तक मुक्तक)

तुक्तक दरअस्ल शिशु–गीत होय छै, जेकरा अर्थ से बेसी तुक आरनी के ख्याल रखलो जाय छै –हेनो कि बच्चा के कानो के सबसे बेसी अच्छा लगे। जाहिर छै, हेनो शिशु–गीत के आकारो बहुत छोटो होय छै, जे बच्चा के ठोरो पर आसानी से चढ़े पारे। बालगीतकार डॉ. अमरेन्द्र ने 'तुक्तक–मुक्तक' में एकरो बहुत ख्याल रखले छै।[4] हालांकि हिनको तुक्तक एकदम अनर्गल बातो के मुक्तक नै छेकै। संग्रह के कोप्यो तुक्तक के उठाय के देखी लेलो जाय, ते ई बात एकदम सिद्ध होय जैतै। होना के यहू बात सही छेकै कि तुक्तक होला के कारण एक मुक्तक में एक विषय के प्रस्तुति–यहू नै मिलै छै। नीचे संग्रह के आगुए, के दू उदाहरण प्रस्तुत छै :

सिल–सिलोटी/अट्टा गोटी
कुट–कुट बोलै/सुक्खा रोटी।
चार मनो के/एकके कोठी आँख छेकौ कि/ई कजरोटी।
नाना जी के/मोटका चोटी।[4]
2
गिरलै ओला/बम–बम भोला।
चार टिकोला/बम–बम भोला।
भर–भर झोला/बम–बम भोला।
खुश छै टोला/बम–बम भोला।[5]

'पाँच तिया पनरो' : 'पाँच तिया पनरो' के पनरहो कविता पहिले चंद्रप्रकाश जगप्रिय द्वारा संपादित 'अंगिका बालगीत–संग्रह' में प्रकाशित होलो छेले, जेकरो प्रकाशन–वर्ष सन् 2028 छेकै। बाद में यही कविता सिनी अभिनंदन द्वारा संपादित डॉ. अमरद्रें के बालगीत : समभ्र में यहीं नामो से प्रकाशित करलो गेलो छै। समग्र के प्रकाशन–वर्ष 2001 ई छेकै।

प्रबंधात्मक बाल-काव्य :

डॉ. अमरेन्द्र ने खाली बाल-मुक्तक काव्ये के प्रचूर मात्र में नै रचले छै, बलुक हिनी प्रबंधात्मक बाल-काव्यो के सृजन करले छै। ई प्रबंधात्मक बालकाव्य छेकै (घटोत्कच) खंड -काव्य पंचामृत, बाल-नाट्यकाव्य, आरो 'पाला पर रौद बाल-नाट्यकाव्य।

'घटोत्कच' बाल-खंडकाव्य के पहिलो प्रकाशन भागलपुर से ही प्रकाशित दैनिक अखबार नई बात के रविवारीय परिशिष्ट में 13 दिसम्बर 2011 ई में होलो छलै, बाद में ई बाल-खंडकाव्य अंगिका बालगीत समग्र में सन् 2021 ई में प्रकाशित होलै। बस दोनो में अंतर ई छै कि पहिलो प्रकाशन में ई सर्गबद्ध नै छै, मतर अभिनंदन के संपादन में प्रकाशित होयवाला

ई बाल-खंड काव्य-प्रत्यक्ष, संघर्ष आरो पतन शीर्षक में बद्ध छै।

एकरो कथा चूँकि महाभारत के कथा पर आधारित छै, यैलेली बच्चा लेली ते ई पहिले से रोचक छै, मतर बाल-गीतकार डॉ. अमरेन्द्र ने घटोत्कच के रूप-वर्णन में जे कला-कौशल के प्रदर्शन करले छै, ऊ ते अद्‌भुत। घटोत्कच के अंग-प्रत्यंग लेली जे उपमान उठैलो गेलो छै, ऊ बालक के ज्ञान से बाहर नै होला के कारण बच्चा में खूब मनोरंजन पैदा करै छै। नीचे एक उदाहरण प्रस्तुत छै :

सुइये नाँखी रोइयाँ
नाक लगै जों ई दू कुइयाँ
मूँछ लगै जों बड़का फरसा
घन्नो जों भादो के बरखा।[6] डॉ. अमरेन्द्र ग्रंथावली (खंड-1) पृ. 126

आरो आकाश से नीचे गिरी के मरते राकस के चित्रपा कत्ते गदुगदुाय वाला छै, देखियै :

कद्दू नाँखी फटी गेलै ऊ
सौ टुकड़ा में बंटी गेलै ऊ।[7]

घटोत्कच बाल-खंडकाव्य के आरंभ से लैके आखरी तांय बाल-मनोविज्ञान के अनुकूल जे रं बनैले राखले छै, ऊ बाल-मनोवैज्ञानिको के अभिभूत करैवाला छै।

अंगिका में नै खाली बाल-खंडकाव्ये के बलुक बाल-नाट्यकाव्य के भी सूत्रपात अमृतपुरुष अमरेन्द्र से ही शुरू होय छै। 'पंचामृत' हिनको पाँच बाल-नाट्घमकाव्य के संग्रह छेकै, ईं नाट्यकाव्य छेकै-चोकर के हलुआ, अतिथि-सेवा, आत्मसमर्पण, विशाखा, बुद्धं शरणं गच्छामि। ई पाँचो नाट्यकाव्य बुद्ध के कथाहे से जुड़लो छै, मतर ई कथा हेनो छै जे बाल-शिक्षा के दृष्टि से आते न्है महत्वपूर्ण छै, जत्ते कि बुद्ध के उदात्त व्यक्तित्व के लैके 1 'चोकर के हलुआ' में जों दोसरा के हित पहिले देखे के संदेश छै, ते 'अतिथि-सेवा' से माय-बाबू के सेवा तक के संदेश य 'आत्मसमर्पण', काव्य नाटक से नाटककार ने दिखैले छै कि अपनो चरित्र-बल से बड़ो-से-बड़ो हत्यारा के झुकैलो जावे सकै छै। 'विशाखा' घुमाय-फिराय के जों सीमित परिवार के पक्ष में लिखलो काव्यरूपक छेकै, ते 'बुद्धं

शरणं गच्छामि' जाति-कर्मकांड के हीनता के बतैते काव्यरूपक छके आरो ई किसिम से देखलो जाय ते बच्चा के व्यक्तित्व-निर्माण के दृष्टि से ई पाँचो बाल-काव्य रूपक के कत्ते महत्व छै।

हेनै के महाभारत के वन पर्व में ऐलो युधिष्ठिर आरो धर्मराज के बीच होलो रुंवाद के डॉ. अमरेन्द्र ने 'पाला पर रौद' शीर्षक से काव्यनाटक के रूप देले छै। बस नाटककार ने ई बाल-काव्य रूपक में यही बदलाव करले छै कि जे-जे प्रश्न आरो उत्तर बच्चा सिनी के मनो के विरुद्ध जानी पड़लो छै, ऊ सिनी के काव्यरूपक मे स्थान नै देले छै, बसं पात्र के ध्यान में रखते हुए ओरी आरी आखरी के प्रश्न आरो उत्तर के जरूरे रहे देले छै। बाल-मुक्तक काव्य रो मूल्यांकन : विषय आरो शिल्प-शैली के दृष्टि से डॉ. अमरेन्द्र के बाल-गीत साहित्य पर कही कुछ लिखलो गेलो छै। जों सब्भे आलोचक के बातों के ध्यान में रखी बालगीत के ई कवि के बाल-काव्य पर किचारलो जाय, ते विषय के ही दृष्टि से सम्पूर्ण बाल-मुक्तक काव्य के निम्नांकित वर्गों में बाँटलो जावे सकै छै -(1) पलना रो गीत यानी लोरी (2) शिशु के चलै-बुलै ले सिखावै के गीत (3) खेलगीत (4) चिकोटी-बालगीत (5) प्रकृति के बालगीत (6) पक्षी-संबंधी बालगीत (7) पशु-संबंधी बालगीत (8) राष्ट्रीय भावना रो बालगीत (9) बाल-शिक्षण रो बालगीत (10) पर्व-त्योहार के बालगीत (11) रिश्ता के बालगीत (12) कथा बालगीत (13) फेकड़ा के बालगीत (14) तुक्तक बालगीत (15) किशोर सिनी के बालगीत (16) आंचलिक बालगीत (17) प्रकीर्ण-बालगीत।

डॉ. अमरेन्द्र के लगभग सवा दूसौ से अधिक अंगिका बालगीत में प्रकृति आरो प्राणी से संबंधित कविता के संख्या सबसे बेसी छै, यैमें कोय शक नै, मतुर यहू सही छै कि सब कविता के बालक में ज्ञान-वृद्धि के बात ऐवे करै छै, भले कभी लुकी-छिपी के, कभी आमना-सामना होय के। कवि के बाल-कविता में शिक्षण के यहीं प्रमुखता देखते हुए डॉ. श्वेता रानी ने शिक्षण के निम्नांकित कोटि गिनैले छै : (क) प्रकृति-शिक्षण रो बालगीत (ख) पर्यावरण-शिक्षण रो बालगीत (ग) पशु-ज्ञान से जुड़लो बालगीत (घ) खेल-कूद के ज्ञान से संबंधित (च) भूगोल-शिक्षण के बालगीत (छ) फल, फूल, वनस्पति से संबंधित (ज) स्वास्थ्य-संबंधी बालगीत (झ) अक्षर-गिनती-ज्ञान के बालगीत।[8]

एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत छै :

की निकलै छै कंठो से/सूतो जे रं अंटा से
ग निकलै छै ठोरो से/लोर आँखी के कोरो से।[9] डॉ. अमरेन्द्र ग्रंथावली 105
2
हवा करै सांय-सांय/सुगा करै टांय-टांय
बैलगाड़ी चर्र-चोंय/बेंग करै टर्र टोय[10] उपरिवत् पृ० 60

शैली-कौशल आरो शिल्प : जहाँ तक बालगीत के ई गीतकार के शैली के प्रश्न छै, ते ई मुक्त कंठ से कहलो जावे सकै छै कि कवि ने अपनो बालगीत ले जोन भाषा के चुनाव करले छै, ऊ बालकाव्य लेली पूर्णतः उपयुक्त छै। एकदम साफ-सुथरा शब्द आरो वाक्य, कहीं कोय क्लिष्टता नै, तुक के सुंदरतम विन्यास आरो मिलता-जुलता शब्द के आवृत्ति से गीत में संगीत के आयोजन-ई सब ई कवि के अंगिका बालगीत में अद्भुत रूप से उतरलो होलो छै। यै ठां कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना एकदम जरूरी होतै। देखियै : मुसां खेलके

कपर–कपर/बिल्लीं खेलके चपर चपर दादां खेलके गपर गपर/मामां खेलके हपर–हपर कुतबो खाय मुस्तंडा छै/ बाँकी खाय ले डंडा छै।[11]

डॉ अमरेन्द्र के अंगिका बालगीत के ई खास विशेषता छेकै कि गीत के आखिर में हेनो कुछ बात जरुरे कही दै छै, जे बच्चा में गुदगुदी भरी दे। ऊपर के उदाहरण से ई बात समझलो जावे सकै छै।

जहाँ तक बालगीत के शिल्प के सवाल छै, वहाँ भी कवि एकरो प्रति बेहद सावधान रहलो छै।

चाहे बाल–मुक्तक काव्य रहे आकि प्रबंधात्मक काव्य रचना, कवि हर जगह बाल कविता के अनुकूल शैली के कुशल चुनाव के अतिरिक्त एकरो शिल्प के प्रति भी अत्यधिक सावधान रहलो छै। हिनको सम्पूर्ण बालगीत में शायते एक–आध हेनो गीत मिली जैतै जे चौबीस मात्र के छंद में रचलो छै, नै ते बाकी सब कविता, यहाँ तक कि खंडकाव्य आरो काव्यरूपक में भी चौपाई छंद यानी सोलह मात्र के छंदे के प्रयोग होलो है। कहै के जरूरत नै छै कि चौपाई छंद में रचनो बालगीत बच्चा सिनी वास्ते पढै–गावै में कोय दिक्कत नै पैदा करै छै। अंगिका के ई गीतकार के बराबर कोशिश रहलो छै कि चौपाई वर्ग के छोटो–से–छोटो छंद में बालगीत रचलो जाय। यही कारण छै कि ई कवि के बालगीत चौपाई, चौपई, हाकली, अखंड, वसुंधरा, अलिपद छंदो में ही रचलो छै। अलिपद छ मात्र के सबसे छोटो छंद मानलो प्राय छै। नीचे अलिपंद छंद में रचलो कवि के एक बाल–मुक्तक प्रस्तुत छै :

टुन, टुन, टुन
सब्भैं सुन।[12]

छंद रो ई विविधता बाल–गीत के ई गीतकार के अलग से एक नया नया पहचान दै छै, यैमें कोय शक नै।

बाल–गद्य साहित्य : हेनो नै छै कि डॉ. अमरेन्द्र ने खाली विपुल बाल–कविताहे के सृजन करले छै, बलुक हिनको अंगिका में रमलो बाल–गद्य साहित्यो कम नै छै आरो श्रेष्ठता के दृष्टियो से ओतन्हैं महत्वपूर्ण।

बाल–गद्य साहित्य में हिनको प्रवेश 'पंचगव्य' एकांकी–संग्रह से होय छै जेकरा में किशोरो वास्ते पाँच एकांकी संकलित है। करनी–धरनी साथे–साथ, कलियुग रो सच पुरानो भूत–नया इलाज, सा विद्या या विमुक्तये, मुट्ठी में धूप –ई पाँचो एकांकी सामाजिक–राजनीतिक जागृति, स्त्री–जागृति, अंधविश्वास, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्री–शिक्षा से जुड़लो एकांकी छेकै।

'पंचगव्य' नांखी 'त्रिमुहान' भी हिनको तीन बाल–एकांकी के संग्रह छेकै। डॉ. श्वेता रानी के आलोचना–पुस्तक 'डॉ. अमरेन्द्र का अंगिका बाल–साहित्य' में संकलित ई तीनो एकांकी के शीर्षक छेकै–ईलाज, काकभुसंडी, जमूरा के सवाल, जे एकांकी ध्वनि–प्रदूषण, पर्यावरण–रक्षा आरो शिक्षा क्षेत्र में गड़बड़ी के कारण बाल–विकास में बाधा के लैके लिखलो गेलो छै।

ई दोनो एकांकी–संकलन के सफलता यैमें विन्यस्त रोचक प्रसंग, कसलो संवाद, जीवंत पात्र–चित्रण के कारण छै, जेकरा पर विस्तार से विचार करना जरूरी होते। हिनी नै खाली मौलिक बाल–एकांकिये के सृजन

करले छै, बलुक अनुवाद के एकांकी भी कही लोकप्रिय छै।

अनुवादित बाल-एकांकी-संग्रह : हिनी किशोर उम्र के बालक सिनी वास्ते प्रेमचंद के दू कहानी 'पंच परमेंश्वर' आरो 'पूस की रात' के अंगिका में नाट्य रूपांतरो करले छै। ई दोनो एकांकी 'दुपल्लो' नामक संग्रह में सकं लित छै। डॉ. श्वेता रानी के पुस्तक से एकरो जानकारी मिलै छै कि हिनी प्रेमचंद के कहानी 'नमक का दारोगा' के भी नाट्य रूपांतर करले छै, मतर ऊ प्रकाशित रूपो में प्राप्त नै होय छै।

बाल-कथा साहित्य : हालांकि डॉ. अमरेन्द्र के बाल-अंगिका कथा ऊ संख्या में नै मिलै छै, जोन संख्या में हिनको बालगीत-संग्रह। जों हिनको प्रकाशित-अप्रकाशित बाल-कहानी के संख्या बतैलो जाय, ते ऊ पाँच से अधिक नै छै, ऊ भी संग्रह रुपो में नै। हों, हिनको बाल-कथा साहित्य यै लेली विशेष उल्लेखनीय छै कि हिनी दू काल-उपन्यास लिखी के अंगिका के बाल-कथा साहित्य के बड़ी मजबूती दै देले छै। ई दू बाल-उपन्यास छेकै -'बंटा' आरो 'सात समुंदर तेरह नद्दी'।

ई दोनो उपन्यास में बंटा आरो दुक्खी बाल पात्र के माध्यम से बालसुलभ चंचलता, इच्छा, आक्रोश, क्रिया-कलाप आरनी के एत्ते जीवंत चित्रण होलो छै कि कम-से-कम अंगिका साहित्य में ई एकदम से दर्लुभ छै फेनु ई भाषा में एत्ते आरो बाल-कथा साहित्य के लेखने के करले छै?

बाल-उपन्यास लिखै के अतिरिक्त डॉ. अमरेन्द्र ने दोसरो भाषा के बाल-उपन्यास के अंगिका अनुवादो करले छै। उर्दू भाषा के चर्चित साहित्यकार डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी के तीन बाल-उपन्यास के अंगिका अनुवाद हिनी 2009 ई में ही करले छै। ई अनुवादित उपन्यास छेकै-शेर आरो शिकारी, फैसल केरो जासूरी, जंगल रो पहचान। अनुवादित कथा साहित्य में भी अनुवादक ने पर्यावरण आरो राष्ट्रीय सुरक्षा के लैके जगह-जगह पर परिवतर्न अवश्य करी देले छै, जेकरा से ई अनुवादित कथा साहित्य आरो बालोपयोगी बनी गेलो छै।

उपसंहार :

उपरोक्त विवेचन से ई स्पष्ट छै कि अंगिका बाल-साहित्य के प्रत्येक कोना के समृद आरो कलात्मक रूप दै में अमृत पुरुश अमरेन्द्र के बराबरी के कोय्यो लेखक ई भाषा में दोसरो नै छै। हिनी नै खाली अंगिका बाल-साहित्य के मुक्तक, खंड काव्य, काव्य रूपक, पहेली, एकांकी नाटक, उपन्यास, कहानी से ही समृद्ध करने छै, बलुक समय-समय पर अन्य भाषा के बाल-साहित्य के अंगिका भाषा में अनुवादित करी एकरो बाल-साहित्य के विस्तृत आरो समृद्ध करले छै, जे समृद्धिये पर बाल-अंगिका के भव्य ईमारतो टिकलो होलो छै।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. श्वेता रानी डॉ. अमरेन्द्र का अंगिक बाल साहित्य/पृ. 52/समीक्षा प्रकाशन
2. डॉ. अमरेन्द्र (एक छड़ी पर अंडा नाचै/पृ. 10/अंगिका संसद)
3. उपरिवत्/पृ. 36

4. डॉ. अमरेन्द्र (तुक्तक-मुक्तक/पृ. 9/अंगिका संसद)

(5.) उपरिवत्/पृ. 10

6. डॉ. अमरेन्द्र ग्रंथावली (खंड-1/सं. अभिनन्दन/पृ. 127/समीक्षा प्रकाशन)

7. उपरिवत्/पृ. 136

8. डॉ. श्वेता रानी (डॉ. अमरेन्द्र का अंगिका बाल साहित्य/पृ. 17-18)

9. तक्तक मुक्तक तक (पृ. 22)

10. अमरेन्द्र (बाजै बीन, बजावै तीन/अंगिका संसद)

11. उपरिवत्/ पृ. 7

12. अमरेन्द्र (बुतरु के तुतरु/पृ. 53/अंगिका संसद)

गाँधीजी एवं उनका दर्शन

डॉ० रवीन्द्र कुमार
अतिथि सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग
एस०बी०एस०एस० महाविद्यालय, बेगूसराय
(एल०एन०एम०यू०, दरभंगा, बिहार)

ऐसा कभी-कभी होता है कि सामान्य स्तर से उपर उठकर कोई असाधारण आत्मा, जिसने ईश्वर के विषय में बहुत अधिक गहराई से चिंतन किया है और दैवीय मार्गदर्शन के अनुरूप ही वीरतापूर्वक आचरण करती हो, महात्मा गाँधी उन्हीं महान विभूतियों में से एक थे।

उनका जीवन एवं उपदेश उन मूल्यों के साक्षी हैं, जो की सभी सीमाओं के परे, सार्वभौम हैं और दशकों से इस देश की धरोहर हैं। यदि समसामयिक अभिमतों को महत्वपूर्ण माने तो गाँधी जी की गिनती मानव इतिहास के महानतम पुरूषों में की जाएगी। परंतु समस्त भारत के लोगों के हृदय में वे युगों-युगों तक महात्मा और राष्ट्रपिता के रूप में अंकित रहेंगे। इतिहास हमेशा इस बात पर गर्व करेगा कि एक छोटे से दिखने वाले व्यक्ति का अपने देशवासियों के उपर इतना जबर्दस्त प्रभाव था कि उनकी कोई और मिसाल नहीं मिलती। ये आश्चर्य की बात है कि उनके उस प्रभाव के पीछे कोई लौकिक शक्ति या अस्त्र-शस्त्रों का बल नहीं था बल्कि इनके पीछे ताकत थी गाँधी की सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह की नीति। गाँधी जी ने राज्य की संगठित शक्ति के मुकाबले अहिंसा एवं सत्य की पवित्र शक्ति को ला खड़ा किया था। जिसमें बिना रक्त की एक बूँद बहाये ही भारत को विदेशी दासता से मुक्त कराया।

अहिंसा की शक्ति:- गाँधी जी की जो अहिंसा को लेकर धारणा थी वो ये थी कि "अहिंसा का अर्थ बुराई करने वालों की इच्छा के समक्ष विनीत बनकर आत्मसमर्पण कर देना नहीं, बल्कि उसके विरूद्ध अपना पूरा आत्मबल लगा देना है। मानव जाति के इस नियम के अनुसार आचरण करते हुए, एक अकेला इंसान भी अपने सम्मान, अपने धर्म, या अपने आत्मा की रक्षा के लिए किसी अन्यायी साम्राज्य की पूरी शक्ति का मुकाबला कर सकता है और साम्राज्य के पतन तथा पुनरुद्धार की नींव रख सकता है।"[1]

गाँधी जी के अनुसार अहिंसा 'धर्म' का भी रूप ले सकती किन्तु तभी जब वह सर्वव्यापी हो। अहिंसा की शक्ति दुनिया का सबसे सक्रिय बल है। अहिंसा सर्वोच्च नियम है और गाँधी जी ने अपने इस अहिंसा के नियम से ना तो कभी विमुख हुए और ना ही कभी कोई समझौता किया। उनकी इसी विचारधारा ने पराधीनता की दासता और अन्याय के अँधेरों से भारत के करोड़ों लोगों को निकाला एवं उन्हें आशा की किरण दिखाई। उन्होंने अहिंसा की शक्ति की ना सिर्फ बातें की बल्कि उसको प्रायोगिक रूप से सफल करके दिखाया। उन्होंने अहिंसा को कभी व्यक्तिगत सद्गुण नहीं माना, उनके हिसाब से ये सामाजिक सद्गुण था। उनके अनुसार

अहिंसा को आधार मानकर बसा गाँव, समाज एक ऐसा समाज होगा जहाँ स्वैच्छिक सहयोग एवं गरिमामयी शांतिपूर्ण जीवन होगा।

"युद्ध का विज्ञान हमें विशुद्ध तानाशाही की ओर से जाता है। अहिंसा का विज्ञान ही शुद्ध लोकतंत्र की ओर से जा सकता है।"[2]

गाँधी जी कहते हैं कि कोई भी सरकार पूर्णत: अहिंसक बनकर कामयाब नहीं हो सकती है, क्योंकि वह सभी लोगों को प्रतिनिधित्व करती है।

किन्तु लोकतंत्र में हिंसा का भी स्थान नहीं है, उन्हें बहुत हद तक अहिंसक बनकर लोकतंत्र को प्रभावी रूप से नियंत्रित एवं निर्देशित किया जा सकता। परंतु ध्यान देने वाली बात ये भी है कि गाँधी जी ने आत्मरक्षा जैसी विकट परिस्थितियों में अहिंसा त्याग कर हिंसा के प्रयोग को भी नैतिक माना। वो लिखते हैं "जो व्यक्ति मृत्यु का सामना करते हुए अहिंसक ढंग से अपने प्रियजनों एवं उनके आत्मसम्मान की रक्षा नहीं कर सकते उनकों शत्रु के साथ हिंसक संघर्ष करना चाहिए। उन्हें ऐसा जरूर करना चाहिए। जो इन परिस्थितियों में ऐसा नहीं करता है वो व्यर्थ का भार है। वह परिवार का मुखिया होने का लायक नहीं है। वह या तो कहीं छुपकर जा बैठे या सदा के लिए लाचारों की लजदगी जीने और दबंगों के आगे कीड़े की तरह रेंगने के लिए तैयार रहें।"[3]

अहिंसा पर गाँधी के विचारों को सही से आम जनों तक नहीं पहुँचाया गया, वो कहते थे कि अहिंसा भी बहादूर मनुष्यों के लिए है, अहिंसा एक प्रयोग है, जो हमें प्रतिरोध करना सिखाता हैं। कायर कभी भी अहिंसा के इस सत्य को नहीं जान सकते। अहिंसा संसार का सबसे महान सिद्धांत है एवं उच्चतम आदर्श है। अहिंसा का सिद्धांत केवल और केवल ऐसे व्यक्तियों द्वारा हीं प्रचारित हो सकता है जो अहिंसा के सिद्धांत पर अटूट आस्था रखते हुए बलिदान देने का सामर्थ्य रखते हों।

अहिंसा एक व्यापक सिद्धांत है।

हम हिंसा की ज्वाला में फँसे हुए असहाय प्राणी हैं। मनुष्य जाने अनजाने बाह्य हिंसा किये बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। खाने-पीने एवं चलने-फिरने में उससे कोई-न-कोई हिंसा हो ही जाती है, किन्तु वह यदि छोटे-से-छोटे जीवों को भी नष्ट ना करने एवं हिंसा से भरसक परहेज करता है तो वह ईमान का सच्चा होता है। गाँधी जी के अनुसार मानव जाति के हाथ में 'अहिंसा' सबसे बड़ा बल है। मनुष्य की सूझ ने विनाश के जो प्रबल-से-प्रबल हथियार निकाले हैं, यह उनसे भी प्रबल है। विनाश मानव का धर्म नहीं है। हत्या या आघात, मानवता के विरूद्ध है।

"बहुत से लोगों ने गाँधी जी को साम्यवादी भी कहा। किन्तु साम्यवादियों ने उनके साम्यवाद का विरोध किया। इतना होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि समता, स्वतंत्रता एवं विश्व बंधुत्व की भावनाओं को वो साम्यवादियों से कम नहीं मानते थे। वे हमेशा से हिंसक क्रांति की जगह अहिंसा के पक्षधर थे।"[4]

गाँधी जी ने अपने अहिंसा दर्शन में आत्मशुद्धि पर बल दिया। यहाँ आत्मशुद्धि से मतलब है स्वयं पर

नियंत्रण और बाह्य आचरण एवं आंतरिक आचरण का एक होना। वो कहते है कि "प्रेम एवं अहिंसा का प्रभाव अद्वितीय है, किन्तु सभी प्राणियों के साथ तादात्म्यता के बिना आत्मशुद्धि असंभव है। आत्मशुद्धि के बिना अहिंसा धर्म का पालन थोथा स्वप्न ही रहेगा। इसलिए आत्मशुद्धि का अर्थ जीवन के सभी पहलुओं में शुद्धि होनी चाहिए।"[5]

अहिंसा और आने वाला कलः- भविष्य के विषय में जितनी भी अटकलें आज लगाई जाती है शायद ही कभी लगाई जाती होगी।

क्या हमारी दूनिया में इसी तरह हमेशा हिंसा का बोलबाला रहेगा? क्या हमेशा ऐसे ही दरिद्रता, भूखमरी और दुःख सर्वव्याप्त होगा? क्या इसी तरह धर्म का ह्रास होगा और दुनिया नास्तिक होती जायेगी? इन सारे प्रश्नों के जवाब हर व्यक्ति के पास अलग-अलग है।

किन्तु गाँधी जी ने कहा है कि कल का समाज अहिंसक होगा ऐसा जरूर होगा। और ये बात उन्होंने केवल विश्वास के सहारे नहीं बल्कि धारणा के बल पर कहा।

एक दुरस्थ लक्ष्य अव्यवहारिक लग सकता है, किन्तु अप्राप्य नहीं है। जरूरत है तो बस गाँधी जी के बताये अहिंसक मार्ग पर चलने की, आत्मशुद्धित हृदय से अहिंसा धर्म का पालन करने की। हमें बस दुःख, विषाद और नकारात्मक मनोवृत्तियों को बस बदलने की जरूरत है। फिर ये लक्ष्य बहुत आसान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'महात्मा गाँधी के विचार' - आर०के० प्रभु एवं यू० आर० राव, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ सं०-125
2. हरिजन पत्रिका 12 /11 / 1938, पृष्ठ सं०- 328
3. 'यंग पत्रिका' 21/01/1930, पृष्ठ सं०-27
4. 'गाँधी जी का दर्शन - संगमलाल पांडेय, दर्शनपीठ प्रकाशन, पृष्ठ सं०-218
5. 'एन ऑटोबायोग्राफी' - एम०के० गाँधी, पब्लिक अफेयर्स प्रेस, वाशिंगटन, डी०सी०, पृष्ठ सं०-615

काशीनाथ सिंह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ० विजय लक्ष्मी गुप्ता
अ०प्रो० (हिन्दी विभाग)
सूर्यबली महाविद्यालय, देवकली, जौनपुर

काशीनाथ सिंह का व्यक्तित्व सरल व सहज है। वे अत्यंत आकर्षक व सौम्य व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति हैं। आपकी विचारधारा जो साहित्य में परिलक्षित होती है वही आपके व्यक्तित्व में झलकती है। आपका स्वभाव सरल व स्वाभाविक गुण लिए हुए है। आप अपने हँसमुख स्वभाव के ही कारण अपने पाठकों और दोस्तों में लोकप्रिय रहे हैं। साहित्य में चित्रित प्रवृत्ति आपके स्वाभाविक व्यक्तित्व का ही चित्रांकन है। आपने अपने जीवन में सदैव बनावटी भाव-भंगिमाओं से परहेज किया है।

काशीनाथ सिंह अपने तीन भाईयों में से सबसे छोटे थे। पिता नागर सिंह गांव के स्कूल में मास्टर थे। माँ धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं उनका स्वभाव अत्यंत भावुक व कोमल प्रवृत्ति का था। काशीनाथ सिंह का बचपन सामान्य बच्चों की तरह ही व्यतीत हुआ, अकसर वे जीयनपुर के बच्चों के साथ गिल्ली-डंडा खेलते थे। आपके पिता गंभीर और स्वाभिमानी किस्म के व्यक्ति थे वे किसी से अधिक मतलब नहीं रखते थे। अपने पिता के सम्बंध में काशीनाथ सिंह लिखते हैं कि "मेरे पिताजी मुदर्रिस थे। हम उन्हें 'बाबू' बोलते थे। सीधे-सीधे चुप्पा किस्म के आदमी थे। उन्होंने सोलह रुपए माहवार से नौकरी की थी।"[1]

आपने बताया कि आपके पिता अत्यंत ही गंभीर व्यक्ति थे, वे अनुशासित, स्वाभिमानी, और हनुमान जी के भक्त थे। वे अकेले रहना ही पसंद करते थे। लोगों से अधिक मिलना-जुलना या गप्पे मारना उन्हें पसंद नहीं था, एकाग्र और गंभीर मुद्रा में ही वे ही अक्सर लोगों को दिखा करते थे। वे मन के सफ़-सुथरे थे। काशीनाथ सिंह भी अपने पिता की तरह सफ़ मन के व्यक्ति थे।

वास्तव में देखा जाए तो काशीनाथ सिंह का परिवार एक संयुक्त कृषक परिवार था जिसमें चाचा और ताऊ का परिवार भी शामिल था। इन सबके बीच में माँ भी एक प्रमुख घरेलू, पारिवारिक सदस्य थी। माँ के संबंध में काशीनाथ सिंह बताते है कि- "माँ पिताजी से एकदम उलट थीं- स्वभाव में भी और आदतों में भी, नाम बागेश्वरी मगर अनपढ़। बेटों को पढ़ाने के लिए गहना-गुरिया, बर्तन-भाँडा सब कुछ बेचने को तैयार। अकसर पिताजी से झगड़ पड़ती.....हमेशा हँसी-खुशी, उल्लास और उत्साह से भरी हुई।"[2]

माँ का व्यवहार अत्यंत कोमल, भावुक व धार्मिक प्रवृत्ति का था। परिवार में किसी भी प्रकार के तीज-त्यौहार को वे बड़े उत्साह के साथ मनाती थीं। सामान्यतः गाँव-देहात में होने वाले सभी प्रकार के तीज-त्यौहार, मेले आदि में वे काफी निकटता के साथ जुड़ी हुई होती थीं। आपको विभिन्न प्रकार के गीत-संगीत आते थे।

हम देखते हैं कि काशीनाथ सिंह की माता एक सरस स्वभाव की धर्मभीरु, गंवईपन युक्त और रीति-रिवाजों, परम्पराओं को मानने वाली महिला थीं। काशीनाथ सिंह लिखते हैं कि "हर मौसम और हर मौके के लिए उनके पास गीत थे, लोकोक्तियाँ थीं, कहावतें थी।"[3]

आपकी माता अत्यंत दयालु और उदारवादी महिला थीं। गाँव का गंवईपन और बच्चों का भोलापन उनके चेहरे पर साफ दिखाई देता था। जब भी गाँव या परिवार में त्यौहार का माहौल होता आपकी माँ उसमें गीत-संगीत के कार्यक्रम में अवश्य ही हिस्सेदारी करती थीं। उनकी एक विशेषता थी कि वे गाते-गाते रोती थीं और रोते-रोते गीत गाने लगती थीं। आपका व्यवहार सादगीपूर्ण था। आपकी सादगी और लोकगीतों का प्रभाव काशीनाथ सिंह पर पड़ा था। वे कभी-कभी गाँव जाकर लोकगीतों में डूब जाते थे।

काशीनाथ सिंह स्पष्ट वक्ता और सत्य को स्वीकार करने वाले व्यक्ति थे। अपने बचपन के समय को याद करते हुए स्वीकार करते हैं कि पढ़ाई में उनका बिल्कुल मन नहीं लगता था। वे अक्सर स्कूल से भागकर भैंस चराने निकल जाते थे। गाँव में गुल्ली-डंडा खेलते और आंवारा घूमने में समय व्यतीत करते थे। पढ़ाई में मन लगने और स्कूल से बार-बार भागने के कारण आप गणित विषय में काफी कमजोर हो गये थे। फिर गणित ही आपकी कमजोरी बन गई थी।

काशीनाथ सिंह कहते हैं कि "यदि स्कूल में गणित की नकल न कराई गई होती तो न आगे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापक हुआ होता न लेखक होता... हाईस्कूल तक गाँव में रहने के दौरान खेती-बाड़ी के काम में मेरा उपयोग किया जाता था।"[4]

आप सत्य को स्वीकार करते हैं और सत्य को कहने से किसी से डरते नहीं हैं। आपका यह स्वभाव है कि जो बात कहनी है वो सबके बीच कही जाएँ। सत्यता को स्वीकार और उसे अपने जीवन का लक्ष्य बनाना किंचित ही लोगों को पसंद होगा।

काशीनाथ सिंह को अपने गाँव और परिवार से बहुत प्रेम था। आप अकसर छुत्रिृयों में अपने गाँव आते और गाँव के खेत-खलिहानों में काम करने लग जाते थे। गाँव की मिट्टी सदैव आपको अपनी ओर आकर्षित करती रही। आप गाँव की संस्कृति को आत्मसात करते हैं। गांव की संस्कृति और संस्कार को आपने अपने व्यक्तित्व में शामिल किया। माँ की भावुकता और पिता का स्वाभिमान उन्हें विरासत में प्राप्त हुआ था। आप भी अपने धुन के पक्के थे। जैसे आपके पिता थे वैसे ही आप थे। आपका स्वभाव और व्यवहार अपने माता-पिता के ही अनुकूल था।

काशीनाथ सिंह गाँव के परिवेश को अपने स्वभाव में ढालते हैं, वे स्वयं ग्रामीण संस्कृति और समाज के प्रतिनिधि व्यक्ति हैं। ग्राम्यांचल उनकी ठेठ भाषा में झलकता है। जब तक आप पढ़ने के लिए बनारस नहीं आ गये तब तक आप खेती-बाड़ी में अपने भाई रामजी का हाथ बँटाते रहते थे। किन्तु जब आप पढ़ने के लिए बनारस आये तब खेती-बाड़ी की जिम्मेदारी रामजी ने अपने ऊपर ले ली थी। आपने बनारस आकर पहली बार रेलगाड़ी देखी। शहर को देखकर आप काफी उत्साहित हो गये और शहर उन्हें अच्छा लगने लगा। किन्तु इसके पश्चात् भी अपने गाँव को नहीं भूल पाये और गाँव उनकी स्मृति में बस गया। ग्रामीण परिवेश

से आप आत्मीय रूप से जिंदगी भर जुड़े रहे, शहर जाकर भी आपने ग्राम्यांचल की यादों को संजोकर रखा। आपका मन शहर जाकर पढ़ाई में लगने लगा था। परन्तु ग्राम का परिवेश आपके जीवन और मन के इर्द-गिर्द हमेशा ही मौजूद रहा।

काशीनाथ सिंह कहते हैं कि "गाँव मेरी जिंदगी का हिस्सा है, जिससे मैं आज तक मुक्त नहीं हो पाया।"[5]

काशीनाथ सिंह का कहना है कि यह इतना आसान नहीं था कि एकदम से गाँव को छोड़कर शहर में बस जाना। गाँव में खेलने-कूदने वाला नवयुवक शहर के वातावरण से सामन्जस्य बैठाने लगा। अपने बड़े भाई के साथ सत्तू और गुड़ खाकर शहर में वे जीवन-पथ पर अग्रसर हुए। काशीनाथ सिंह के जीवन में उनके माता-पिता और भाईयों का बड़ा प्रभाव पड़ा। नामवर सिंह से आपने सत्य, निर्भीकता, साहसिकता और संघर्ष का पाठ सीखा। आपके व्यक्तित्व निर्माण में गाँव और परिवार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। माँ को अकसर वे शहर में याद करते रहते थे। माता-पिता को विश्वास था कि उनका बेटा शहर में पढ़-लिखकर नौकरी करेगा। उनके आशा और विश्वास को आपने टूटने नहीं दिया। आपको अपनी माँ की सुनाई हुई कई कहानियाँ याद थीं, उनके तीज-त्यौहारों के गीत आपके कहानियों में देखने को मिलता है। वे कहते हैं कि कहानी कहने का ढंग, कहानी कहने का शिल्प आपने अपनी माँ से सीखा है।

काशीनाथ सिंह कहते हैं कि गाँव उनके जीवन का एक हिस्सा है उनके जीवन में शामिल है, गाँव उनसे कभी अलग ही नहीं हुआ। वे बनारस में बैठकर जीयनपुर का जिक्र करते हैं।

"मुझे याद आ रहा है कि शुरुआत में मैंने एक कहानी लिखी थी- 'सुख' और सुख कहानी में ताड़ों के पीछे डूबते हुए सूरज का दृश्य है। दरअसल वह कहानी लिखी गई थी बनारस में लेकिन मेरी आँखों के सामने मेरे गाँव का वहीं डूबता हुआ सूरज था।"[6]

काशीनाथ सिंह के साहित्य में प्रकृति की अभिव्यक्ति वास्तव में जीयनपुर के वास्तविक प्राकृतिक दृश्य है। वे भले ही बनारस में रहे किन्तु आप कभी भी अपने गाँव की संस्कृति व संस्कारों से अलग नहीं हुए। आपका सरल व सहज स्वभाव गाँव के परिवेश का ही परिणाम है।

काशीनाथ सिंह एक प्रख्यात रचनाकार हैं किन्तु फिर भी आप अत्यंत सरल व सहज स्वभाव के व्यक्ति हैं। आपकी उपलब्धि आपके स्वभाव को प्रभावित नहीं करती है। आप व्यवहार सदैव ही सहज बना रहता है। आप लम्बे-चौड़े गौर वर्ण के व्यक्ति थे। आपकी आदत में पान खाते रहना शामिल था। पान खाना आपका शौक था, पान खाकर आपका चेहरा और अधिक गौर वर्ण दिखने लगता था। आपका यह शौक कई लोगों को नागवार गुजरता था।

आप अकसर अपने उन क्षणों को याद करते हैं जिसमें आप अत्यंत परेशान और दुखी रहें। आपके विश्वविद्यालय में आपकी स्थिति काफी असुविधाजनक थी। आपके जीवन में यह अध्याय भी प्रशंसनीय है। आपके जीवन में अनेक प्रकार की विपत्तियाँ आती रही और आप उसका सामना करते रहे, आप कभी भी किसी भी विपत्ति या कठिनाई से डरकर नहीं भागे। आप हमेशा ही संघर्षशील बने रहे। जहाँ तक आपके

डिपार्टमेंट की बात है आप अपने ही कर्मक्षेत्र में सस्ती राजनीति का शिकार रहे किन्तु कभी भी आप डरकर भागे नहीं। आप हमेशा मुकाबले के लिए तैयार रहे।

आपको वर्ष 1965 ई0 में स्थायी रूप से प्राध्यापक की नियुक्ति मिल गई। किन्नु तीस साल की सेना में अक्सर आप विश्वविद्यालियन तंत्र से उपेक्षित होते रहे। किन्तु आपने प्रत्येक इंक्वायरी, जाँच आदि का धैर्य के साथ सामना किया। आपने कभी भी अपनी राजनीति पहचान को विश्वविद्यालयिन जांच कमेटी के लिए उपयोग में नहीं लाया। सदैव अकेले ही फ्रंट में रहकर साहस के साथ किसी भी प्रकार के आरोपों का सामना किया। वे कहते हैं कि मैंने अपने विभाग से ही सच के लिए लड़ना सीखा। आपने बड़ी ही ईमानदारी से अपने ऊपर लगे सभी आरोपों का सामना किया। सत्य के लिए लड़ना और ईमानदारी से अपना कार्य करना आपके व्यक्तित्व में शामिल रहा।

काशीनाथ सिंह ने अपने जीवन में मानवीय संवेदनाओं को अधिक महत्व दिया है। इसका प्रमुख कारण है उसका परिवेश, वे जिस परिवेश से आते हैं वहाँ गाँव, मध्यवर्गीय जीवन, समाज के प्रति नैतिक मूल्यों का दृष्टिकोण है। इसी कारण आपका स्वभाव और विश्वास मानव कल्याण के प्रति अधिक रहा था। आपका स्वभाव समाजवादी मान्यताओं के अनुरुप रहा था। सामाजिक समरसता, एकता और अखण्डता के प्रति आप समर्पित थे। आपने जीवनभर सदाचार, आचरण को अपनाया और सादा जीवन उच्च विचार आपका आदर्श बना रहा।

कुछ समय के लिए काशीनाथ सिंह की विचारधारा मार्क्सवादी से भी प्रभावित रही है। जब आपके भाई कम्यूनिस्ट पार्टी के टिकट से चुनाव लड़ रहे थे। उनके भाई चुनाव भी हार गये और नौकरी से भी हाथ धोना पड़ा, किन्तु काशीनाथ सिंह ने न तो अपना धैर्य खोया और न ही अपने भाई का साथ छोड़ा। काशीनाथ सिंह अपने भाई की पीड़ा को व्यक्त करते हैं कि "पहली मई से उनकी नौकरी खत्म हो रही थी। लेकिन वे बातें कर रहे थे जनता के बारे में, लोगों के बारे में। वे जैसे जनता को आर-पार देख रहे थे। वह उनके आगे आइने की तरह साफ हो चली थी। उम्मीद की जा रही थी कि हारने के बाद औरों की तरह या जैसा राम जी भैया कर रहे थे- वे भी जनता को गाली देंगे, उसकी भर्त्सना करेंगे, मूर्ख और जाहिल कहेंगे लेकिन ऐसा नहीं था। उसे लेकर उनके भीतर एक दर्द, एक पीड़ा, एक लाचारी थी।"[7]

काशीनाथ सिंह ने दृढ़-संकल्प, धैर्य आदि का भाव अपने बड़े भाई नामवर सिंह से सीखा, वे चुनाव हारने के पश्चात् आशावादी बने रहे और चुनाव हारने के लिए किसी पर प्रतिरोप नहीं लगाया।

काशीनाथ सिंह ने अनुभव किया कि यथार्थ अनुभव की वस्तुपरक चीज है, यथार्थ को अपने जीवन में महसूस किया जा सकता है। तभी वह अभिव्यक्त होता है। आपने अपनी आँखों से यह दुनिया देखी थी उसमें यथार्थ और विश्वसनीयता को वे अनुभव करने लगे थे। वे अब तक समझ गये थे कि किताबी ज्ञान बेकार है, असली चीज है जिन्दगी का अनुभव करना और उसे जीने योग्य बनाना। काशीनाथ सिंह का स्वभाव था जिदंगी जीने के अपने मापदण्ड तय करना और उन्हें भलीभाँति मालूम था कि उन्हें क्या करना है। वे भी कहानीकार या रचनाकार बनना चाहते थे, तत्कालीन रचनाकार आधुनिकता का आवरण ओढ़े हुए थे, काशीनाथ सिंह भी आधुनिक लेखक श्रेणी में अपना नाम दर्ज करना चाहते थे। किन्तु आधुनिकतावाद की पहली शर्त थी परम्परा

का विरोध करना, परन्तु काशीनाथ सिंह तो अपने विचारों से परम्परावादी थे वे परम्परा का विरोध केसे करते? उनके अंदर तो लोक–परम्परा निर्बाध सरित की भाँति बह रही थी। वे इस निर्बाध बहती सरित में कोई बांध नहीं बाँधना चाहते थे। सस्ती लोकप्रियता, झूठा प्रोपेगण्डा, विरोधाभास उनके स्वभाव के विपरीत था।

काशीनाथ सिंह ने अपने लेखक बनने के विचार को यथार्थ रूप में वर्णित किया है। आप किसी भी प्रकार के वाद–विवाद में पड़े सहजता के साथ लेखक बनना चाहते थे। तत्कालीन परिवेश साहित्यकारों के विचारों के प्रतिकूल था, समाज की यथार्थ पकड़ न होकर भी लोग लेखक या साहित्यकार बनने लगे थे। काशीनाथ सिंह के स्वभाव झूठ, बेईमानी और मक्कारी नहीं थी। आपने ईमानदारी के साथ नई कहानी के विकास में अपना अपूर्व योगदान दिया।

काशीनाथ सिंह सदैव परम्परावादी विचारों को आत्मसात करने वाले लेखक हैं किन्तु वे घिसी–पिटी साहित्य शैली के विरोधी थे। वे समाज में साहित्य से परिवर्तन लाना चाहते थे। आपकी साहित्यिक विचारधारा मानवीय जीवन को श्रेष्ठता प्रदान करती है, छल–कपट से भरी दुनिया में एक नर्म और भावुक व्यक्ति साहित्य कला के क्षेत्र में प्रवेश कर रहा था जिसका नाम काशीनाथ सिंह था। आपकी एक बड़ी विशेषता यह भी थी कि साहित्य क्षेत्र में प्रतिष्ठित आपके भाई नामवर सिंह को अपने लिए प्रयोग नहीं किया। वे एक प्रतिष्ठित साहित्यकार थे किन्तु आपने अपनी प्रतिभा और योग्यता, रचनात्मक प्रवृत्ति से ही साहित्य क्षेत्र में अपना प्रमुख स्थान बनाने में सफल रहे।

काशीनाथ सिंह कहते हैं कि वे कहानी में नव–परिवर्तन चाहते थे जैसा कि वास्तव में होना चाहिए क्योंकि "उस दौर में मुर्दानगी छाई थी। एकरस और निष्प्राण कहानियाँ लिखी जा वहीं थी।"[8]

आपने एकनिष्ठा और संवेदना के माध्यम से कहानियों में उर्वरा शक्ति उत्पन्न कर दी। आपने कहानियों में आम आदमी की पीड़ा, संवेदना, उनके दु:ख दर्द को समझने का प्रयास किया है। इसी प्रकार आपने उपन्यासों में अपनी सृजनात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया। नये विषय और नये जीवन संदर्भों के साथ आप अपने कथा–साहित्य को विस्तार दिया। तत्कालीन परिवेश के अनुरूप ही पात्रों की रचना की और विविध आयामों में उसका चित्रांकन किया। काशीनाथ सिंह में समकालीन सामाजिकता को समझने का गुण था। वे अपने प्रतिभाशाली खोजों से समकालीन समस्याओं को उजागर किया है।

काशीनाथ सिंह में समकालीनता को समझने की शक्ति भी वे अपने समय के मानवों की मानसिक पीड़ा को समझ रहे थे। उनमें युगबोध का संचार करने वाले वे पहले विचारशील प्राणी थे। मानव का पलायनवादी दृष्टिकोण उन्हें अन्दर तक कचोटता था। अपने तत्कालीन सामाजिक जीवन की तमाम विसंगतियों, आडम्बरों, विपदाओं, व्यथाओं को अपने साहित्य में उकेर दिया है। मध्यवर्गीय समाज की पीड़ा को आपने अपने उपन्यासों में भी व्यक्त किया है, साधारण जीवन–यापन करते ये पात्र उच्च आकांक्षा की तलाश में कहीं खो जाते हैं। आमतौर पर आपका रहन–सहन भी मध्यवर्ग समाज का ही प्रतिनिधित्व करता है। आपने अपने जीवन में मध्यवर्गीय विषय–वस्तु, खान–पान, रीति–रिवाजों को अत्यधिक महत्व दिया है।

काशीनाथ सिंह एक मध्यवर्गीय परिवार के साधारण कृषक, ग्राम्य जीवन की सभी समस्याओं से ग्रस्त

व्यक्ति थे। मध्यवर्ग जीवन की तमाम अच्छाई-बुराई उनके व्यवहार में दिखती थी। आपने कई बार अपने संस्मरण में इस बात का उल्लेख किया है कि मध्यवर्ग एक अलग ही आकांक्षा और विश्वास में जीवन संघर्ष करता रहता है। कभी वह अपने प्रति अत्यधिक भावुक हो जाता है तो कभी अत्यधिक स्वार्थी हो जाता है। मध्यवर्ग के साथ ही आपन जीवन-संघर्ष चलता रहा, कभी कोई कमी रही तो उसे भी सहज स्वीकार कर लिया गया।

कुंवरपाल सिंह कहते हैं कि "काशीनाथ सिंह को लेखक बनाने में उनका आत्मसंघर्ष और सामाजिकता प्रतिबद्धता अधिक उत्तरदायी है।"[20] काशीनाथ सिंह के जीवन में सामाजिक सम्बंधों का काफी प्रभाव पड़ा है, इसीलिए वे स्वाभाविक रूप से भारतीय भावों को अभिव्यक्त करते हैं। आपने अपने परिवार और समाज के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वाह जिम्मेदारीपूर्वक किया है।

काशीनाथ सिंह कर्मवादी, विवेकशील और जिजासु, ज्ञान-पिपासु व्यक्ति थे, उनके मन में सामाजिक सत्य, मूल्य, आदर्श को प्राप्त करने की ललक थी। झूठ, मिथ्या, अहंकार, आडम्बर से कोसों दूर है। पूरी ईमानदारी से अपनी बात कहने का साहस उनके अपने सतत्व गुण है। आपके जीवन में कई व्यक्ति आये और साथ रहे और चले गये किन्तु आपने कभी भी किसी व्यक्ति के साथ गलत व्यवहार नहीं किया। जब आप बनारस में रहकर अपने बड़े भाई के साथ पढ़ाई कर रहे थे तब आपके रूम में कई लोग आते थे जो आपके भाई के दोस्त होते थे। उनकी दिनभर की बातें और गप्पों में आप काफी परेशान होते थे, कई बार आपको उनके लिए खाने पीने का सामान लाकर देना पड़ता था। आपको इन सब बातों से काफी परेशानी होती थी, किन्तु आपने कभी अपने भाई से इस बात की शिकायत नहीं' की, अपितु उनकी ज्ञानवर्द्धक बातों को वे ग्रहण करते रहे, हमेशा उनके सामने जिज्ञासु बने रहे। आपका व्यवहार हमेशा ही नार्मल बना रहा, जब आप स्वयं नई कहानी, प्रगतिशील, आधुनिक लेखकों के बारे में लिख रहे थे तब भाई के दोस्तों की साहित्यिक गतिविधियाँ आपके लिए प्रेरक तत्व बनकर सामने आई।

काशीनाथ सिंह को कई लेखकों, साहित्यकारों ने आधुनिकतापूर्ण साहित्य लिखने के लिए प्रेरित करते रहे, किन्तु वे बंधन को स्वीकार नहीं करते हैं। काशीनाथ सिंह लिखते हैं कि मैं किसी परिपाटी पर चलने वाला व्यक्ति या भेड़, बकरी नहीं हूँ, न ही बैल जो जोत दिया जाता है खेतों में, खलियानों में। "मैं संबंधों को बनाने-बिगाड़ने की नियत से नहीं लिखता। वे बनते हैं, बिगड़ते हैं।"[9]

काशीनाथ सिंह निर्भीकता से लिखते हैं, अपनी बात कहते हैं, चाहे सत्ता के गलियारों में उनके विरुद्ध षड़यंत्र ही क्यों न मचा हो? स्पष्ट है कि निर्भीकता और स्वतंत्रता आपके जीवन का प्रथम श्रेणी का व्यवहार है। कई साहित्यकार इसे आपका अभिमान मानते हैं जबकि यह आपके संस्कार का परिणाम है।

काशीनाथ सिंह अपने जीवन शैली में एकाग्रता, संचार, ईमानदारी, निर्भीकता, संवेदना, सामाजिकता को प्राथमिकता देते हैं। आप अपने आपको समाज और सामाजिकता के साथ पाते हैं क्योंकि आपका लगाव ग्राम्यांचल के लोगों, मध्यवर्ग की जनता, समाजवादी संबंधों के साथ है। आपने सामाजिक-संबंधों को अपने जीवन में खूब निभाया है और मानवीय मूल्यों को आत्मसात भी किया है। आपने अपने ही परिवार में कृषक बनकर कृषकों के दर्द, उत्साह को भोगा है। इसी के साथ आपने शहरी जीवन को भी अपने में आत्मसात

किया है। आपके व्यक्तित्व में इसीलिए ग्राम और शहरी वातावरण का प्रभाव है।

हम देखते हैं उनके जीवन में जो उत्साह उमंग, हँसमुखपन दिखता है उनके परिवार की ही देन है। जीवन-संघर्षो को आपने करीब से देखा है अत: महज अशंकित होकर जीना या लिखना आपने कभी पसंद नहीं किया। सदैव उनके मन में कुछ नया करने की ललक बनी रही। सामाजिक जीवन की मर्यादाओं को आपने अपना जीवन चरित बनाया है, कभी भी अपने चरित्र पर आपने दाग लगने नहीं दिया है।

काशीनाथ सिंह एक नर्म दिल और भावुक व्यक्ति हैं किन्तु गंभीरता भी आपमें उतनी ही अधिक है। आपने अपने कर्मक्षेत्र में कभी भी भावुकता को हावी होने नहीं दिया है, चाहे आपको कितना ही कष्ट भोगना पड़ा हो। आपने सदैव सहनशीलता के साथ सभी समस्याओं पर विजय प्राप्त की है।

काशीनाथ सिंह का रहन-सहन, खान-पान उनके परिवेश में झलकता है। आपने जीयनपुर से लेकर बनारस की जिंदगी को करीब से देखा है, इसलिए खान-पान पर कभी आपने मुँह नहीं बनाया है। जो मिल गया उसे शौक से खाया-पिया है। वस्तुत: आप खाने-पीने के शौकिन रहे हैं। शादी हो जाने के पश्चात् आपने अपनी पत्नी को कभी परेशान नहीं किया अपितु खुद भी खाना बनाने में आप सिद्धहस्त थे।

काशीनाथ सिंह केवल लेखक या साहित्यकार ही नहीं थे अपितु अपने जीवन के प्रति संवेदनशील भी थे। व्यवसाय, तैराकी, धूपना आपको अत्यधिक पसंद था।

आपको तैराकी और व्यवसाय करने का भी बहुत शौक है वे अभी तक इस क्रम को जारी रखे थे। आपकी बेटी रचना ठाकुर लिखती हैं कि "गर्मी की छुत्रिृयों में गंगा जी में नहाने से जुड़ी कई स्मृतियाँ हैं, पापा बहुत अच्छे तैराक है।"[10]

एक अच्छे तैराक के रूप में काशीनाथ सिंह को बहुत कम लोग ही पहचानते थे। उनकी बेटी और बेटे ने उनके विषय में कई रोचक जानकारी दी है जिससे उनके व्यक्तित्व के विषय में हमें जानकारी प्राप्त होती है।

सिद्धार्थ अपनी स्मृति में बताते हैं कि "पापा को कसरत का शौक था, अपने बचपन में अखाड़े में कुश्ती लड़ने का जिक्र तो उन्होंने रखुद ही किया है।"[11]

कुश्ती के लिए वे अखाड़ा जाते थे और युवावस्था में कुश्ती लड़ने का उन्हें काफी शौक रहा था।

काशीनाथ सिंह को चाय बनाने का भी शौक था वे जब भी सैर करके आते स्वयं ही चाय बनाते थे। यह बात उनकी बेटी रचना से पता चलती है कि बनारस में रहकर जो चाय का रसास्वादन आपने गुमटी में बैठकर किया था वही रसास्वादन आप स्वयं चाय बनाकर करते थे। स्पष्टत: है कि अपने शौक के लिए आप किसी को परेशान नहीं करते थे।

काशीनाथ सिंह क्रांतिकारी विचारों के व्यक्ति हैं। अपनी पहचान को वे कभी छुपाते नहीं हैं। समाज में व्याप्त अनैतिकता के विरूद्ध आप प्रतिकार करते हैं। आपकी सहनशक्ति और सृजनशक्ति में आपकी क्रांतिकारी विचारधारा का पता चलता है। साहित्यिक कला को आपने अपनी क्रांतिकारी विचारधारा के फलस्वरूप ही

अभिव्यक्ति प्रदान की है। आपके चेहरे का ओज ही आपकी साहित्य साधना में परिवर्तित होता है।

काशीनाथ सिंह का व्यक्तित्व सिस्टम विरोधी है, सिस्टम में लेखक गण भी हैं जो स्त्री गुणों में व्यस्त हैं जबकि समाज में आज भी पूँजीवादी शोषक तत्व जीवित हैं जो मजदूरों के ओस को सोख रहा है। काशीनाथ सिंह सत्ता में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनैतिकता, दुराभाव, राजनीति को दूषित प्रवृत्ति, पूंजीवाद के खिलाफ निर्भयता के साथ बोलते हैं। वे लिखते है कि "हमारी रचनाओं में कोई सेठ-पूँजीपति नहीं हैं, जमींदार नहीं हैं, मंत्री नहीं हैं, नौकरशाह नहीं हैं- वे हमारे दुश्मन है।"[12]

काशीनाथ सिंह तत्कालीन समाज की नब्ज को पकड़ा और सत्य को उजागर करते हुए समाज के वंचित लोगों के विषय में पाठकों की विचारधारा को बदलने का प्रयास किया। साठ के दशक के समाज में मूल्यहीनता, नैतिकता का पतन, विघटित परिवार, विसंगत मूल्यों को आपने करीब से देखा और परखा है। समाज में अनैतिकता का विस्तार होता जा रहा है, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, भ्रष्ट-आचरण पर अंकुश लगाने वाला कोई नहीं है, सब लेखक सत्ता के गलियारों में अपना मुँह छुपाते फिर रहे हैं। वास्तव में आपकी यह युगीन दृष्टि है कि आपने भ्रष्ट प्रशासन तंत्र को पहचाना और उसे नग्न करके समाज के सामने रख दिया है। 'अपना मोर्चा' उपन्यास प्रशासनिक भ्रष्टाचार का दस्तावेज है।

काशीनाथ सिंह की मित्रमंडली में उनके साथी ज्ञानरंजन, रविन्द्र कालिया, धूमिल और त्रिलोचन है। आप दोस्तों के दोस्त हैं, जीवन में कमी या अधिकता आती-जाती रही किन्तु आपने अपनी दोस्ती में कभी कमी नहीं होने दी। सामाजिक और पारिवारिक तौर पर देखा जाए तो ये चारों दोस्त अपने जीवनभर अपनी दोस्ती के लिए हमेशा चर्चा में रहे। दोस्ती निभाना कोई काशीनाथ सिंह से सीखे, आपने कभी भी दोस्तों के बीच में अपनी आत्मनिष्ठता को नहीं रखा।

हम साहित्यिक रुचि के विषय में देखते हैं कि आपने हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त रूसी, चीनी, फ्रांसिसी और अंग्रेजी साहित्य को करीब से अध्ययन किया था। "उनकी नजर में गोर्की के कथा-साहित्य के बजाय उसकी आत्मकथा के तीनों भाग- 'मेरा बचपन', 'जनता के बीच' और 'मेरे विश्वविद्यालय' जरूर पढ़ना चाहिए। इस मायने में वे तारीफ करते थे तुर्गनेव के 'शिकारी के शब्द-चित्र' की। वे कहते थे कि किसी दृश्य का कैसे वर्णन करना चाहिए; यह देखना हो तो तुर्गनेल के शब्द-चित्र पढ़ों।"[13]

स्पष्ट है कि सीखना, सीखाना, समझना, समझाना जीवन भर की प्रक्रिया है। कोई भी व्यक्ति स्वयं में परिपूर्ण नहीं है, खासतौर पर कला के क्षेत्र में तो कतई नहीं। आपने ऐमिग्व वे की कहानियों को 'गागर में सागर' भरने की कला के रूप में अभिव्यक्त किया है। यह काशीनाथ सिंह की आत्मदृष्टि ही है कि उन्होंने साहित्यिक कला को यथार्थ रूप में युगबोध के रूप में स्वीकार किया। आपकी रचना में विविधता का प्रमुख कारण आपकी सृजनात्मक और रचनात्मक अभिव्यक्ति है। आपने अपने जीवन में सीखने की कला को कभी खत्म नहीं होने दिया, यही विचारधारा आपको सदैव बड़ा विचारक और साहित्यकार बनाने के लिए उत्साहित करती है।

निष्कर्ष :

काशीनाथ सिंह ने बनारस में रहकर ही नौकरी प्राप्त की और अपने जीवन पथ की ओर अग्रसर हुए। अपने जीवन में आई विषम परिस्थितियों का आपने जिंदादिली के साथ सामना किया, आपके कर्मक्षेत्र में अनेक प्रकार की राजनीतिक विष धाराएँ आपके प्रतिरोध में बाधक खड़ी हुई थी आपने इन विषधाराओं को अमृत समझकर विषपान किया।

आपका जन्म-ग्रामीण परिवेश में हुआ जिसकी लोक-लाज, परम्परा का आपने सदैव आत्मसात किया। आधुनिक परिवेश में भी ग्राम्यांचल के प्रति श्रद्धा, प्रेम, उत्साह आपके व्यक्तित्व में शामिल रहा, दरअसल आपकी लोक संस्कार में आपकी माता जी का आशीर्वाद था जिनके कारण आपने लोक-संस्कृति को अपनी साहित्य साधना का विषय बनाया। आपका व्यक्तित्व सामाजिक सरोकार युक्त है, गौर वर्ण, पान का शौक, लोगों के बीच उठना-बैठना, खाना-पीना सब कुछ आपकी सामाजिकता के ही दायरे में आता है। काशीनाथ सिंह सशक्त रचनाकार अपनी ईमानदारी और कर्मठता के कारण ही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, काशीनाथ, आधे दिन पाछे गए, वाणी प्रकाशन दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2008, पृ० 14-15
2. सिंह, कामेश्वर प्रसाद (अ. संपादक) संबोधन, अंक 1-2, अक्टूबर 2012, पृ० 101
3. रमेश, जगताप, काशीनाथ सिंह का कथा-साहित्य, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2004, पृ० 14
4. लोटलीकर, संदीप, काशीनाथ सिंह का संस्मरण साहित्य, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2005, पृ० 29
5. वही, पृ० 29
6. सिंह, कासीवाथ, घर का जोगी जोगड़ा, राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2018, पृ० 31
7. सिंह, काशीनाथ, गपोड़ी से गपशप, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013, पृ० 14
8. दूबे, मनीष (संपादक), कासी पर कहन, वर्षा प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृ० 312
9. वही, पृ० 212
10. सिंह, काशीनाथ, आधे दिन पाछे गए, पृ० 90
11. सिंह, कामेश्वर प्रसाद (संपादक), चौपाल, रेहन पर रग्घू, अंक-1, वर्ष-1, संस्करण 2014, पृ० 10
12. सिंह, कामेश्वर प्रसाद (संपादक), चौपाल, पृ० 19
13. सिंह, काशीनाथ, घर का जोगी जोगड़ा, पृ० 56

बौद्ध कालीन शिक्षा पद्धति : एक विवेचन

डॉ० रवेन्द्र राजपूत
एसोसिऐट प्रोफेसर,
शिक्षक शिक्षा विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

ईसा से सात शताब्दी पूर्व वैदिक काल के हिन्दू धर्म कर्म में कुछ दोष आने लगे, वास्तविक धर्म का लोप होने लगा। हिन्दू धर्म में दम्भ प्रवेश कर गया। कर्मकाण्ड को ही लोग धर्म मानने लगे। यज्ञ के नाम पर पशु बलि दी जाने लगीं। स्त्रियां व शूद्र हेय दृष्टि से देख जाने लगे, उनकी शिक्षा की उपेक्षा हो रही थी। तपस्या के नाम पर लोग गृह त्यागकर वनों में मारे-मारे फिरने लगे। तपस्या के साधनों के नाम पर भिन्न-भिन्न शारीरिक यातनाओं का आविष्कार कर चुके थे। ऐसी अन्धकारमयी स्थिति में ज्योति दिखलाने वाला एक क्षत्रिय राज कुमार था जिसको कि गौतम बुद्ध के नाम से जानते हैं। बुद्ध ने जो धार्मिक क्रान्ति की वैदिक काल में उसका प्रभाव शिक्षा प्रणाली पर पड़ा और एक नई शिक्षा प्रणाली का जन्म हुआ जिसे "बौद्ध कालीन शिक्षा पद्धति" कहते हैं। ये वास्तव में परम्परागत हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों के विरूद्ध एक विद्रोह था। महात्मा बुद्ध का कहना था कि बलि और यज्ञ से जीवन हिंसा होती है तथा व्यर्थ धन व्यय होता है इस प्रथा को समाप्त करो। यदि वेद अपौरूष नहीं है तो उन्हें भी अन्य पुस्तकों की भाँति समझो। अपना सम्पूर्ण यौवन वेदों को कण्ठस्थ करने में नष्ट कर देना मूर्खता है। तपस्या द्वारा शरीर सुखाना व्यर्थ है। भगवान बुद्ध ने ऐसे धर्म सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो प्रत्यक्ष जीवन की वास्तविक समस्याओं का विश्लेषण करके धर्म का एक व्यावहारिक रूप प्रस्तुत करें। वे समझते थे कि संसार दु:खमय है अत: उसका त्याग करके मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करना ही मानव जीवन का उद्देश्य है फिर भी आत्मा, दु:ख, मोक्ष, कर्म तथा पुनर्जन्म इत्यादि के सिद्धान्त वैदिक तथा बौद्ध दोनों धर्मों में पाये जाते है अत: बौद्ध धर्म को हिन्दू धर्म का एक स्वरूप ही माना जाता है।

बौद्ध धर्म का प्रचार भारत में 600 ई. पूर्व ही हो गया था। बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र विहार या मठ थे। शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था ही भिक्षुओं के हाथों में थी। बुद्ध ब्राह्मणों का आदर करते थे। बौद्ध धर्म में ब्राह्ममण ीय धर्म से प्रेरणा ली थी परन्तु केवल जन्मत: ब्राह्मण होने के बुद्ध प्रतिकूल थे। उन्होंने सात्विक भिक्षुओं के समाज की रचना की जो शिक्षा और संयम द्वारा निर्वाण प्राप्त करने का प्रयास करते। इसका उपाय अहिंसा और पवित्र जीवन था। यह क्रम भी ब्राह्मणीय पद्धति के ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, और सन्यास आश्रम के अनुरूप था। अत: बौद्ध धर्म प्राचीन हिन्दू धर्म का सुधरा रूप है। बौद्ध शिक्षा के उद्देश्य वैदिक शिक्षा के लगभग समान है। ब्राह्ममणीय शिक्षा की भाँति इसमें भी विद्यार्थी की प्रारम्भिक दीक्षा होती थी। बुद्ध कालीन शिक्षा पद्धति की विशेषतायें निम्नवतत है-

1. **शिक्षा के केन्द्र** – वैदिक काल में शिक्षा प्रदान करने के केन्द्र गुरुकुल, संघ, परिषद, चरण थे। जबकि बुद्ध कालीन शिक्षा मठों व बिहारों में दी जाने लगी। इन केन्द्रों में भिक्षु भिक्षुणी एवं साधारण जनता सभी को विद्याध्ययन के लिए अवसर प्रदान किया जाता था। दूर-दूर जनपदों से सभी वर्गों के विद्यार्थी आ-आकर वहाँ निशुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे। यहाँ तक कि चीन, जापान कोरिया, जावा, ब्रह्मा, लंका तिब्बत तथा अन्य पूर्वी द्वीपों से भी विद्यार्थी बौद्ध धर्म का अध्ययन करने यहाँ आते और यहाँ से अन्य ग्रन्थों का अनुवाद करके अपने देशों को ले जाते थे। नालन्दा और तक्षशिला तो विश्वविद्यालयों के रूप में विकसित हो गये थे। इनके अलावा बल भी, विक्रमशिला, ओदन्तपुरी, नदिया, मिथिला और जगद्दला बुद्ध कालीन शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। स्थानीय या प्रान्तीय भेदभाव की भावना लोगों के हृदय में नहीं थी। नवीं शताब्दी में एक भिक्षु छात्र तो जलालाबाद (अफगानिस्तान) का निवासी था बिहार में तीर्थ यात्रा के लिए आया था उसे विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया।

2. **प्रवज्या (पब्बजा)** – वैदिक में उपनयन संस्कार के अनुरूप प्रवज्या बुद्ध शिक्षा पद्धति का प्रथम संस्कार था। 8 वर्ष की अवस्था में बालक सिर के बाल मुडाकर, पीले वस्त्र पहनकर, नतमस्तक होकर उपाध्याय के निकट जाकर कहता था कि आप मेरे उपाध्याय हैं फिर शरणात्रयी का उच्चारण करना पड़ता था अर्थात् "बुद्धं शरणम् गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि, सघं शरणम् गच्छामि"। प्रवेश के लिए कोई जाति भेद नहीं था। महात्मा बुद्ध का तो कहना था कि जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में विलीन हो जाती है उसी प्रकार भिन्न-भिन्न जातियाँ संघ में मिलकर एक रूप हो जाती है। प्रव्रज्या के उपरान्त बालक श्रमण कहलाता था और उस पर मठ की अनुशासन प्रणाली लागू हो जाती थी उसे घर छोड़कर उपाध्याय के अनुशासन में रहना पड़ता था। हिंसा, असत्य, यादक पदार्थ, मांस, नृत्य व संगीत इत्यादि का श्रमण के लिए निषेध था। बिना माता-पिता की आज्ञा के बालक का संघ में प्रवेश नहीं होता था। छूत के रोगों जैसे कोढ़, खुजली, क्षय आदि से पीड़ित रोगियों को व अन्य शारीरिक दोष रखने वाले नवागन्तुक को प्रवज्या का निषेध था। इसके अतिरिक्त दास, अभियुक्त तथा राज-कर्मचारियों जैसे सैनिक इत्यादि के लिए भी प्रवेश निषिद्ध था।

3. **उपसम्पदा** – यह बौद्ध पद्धति का द्वितीय एवं अन्तिम संस्कार था। अपनी शिक्षा के बारह वर्ष पूरे करने के बाद श्रमण का उपसम्पदा संस्कार होता था। ये कम से कम 20 वर्ष की आयु हो जाने के बाद ही था। ब्राह्मण ीय शिक्षा के अन्तर्गत स्नातक होने के उपरान्त ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था इसके प्रतिकूल बौद्ध धर्म के अनुसार उपसम्पदा संस्कार होने पर श्रमण भिक्षु बन जाता था और उसका गृहस्थी संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रह जात था। उपसम्पदा संस्कार सम्पूर्ण जीवन के लिए था। ऐसे ही ब्राह्मणीय शिक्षा के अन्तर्गत भी आजन्म ब्रह्मचारी होते थे किन्तु ऐसे व्यक्ति बिरले ही थे। बौद्ध धर्म में तो नैष्ठिक ब्रह्मचर्य भिक्षु के लिए अनिवार्य था। कालान्तर में जब स्त्रियों का भी भिक्षुणी के रूप में प्रवेश हो गया तो उनके लिए यह अनुशासन पूर्ण रूप से आवश्यक समझा गया। इस संस्कार की प्रणाली जनतन्त्रवादी थी। उपसम्पदा संघ से कम से कम दस भिक्षुओं की उपस्थिति में होता था। श्रवण भिक्षु का वेष धारण करके, हाथ में कमण्डल, एक कन्धे पर चीवर लेकर अन्य भिक्षुओं को प्रणाम कर हाथ जोड़कर बैठै जाता था। श्रमण का परिचय कराता था उसके बाद अन्य भिक्षु उससे अनेक प्रश्न पूछते थे। उसके उत्तर सुनने के पश्चात् भिक्षु यह निर्णय लेते थे कि नव शिष्य 'उपसम्पदा' ग्रहण करने का अधिकारी है या नहीं। इस प्रकार इस संस्कार का सम्पादन बहुमत से होता था।

4. **विद्यार्थी जीवन** :- विद्यार्थी प्राय: अपना अध्ययन प्रात: काल में प्रारम्भ करते थे बहुत से स्थानों पर तो कौआ पाल लिया जाता था जो समय की सूचना विद्यार्थियों को देता था। बौद्ध धर्म के प्रचार के प्रारम्भ में भिक्षु लोग वनों, गुफाओं में तथा पेड़ों के नीचे रहते थे किन्तु महात्मा बुद्ध ने उन्हें मठों या बिहारों में रहने की आज्ञा प्रदान कर दी यह आज्ञा केवल उस समय के लिए थी जबकि खुले में रहना सम्भव नहीं था, जैसे वर्षा, आँधी, ओला या हिमपात और तीव्र धूप इत्यादि।, भिक्षु तथा विद्यार्थियों का जीवन वैदिक काल के समान ही कठोर था ब्रह्मचर्य, भिक्षाटन, वस्त्र, भोजन, अनुशासन सम्बन्धी नियम अत्यन्त कठोर थे श्रमण अपने उपाध्याय के साथ निकट के गाँवों में भिक्षा के लिए जाते थे भिक्षा मौन होकर माँगी जाती थी और उतनी ही जितनी आवश्यकता होती थी। भिक्षु व विद्यार्थियों को नागरिको की ओर से भोजन का निमन्त्रण भी मिलता था। किसी भी भिक्षु या विद्यार्थी को अनुशासनहीनता को दोषी पाये जाने पर संघ से निकाल दिया जाता था।

5. **गुरु शिष्य सम्बन्ध** - बौद्ध काल में भी गुरु शिष्य के सम्बन्धों में वही पवित्रता रही जो वैदिक कालीन शिक्षा में थी। विद्यार्थी का दूसरा नाम 'सिद्ध बिहारक' भी था सिद्ध बिहारक उपाध्याय की सेवा करते हुए विद्यालाभ करता था। वह उपाध्याय से पूर्व उठता और बाद में सोता था। प्रात: काल गुरु के लिए उसे जल, मिट्टी तथा दातून इत्यादि की व्यवस्था करके बैठने की चौकी लगानी होती थी और खाने को खीर परोसनी होती थी। महावग्ग में गुरु शिष्य के सम्बन्धों का अत्यन्त विशद् वर्णन मिलता है। "भिक्षुओं ! सिद्ध विहारक को उपाध्याय के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए। समय से उठकर जूता पोंछकर उत्तरा - संग को एक कन्धे पर रख दातून देनी चाहिए। मुख धोने का जल तथा आसन की व्यवस्था करनी चाहिए। खाने को खीर देनी चाहिए। झाड़ देना चाहिए तथा सफाई करनी चाहिए शिक्षा के लिए उपाध्याय के साथ जाना चाहिए।" इसके अतिरिक्त उपाध्याय से कुछ दूरी पर चलना उनके लिए भिक्षा लाना, पैर धोना, वस्त्र प्रक्षालन करना तथा रोगी होने पर उनकी सुश्रूषा करना शिष्य के कर्तव्य थे।

   आचार्य या उपाध्याय शिष्य को पुत्र की भांति रखते थे। वे शिष्य को अभाव होने पर पात्र तथा चीर देते थे। रोगी होने पर उपाध्याय को वही सेवायें करनी होती थी। जो शिष्य उसकी करता था शिष्य को उच्च कोठि की मानसिक व आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करना उपाध्याय का परम कर्तव्य था। इस प्रकार गुरु और शिष्य के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर और सम थे। यह भारतीय परम्परा के अनुकूल ही था। गुरु लोग बड़ी सादगी में जीवन व्यतीत करते थे। और शिष्य के समक्ष अपना आदर्श उपस्थित करते थे। शिष्यों से उच्च सम्मान प्राप्त करने के लिए गुरु को एक महान उच्च चरित्र, आत्म संयमी तथा आत्मदर्शी होने की आवश्यकता थी। हवेन सांग के लेखों से प्रतीत होता है कि नालन्दा आदि बिहारों में अत्यन्त उद्भट विद्वान आचार्य रहते थे, जो शिष्यों के समक्ष एक जीवित आदर्श प्रस्तुत करते थे।

6. **पाठ्यक्रम** - बौद्ध भिक्षा निवृत्ति प्रधान थी। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य जीवन में निर्वाण प्राप्त करना था। अत: शिक्षा भी धर्म प्रदान थी। सुत्तन्त, विनय, साहित्य तथा धर्म इत्यादि ही उनके शिक्षा के विषय थे। बौद्ध युग में ब्राह्मणीय शिक्षा का भी प्रसार था दोनों प्रकार की शिक्षायें एक दूसरे की पूरक थीं। ब्राह्मणीय विद्या के 4-वेद, इतिहास, पुराण, काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, वेदांग, सांख्य योग, न्याय, वैशेषिक, संगीत चिकित्सा शास्त्र तथा तन्त्र विद्या सभी विषय बौद्धकालीन विश्व विद्यालयों में पढ़ाये जाते थे। शास्त्रीय शिक्षा

के अतिरिक्त औद्योगिक, व्यावसायिक, काटना, बुनना, सिलाई, शल्य चिकित्सा, आयुर्वेद की शिक्षा भी दी जाती थी। वैदिक काल की तरह कृषि, व्यापार, कुटीर उद्योग तथा पशुपालन आदि लौकिक उद्योग में भी प्रशिक्षण दिया जाता था।

7. **शिक्षा पद्धति** - बौद्धकाल तक लेखन कला का पर्याप्त प्रचार हो चुका था किन्तु जन साधारण में इसका व्यवहार अधिक नहीं होता था। अतः वैदिक शिक्षा की भाँति बौद्ध शिक्षा भी मौखिक दी जाती थी। सिद्ध विहारक (विद्यार्थी) व्याकरण के धातु व रूप इत्यादि कंठाग्र करते करते थे। उपाध्याय द्वारा दिये पाठ को कंठाग्र करने पर ही आगे बढ़ता था। विहारों तथा मठों में "हेतु विद्या" अर्थात् तर्क पद्धति को अपनाया जाता था और उससे विद्यार्थी का मानसिक विकास किया जाता था। मठों और विहारों में भिन्न-भिन्न आर्थिक और दार्शनिक विषयों पर नित्यवाद-विवाद हुआ करते थे। विक्रमशिला तो इनमें सर्वोत्तम था। हिन्दू (वैदिक धर्म) व जैन धर्म का खण्डन करने के लिए बौद्ध भिक्षु बाल की खाल निकाला करते थे। अतः विद्यार्थियों को अपने प्रारम्भिक विद्याकाल से ही बाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रशिक्षण मिल जाता था। इसके अतिरिक्त देशाटन, प्रकृति निरीक्षण व विशेषज्ञों को आमंत्रित कर उनके भाषणों से ज्ञान में वृद्धि की जाती थी। शिक्षा का माध्यम पाली व प्राकृत ही था।

8. **स्त्री शिक्षा** - बौद्ध धर्म में स्त्री को व्याज्य व हेय समझा जाता था भिक्षु आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहते थे। अतः स्त्रियों के सम्पर्क में आने से वे डरते थे। वैदिक शिक्षा के अन्तर्गत स्त्रियों की जो उपनयन संस्कार की व्यवस्था थी वह लगभग समाप्त हो गई थी फिर भी महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को मठों और विहारों में रहने की आज्ञा दे दी थी। ये बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियाँ मठों व विहारों में रहकर पवित्र जीवन व्यतीत करती थीं। और आजीवन ब्रह्मचारिणी रहती थीं। शुभा, अनुपमा, सुमेधा ऐसी ही ब्रह्मचारिणी थीं। शील भट्टारिका, प्रभु देवी तथा विजयांका उच्चकोटि की कवित्रियां थीं। विजयांका को तो कालिदास के वाद द्वितीय श्रेणी की कवियित्री माना जाता है। सम्राट अशेक की वह संघमित्रा लंका इत्यादि देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार करने गई थी। शंकराचार्य और मण्डन मिश्र के बीच हुए शास्त्रार्थ में निर्णायिका का कार्य मण्डन मिश्रा की पत्नी ने किया था। इससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि स्त्रियों की प्रतिभा किस स्तर तक पहुँच गई थी।

बौद्ध शिक्षा के प्राचीन केन्द्र - तक्षशिला - तक्षशिला वैदिक शिक्षा का केन्द्र था। बौद्ध काल में भी यह उत्तरी भारत का प्रमुख शिक्षा केन्द्र था। यह गान्धार की राजधानी तथा रावलपिण्डी से 20 मील पश्चिम में था। रामायण में लिखा है कि इसे राजा भरतने अपने पुत्र तक्ष के नाम पर बसाया था। जन्मेजय की सर्पवलि यहीं चढ़ी थी। ईसा से 7 शताब्दी पूर्व यह शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र था। तक्षशिला एक सुसंगठित विश्वविद्यालय नहीं था। शिक्षा का आधार परिवार प्रणाली था। यहाँ अनेक विद्वान आचार्य सैकड़ों विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे। तक्षशिला में प्रधानतः उच्च शिक्षा दी जाती थी। लगभग 16 वर्ष की अवस्था में विद्यार्थी तक्षशिला पहुँचते थे। लगभग 8 वर्ष तक विद्यार्थी यहाँ रहकर विद्याध्ययन करते थे। यहाँ वेद, वेदान्त, व्याकरण, आयुर्वेद, सैनिक शिक्षा, ज्योतिष, कृषि व्यापार, सर्पदंश-चिकित्सा तथा तन्त्र यहाँ के विशेष अध्ययन विषय थे।

व्याकरण पिता पाणिनि यहीं के विद्यार्थी थे। राजा प्रसेनजीत जो महात्मा बद्ध के समकालीन थे की शिक्षा यहीं हुई थी। राजा विम्बसार के पुत्र जीवक ने शल्य चिकित्सा यहीं सीखी थी। अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्य की भी उच्च शिक्षा यहीं हुई। कई शताब्दियों तक क्षशिला ने अपनी ज्ञान ज्योति सर्वत्र विकीर्ण की। भाग्य के अनेक उतार चढ़ावों की अपेक्षा परिवर्तन के भयानक झंझावातों में भी यह ज्ञान शिखा आलोकित होती ही। अन्त में बर्वर हूणों ने इसे 455 ई. पू. में पदाक्रान्त कर डाला और इस प्रभा को सदैव के लिए बुझा दिया।

नालन्दा – विहार प्रान्त में नालन्दा प्रसिद्ध बौद्ध शिक्षा केन्द्र था। नालन्दा – न + अलण् + द का अर्थ "अधिक नहीं दे रहा" देने में असन्तुष्ट अर्थात् विद्या दान देने में असंतुष्ट है। यह मगध की राजधानी राजगृह से 7 मील दूर पाटलीपुत्र (पटना) से 40 मी दक्षिण पश्चिम में स्थित था। महात्मा बुद्ध के प्रिय शिष्य सारीपुत्त की जन्मभूमि होने के कारण यह बौद्धों का महत्वपूर्ण स्थान था। सबसे पहले सम्राट अशोक ने यहां एक विहार बनवाया था। इसका शैक्षिक उत्थान 450 ई. से प्रारम्भ होता है। विश्वविद्यालय का सम्पूर्ण क्षेत्र एक विशाल व दृढ़ दीवार से घिरा था जिसमें एक प्रवेश द्वार था जिस पर द्वार पण्डित का निवास था जो कि प्रवेश परीक्षा लेता था। विश्वविद्यालय के भवन में 8 सभा मण्डल व 300 अध्ययन कक्ष थे जहाँ विभिन्न विषयों पर 100 व्याख्यान प्रतिदिन किये जाते थे। भवन की मीनारें (मन्दिरों के गुम्बद) अत्यन्त ऊँचे थे। मैदान में सुन्दर 10 से अधिक सरोवर बने हुए थे जिनमें नील कमल शोभामान थे जिनमें विद्यार्थी जल क्रीड़ा करते थे। 13 मठ ऐसे थे जिनमें विद्यार्थियों के लिए कमरे बने हुए थें इन कमरों में विद्यार्थियों के लिए पत्थर की चौकी, पुस्तक और दीपक रखने का स्थान था। इन सबके भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं।

विद्यार्थियों के आवास, भोजन, और वस्त्र की व्यवस्था नि:शुल्क थी। नालन्दा को गुप्त वंशी राजाओं ने 200 गाँव दान में दिये थे जिनकी आय से वहां का कार्य चलता था। आज के विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों के व्यय और शुल्क इत्यादि को देखते हुए बुद्धि हैरान हर जाती है कि किस प्रकार प्राचीन काल में नालन्दा में 10000 विद्यार्थी नि:शुल्क उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे। ह्वेन सांग और इत्सिंग नामक चीनी यात्री इसे देश में क्रमश: सन् 629–645 ई० तथा 673–693 ई० तक रहें। ह्वेनसांग 5 वर्ष, इत्सिंग, 10 वर्ष अध्ययन हेतु नालन्दा में रहे। उनका कहना था कि यहाँ लगभग 1500 शिक्षक और 8500 विद्यार्थी थें

ह्वेनसांग कुछ प्रसिद्ध शिक्षकों का उल्लेख करता है जिसमें धर्मपाल, चन्द्रपाल, ज्ञानचन्द, शीलभट्ट, गुरुमति, स्थिरमति, धर्मकीर्ति, सत्तरक्षित, प्रभामित्र अधिक प्रसिद्ध हैं। नालन्दा में एक प्रसिद्ध पुस्तकालय भी था जिनके 3 विभाग – रत्न सागर, रत्नोदधि, रत्न रंजक के नाम से प्रसिद्ध थे। सम्पूर्ण पुस्तकालय को धर्मगज कहते थे। इस पुस्तकालय में असंख्य विविध धर्मों, विषयों, कालाओं, विज्ञानों की पुस्तकों का संग्रह था। इसमें एक भवन 9 मंजिल ऊचा था। कहा जाता है कि इसकी बहुत सी पांडुलिपियां अब भी नेपाल और तिब्बत पुस्तकालयों में हैं।

यहाँ के विद्यार्थियों का देश भर में सम्मान होता था। दूर–दूर के विद्यार्थी यहाँ प्रवेश लेने आते थे। यहाँ के विद्वानों की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति से प्रभावित होकर तिब्बत, चीन, कोरिया, सुमात्रा, नावा, जापा, स्पेन, लंका के असंख्यक विद्यार्थी अध्ययन करते थे।

इस प्रकार नालन्दा 800 वर्षों तक इस देश में ज्ञान का प्रकाश फैलाता रहा। भारत की प्राचीन संस्कृति को विकीर्ण, विकसित तथा सुदृढ़ करने में बड़ा हाथ रहा। 10 वीं शताब्दी के अन्त में (लगभग 1000 ई.) मुहम्मद गोरी के सिपहसालार वख्तियार खिलजी की बर्बरता का शिकार हुआ। उसने यहाँ के बहुमूल्य पुस्तकालय में आग लगा दी जो कि 6 महीनें तक जलती रही थी। तथा भिक्षुओं और विद्यार्थियों का वध कर डाला। ये दिन भारतीय शिक्षा व संस्कृति के लिए इतिहास का काला दिन था जिस दिन देश की अमूल्य निधि जलकर राख में परिवर्तित हो चुकी थी। इस प्रकार एक दीर्घकाल से जलने वाला ज्ञान प्रदीप जिसे मानव ने अपने जीवन स्नेह से युग-युगों से प्रज्ज्वलित रखा था, सदा के लिए बुझ गया।

बौद्ध शिक्षा के दोष- बौद्ध शिक्षा दोषों से सर्वथा मुक्त नहीं थी। हिन्दू शिक्षा की भाँति इसमें भी धार्मिक शिक्षा का प्राधान्य था। जनतन्त्र के नाम पर स्वेच्छाचार का प्रवेश हो गया जिसका परिणाम यह हुआ कि संघीय नियन्त्रण शिथिल होने लगे और मठा भिक्षु-भिक्षुणियों के क्रीड़ा स्थलों में परिवर्तन होने लगे। जिस संघ की स्थापना में ही बौद्ध धर्म की सफलता का रहस्य था वही इसके पतन का कारण बना। बौद्ध शिक्षा अहिंसा प्रधान और निवृत्ति मूलक थी। अतः सैनिक विज्ञान, अस्त्र-शस्त्र निर्माण कला एवं युद्ध कला का विकास रूक गया और देश की सैनिक शक्ति का ह्रास हो गया जिसके फलस्वरूप जब विदेशियों ने देश पर आक्रमण किया तो भारत सैनिक शक्ति से उसका सामना न कर सका। बौद्ध धर्म से अनुसार संसार दुखमय था अतः इसे छोड़कर इच्छाओं का दमन करके निर्वाण प्राप्त करना जीवन का उद्देश्य समझा जाता था फलतः जीवन में आडम्बर आ गया और भिक्षुओं का वाह्य जीवन निरा वनावटी प्रतीत होने लगा। अपने दोषों के कारण ही इसका पतन हो गया और देश में पुनः बाह्मणीय शिक्षा की तूती बोलने लगी। आन्तरिक व वाह्य जीवन में दोहरा आचरण तथा ढोंग दोनों पद्धतियों की विरासत हैं जो आज भी भारतीय जन-जीवन में व्याप्त है।

बौद्ध कालीन शिक्षा व वैदिक शिक्षा पद्धति की तुलना-

अल्टेकर कहते है- "जहाँ तक सामान्य शिक्षा सिद्धान्त की बात है वैदिक व बौद्धिक शिक्षा प्रकृतियों में कोई अन्तर नहीं था दोनों के एक से आदर्श थे और एक सी ही शिक्षण पद्धतियां थी। वस्तुतः बौद्ध शिक्षा पद्धति वैदिक शिक्षा पद्धति की अनुकरण मात्र थी फिर भी दोनों में भिन्नतायें थीं।"

समानता - 1. दोनों पद्धतियों में संस्कारों से विद्या का प्रारम्भ होता था। वैद्धिक पद्धति में उपनयन व बौद्ध पद्धति में प्रव्रज्या के बाद ही विद्यालय में प्रवेश मिलता था।

2. दोनों पद्धतियों में 7- 8 वर्ष की आयु में विद्या प्रारम्भ होती थी।

3. दोनों शिक्षा पद्धतियों में शिक्षा की अवधि कम से कम 12 वर्ष थी।

4. गुरु शिष्य सम्बन्ध दोनों में अत्यन्त मधुर थे।

5. दोनों में भिक्षा मांगना छात्र का कर्तव्य था।

6. वैदिक पद्धति में ब्रह्मचारी जीवन के लिए जो नियम थे उनका पालन बौद्ध भिक्षुओं व श्रमणों को करना पड़ता था।

7. दोनों शिक्षा पद्धतियों में छात्रों के लिए वृक्ष के नीचे निवास करना, गृह त्यागना आदि अनिवार्य थे।

8. दोनों में अहिंसा पर विशेष बल दिया जाता था।

असमानतायें - ब्राह्मणीय व बौद्ध शिक्षा प्रणाली में बहुत सी समानता होते हुए भी कुछ मौलिक भेद थे। जो इस प्रकार है-

1. वैदिक शिक्षा में व्यक्ति पर बल दिया जाता था जबकि बौद्ध शिक्षा में व्यक्ति समूह पर बल दिया जाता था। अर्थात् शिक्षा सामूहिक रूप से दी जाती थी।

2. ब्राह्मणीय शिक्षा गुरु गृह (गुरुकुलों) में प्रदान की जाती थी। बौद्ध शिक्षा सुसंगठित शिक्षा केन्द्रों जैसे विहारों, मठों तथा विश्वविद्यालयों में दी जाती थी।

3. ब्राह्मणीय शिक्षा में गुरु के परिवार के साथ रहकर छात्र शिक्षा प्राप्त करता था अर्थात् छात्र का जीवन पारिवारिक रहता था। बौद्ध धर्म का आधार ही गृह त्याग था। परिवार के स्थान पर बौद्ध समाज स्थापित किया जाता था। इसमें व्यक्तिगत उत्साह की कमी की सम्भावना बनी रहती थी। छात्र एक संस्थागत विद्यार्थी होता था।

4. वैदिक शिक्षा एक तन्त्रवादी थी जबकि बौद्धिक शिक्षा जनतंत्रवादी थी। प्रथम गुरू ही सब कुछ था किन्तु बौद्ध शिक्षा में शिष्य संघ के नियमों के अनुसार मतदान की अधिकारी था।

5. वैदिक शिक्षा का माध्यम संस्कृत थी जबकि बौद्ध शिक्षा का माध्यम पाली व प्राकृत भाषा थी।

6. वैदिक शिक्षा शूद्रों के लिए उपलब्ध नहीं थी जबकि बौद्ध शिक्षा सभी वर्गों के लिए उपलब्ध थी।

7. वैदिक शिक्षा में ब्रह्मचारी बोलकर भिक्षा माँगते थे जबकि बौद्ध भिक्षु मौन रहकर भिक्षा लेते थे।

मूल्याँकनः-

कालान्तर में छोटे-छोटे स्थानीय संघों के विकास से केन्द्रीय संघों का नियन्त्रण शिथिल हो गया। जनतन्त्रवाद के सिद्धान्तों का दुरुपयोग होने लगा। खूब सम्पदा एकत्र हो गई और भोग-विलास का जीवन प्रारम्भ हो गया। भिक्षुक भिक्षुणी भ्रष्टाचार में लीन हो गये। इसके अतिरिक्त, एक ओर शंकराचार्य के तर्कों ने बौद्ध धर्म को भारत से खदेड़ दिया, दूसरी ओर मुसलमानों के आक्रमण हुए। उन्होंने बौद्ध विहार नष्ट कर दिये। भिक्षुओं को मौत के घाट उतार दिया। बचे हुए भिक्षु तिब्बत, नेपाल आदि देशों में भाग गये और इस प्रकार एक महान् परम्परा का अन्त हो गया।

वैदिक शिक्षा और बौद्ध शिक्षा दोनों ही ने भारतीय जीवनपद्धति को बहुत प्रभावित किया है। दोनों ही प्रकार की शिक्षा–व्यवस्थाओं पर धर्म का वर्चस्व रहा। आलोचकों का यह आरोप एक सीमा तक सही है कि धर्म की इस अधिकता ने भारतीयों का दृष्टिकोण असांसारिक बना दिया। वैदिक युग में निश्रेयस् (आध्यात्मिक प्रगति) और अभ्युदय (भौतिक उन्नति) में जो सन्तुलन स्थापित किया गया था, वह बाद में डगमगा गया और निश्रेयस् (आध्यात्मिक प्रगति) के लिए 'अभ्युदय' (भौतिक विकास) की बलि दे दी गई। देश की आर्थिक दुरवस्था का यह भी एक कारण बना। इसी दृष्टिकोण के कारण धर्म–निरपेक्ष भौतिक विज्ञानों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया।

जो हमारे सुचरित हों केवल उन्हीं को ग्रहण करना– ऐसा उपदेश देने वाली गतिशील शिक्षा–व्यवस्था में बाद में ऐसी जड़ता आई कि विचार – स्वतन्त्रता का लोप हो गया। जनसाधारण यह मानने लगा कि पुराने ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है वह अन्तिम सत्य है, उसके परीक्षण की, उस पर शंका करने की कोई आवश्यकता नहीं। वेद तथा सम्बन्धित साहित्य पर विभिन्न दृष्टियों से विचार करने एवं टीका करने की परम्परा नष्ट हो गयी। ज्ञान अनन्त है, इसलिए उसकी निरन्तर खोज करते रहना चाहिए, यह सिद्धान्त भुला दिया गया। इसके विपरीत पुराने ग्रन्थों को बिना समझे हुए बस रट लेने को ही विद्यार्थी अपना कर्तव्य मानने लगे। परिणामस्वरूप अनेक कुरीतियाँ पनपने लगीं। वर्णव्यवस्था जन्मना हो जाने पर शूद्रों के साथ अन्याय होने लगा और स्त्री–शिक्षा की भी उपेक्षा होने लगी। अहिंसा के सिद्धान्त को इस रूप में प्रतिष्ठित किया गया कि अस्त्र–शस्त्र–निर्माण, सैन्य विज्ञान, युद्ध कला आदि का विकास अवरुद्ध हो गया। देश सैनिक दृष्टि से कमजोर हो गया। परिणाम यह हुआ कि जब विदेशियों ने देश पर आक्रमण किया तो हम सैनिक शक्ति से उनका सामना नहीं कर पाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्निहोत्री रवीन्द्र – आधुनिक शिक्षा : समस्याएँ और समाधान
2. लाल रमन बिहारी – भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं
3. पाठक पी०डी० – भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ
4. गुप्ता एस०पी० – भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ

कार्ल वान क्लॉजविट्ज की युद्धनीति

डॉ० कमलेश प्रताप सिंह
सीनियर प्रवक्ता
रक्षा अध्ययन विभाग
सी सी एस एस (पी.जी.) कॉलेज इगलास, अलीगढ़

कार्ल वान क्लॉजविट्ज का जन्म 1 जून, 1780 को हुआ था। वह बहुत प्रतिभा सम्पन्न सैनिक थे। उनकी प्रतिभा को देखते हुए उन्हें मात्र 12 वर्ष की अल्पायु में ही सन् 1792 में प्रशा की सेना की 34 वीं पैदल रेजीमेंट कमीशन में अधिकारी का पद दिया गया। उन्होंने 13 वर्ष की आयु में प्रथम बार 1793-94 में फांस के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया।

क्लॉजविट्ज को सन् 1796 से पांच साल के लिए न्यूरुपिन की बैरल में सैनिक अधिकारी के रूप में काम किया। वहां रहते हुए उन्होंने फ्रेडरिक महान के भाई प्रिंस हेनरी के पुस्तकालय का भी गहन अध्ययन किया। सन् 1801 में उन्हें शार्न होर्स्ट के निर्देशन में स्थापित, बर्लिन के सैनिक स्टाफ के स्कूल में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए भेजा गया। वास्तव में जनरल क्लॉजविट्ज का सैनिक जीवन यहीं से प्रारंभ हुआ। वहां पर रहते हुए जनरल क्लॉजविट्ज पर शार्न होर्स्ट के व्याख्यानों से बहुत अधिक प्रभावित हुए। शार्न होर्स्ट भी जनरल क्लॉजविट्ज की सैनिक प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए, उन्होंने क्लॉजविट्ज को प्रोत्साहित किया और उनका भार्ग दर्शन किया। शार्न होर्स्ट की संस्तुति पर ही क्लॉजविट्ज को 1803 में प्रशिया के राजकुमार अगस्त का अतिरिक्त सैनिक सलाहकार के रूप में नियुक्त किया गया।

सन् 1806 की जेना और ओवर स्टार की नेपोलियन के विरुद्ध लड़ाईयों में, उसके मास्टर प्रिंस अगस्त ने ओवर स्टार की लड़ाई में सेना की बटालियन को कमांड किया, उसके साथ ही साथ जनरल क्लॉजविट्ज भी रण क्षेत्र में उतर गए। नेपोलियन के विरुद्ध लड़ाई में भाग लेने क्लॉजविट्ज का यह पहला अवसर था

क्लॉजविट्ज सैनिक नेपोलियन का प्रशंसक जरूर था लेकिन उसकी तानाशाही प्रवृति के कारण सम्राट नेपोलियन का घोर विरोधी था। फांस में युद्ध बन्दी काल के तीखे अनुभव और टिलसिट की सन्धि में प्रशा पर थोपी गयी कठोर एवं अपमान जनक शर्तो के कारण क्लॉजविट्ज के मन में फांस और सम्राट नेपोलियन विरोधी भावनायें समाहित हो चुकी थी। सन् 1811 में, सेना के वरिष्ठ अधिकारियों और देशभक्त नागरिकों ने, रूस और फांस के बीच युद्ध की प्रबल सम्भावित को इच्छा को देखकर, प्रशा के सम्राट विलियम फ्रेडरिक महान तृतीय को इसके लिए प्रेरित किया गया कि वह नेपोलियन से अपने सम्बन्ध तोड़ कर "टिलसिट" की सन्धि की शर्तों को मानने से रोक दें, लेकिन सम्राट ने आस्ट्रिया और रूस के सहयोग के बिना ऐसा करने से इन्कार कर दिया, और आगे जाकर इसके विपरीत ही सम्राट ने 1812 में ही नेपोलियन को रूस के

विरूद्ध युद्ध छेड़ने के लिए 20 हजार सैनिक देने के लिए सहमत हो गया। सम्राट की इस नीति के विरोध में क्लॉजविट्ज ने अन्य 30 सैनिक अधिकारियों के साथ सेना के कमीशन पद से त्यागपत्र दे दिया, इसके साथ ही प्रशा छोड़कर रूस चला गया। कहा जाता है कि रूस में क्लॉजविट्ज ने सम्राट अलेक्जेन्डर प्रथम के सैनिक सलाहकार के रूप में कार्य किया था। यह भी प्रमाण मिलता है कि रूस में क्लॉजविट्ज ने नेपोलियन बोनापार्ट के विरूद्ध बोरोडिनों की दूसरी लड़ाई में एक कुशल सैनिक का रोल अदा किया था।

प्रशा का आर्मी कोर जो रूस के खिलाफ सैनिक अभियान में नेपोलियन को समर्पित किया गया था, वह प्रशियन जनरल यार्क के नेतृत्व में था जो मास्को अभियान में उससे आगे नहीं आ सका, बल्कि उसने बाल्टिक प्रदेश में आगे अपने आप को जाने से रोक दिया। क्लॉजविट्ज ने जनरल यार्क और रूस के शासक के बीच अनेक सन्दर्भों में मध्यस्थता करके, 30 दिसम्बर, 1812 को ही बिना प्रशा के शासक के आदेश के समझौता करा ही दिया, जिसके सन्दर्भ, में प्रशा की सेना की तटस्थता रूस द्वारा स्वेच्छा से स्वीकार कर ली गई। जब प्रशा के शासक विलियम फ्रेडरिक को इस समझौते के विषय में जानकारी प्राप्त हुयी तो उसने इसका तत्काल विरोध करना शुरू कर दिया, परन्तु इसके पश्चात् जनता के बीच अफवाह फैलाने के लिए स्वीकृति दी। तत्काल इसके बाद फरवरी सन् 1813 में यह समझौता रूस और प्रशा के बीच मित्रता और सहयोग की भावना का श्री गणेश ही "कालिश" की सन्धि का एक आधार माना गया। इसके तुरन्त बाद जब 17 मार्च, 1813 को प्रशियन सम्राट ने नेपोलियन के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी इसके बाद जर्मनी का स्वतंत्र युद्ध शुरू हुआ, जिसमें रूस और प्रशिया की सेना ने एक साथ मिलकर नेपोलियन से लोहा लिया, तब क्लॉजविट्ज प्रशा लौटा। लेकिन प्रशा के सम्राट ने क्लॉजविट्ज के निष्ठाहीन आचरण के कारण उसको प्रशियन सेना में कोई स्थान नहीं दिया। क्लॉजविट्ज ने प्रशियन सेना की पोशाक में ही प्रशा की सेना में शार्न होर्स्ट के सलाहकार के रूप उसने में अपनी स्वतंत्र इच्छा से कार्य किया। मई सन् 1813 में ही "लुटजन" की लड़ाई में वह सलाहकार के रूप में भाग लिया, जिसमें शार्न, होर्स्ट घायल हो गया था और कुछ ही दिनों के उपरान्त उसकी मृत्यु हो गयी कहा जाता है कि जनरल क्लॉजविट्ज भी इस युद्ध में घायल हो गया था। 16 से 18 अक्टूबर, 1813 की "लिपजिंग" के युद्ध में, जिसमें नेपोलियन को पराजय का निमंत्रण जान–बूझ कर देना पड़ा, क्लॉजविट्ज ने प्रशा की सेना के कमान्डर मार्शल ब्लूखर के सलाहकार के रूप में भाग लिया था। सन् 1814 में जनरल क्लॉजविट्ज को पुनः प्रशा की सेना में भागीदारी निभाने का अवसर दिया गया। सन् 1815 में क्लॉजविट्ज को कर्नल का पद दिया गया और जनरल मैलिथन की कोर में ही चीफ ऑफ स्टाफ के रूप में नियुक्त कर दिया गया। सन् 1815 में ही प्रसिद्ध "वाटरलू" के अभियान में क्लॉजविट्ज ने जनरल मैलियन चीफ ऑफ स्टाफ के रूप में भूमिका अदा किया। इस प्रकार क्लॉजविट्ज 1806 से लेकर 1815 "वाटरलू" की लड़ाई तक की नेपोलियन अनेक लड़ाइयों से अपना सम्बन्ध बनाये रखा।

कहा जाता है कि क्लाजविट्ज को 9 मई, सन् 1818 में ही मेजर जनरल के रैंक पर पदोन्नति करके वर्लिन सैन्य अकादमी का निदेशक नियुक्त किया गया, यहाँ पर क्लॉजविट्ज ने अपने पद की गरिमा को मात्र 12 वर्ष तक ही निरन्तर बनाये रखा और अपने विचारों और सिद्धान्तों को एक प्रसिद्ध ग्रन्थ "आन वार" (बोम क्रीज) के रूप में सब कुछ यथावत संकलित कर दिया। क्लॉजविट्ज 1830 में बुसेल में तोपखाने का इंसपेक्टर जनरल नियुक्त किया गया। परन्तु जब 6 मार्च, 1831 को जनरल न्याइजेनाऊ तोपखाने पूर्वी क्षेत्र में

सेना की कमाण्ड सम्भाली तो उसने क्लॉजविट्ज को चीफ आफ स्टाप नियुक्त किया और क्लॉजविट्ज पोसन चला गया 24 अगस्त 1831 को जनरल न्याइजेनाऊ की हैजे से मृत्यु हो गयी तो क्लॉजविट्ज तोपखाने के इंसपेक्टर जनरल के पद पर 7 नवम्बर 1831 को बुसेल लौट आया, जहाँ उसकी 16 नवम्बर, 1831 को हैजे से आकस्मिक मृत्यु हो गयी। क्लॉजविट्ज की मृत्यु के उपरान्त उसकी पत्नी मेरीवांन क्लॉजविट्ज ने के उसके लेखों को 1832 एवं 1837 के बीच 10 भागों में प्रकाशित कराया, क्लॉजविट्ज का सम्पूर्ण, ग्रन्थ 8 भागों में विभक्त है, जिसमें कुल मिलाकर 125 अध्याय स्पष्ट रूप से प्रमाण मिलते है। क्लॉजविट्ज केवल प्रथम भाग के प्रथम अध्याय को ही दोहरा पाया था, उसको सम्पूर्ण ग्रन्थ दोहराने का अवसर नहीं मिल सका, यह भी एक दुर्भाग्यपूर्ण का विषय था। इसलिए उसके विचारों में कहीं न कहीं विरोधाभाष अलंकरण उचित क्रम में अभाव जरूर मिलता है, क्लाजविट्ज को यद्यपि कभी भी सेना की स्वस्थ्य रूप से कमान्ड सम्भालने का अवसर नहीं मिल सका, परन्तु इसके बाद भी उसने अपने व्यक्तिगत चिन्तन, अनुभव और दार्शनिक दृष्टिकोण से युद्ध के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलू पर प्रकाश डालने का कार्य किया है। क्लॉजविट्ज की सैन्य शिक्षा का प्रयोग प्रथम बार जर्मन जनरल स्टाफ के अध्यक्ष हेलमुच बांन मोल्टके ने सन् 1866 एवं 1870 के आस्ट्रिया एवं फांस के विरूद्ध युद्धों में भाग लिया, मोल्टके को बर्लिन सैन्य आकदमी में क्लॉजविट्ज का सैनिक शिष्य रहने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था।

क्लॉजविट्ज को यद्यपि कभी स्वतंत्र सैनिक कमान्ड सम्भालने का अवसर तो नहीं मिल सका किन्तु अपने समय के अनेक महान जनरलों के साथ कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। क्लाजविट्ज को अपने समय की अनेक महत्वपूर्ण, लड़ाइयों में स्पष्ट रूप से भाग लेने एवं निकटता से सिंहावलोकन करने का सुअवसर भी समय-समय पर मिलता रहा, उसने 1792 में प्रशा की सेना में कार्य आरम्भ किया जो व्यवसायिक सेना मानी जाती थी जिसको फेडरिक महान ने स्वतंत्र रूप से त्याग दिया था। सन् 1815 तक आते- आते प्रशा की सेना ने राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया था जो अनिवार्य सैनिक सेवा के आधार पर गठित हुयी थी एवं राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण थी। 40 वर्ष की आयु के पूर्व ही क्लॉजविट्ज को इतिहास के अत्यन्त महत्वपूर्ण, सैनिक अभियान "मास्को अभियान" में भाग लेने और निकट से देखने का अवसर मिला। परन्तु क्लॉजविट्ज ने नेपोलियन की लड़ाईयों के मर्म एवं रहस्य को अपनी तीव्र बुद्धि से काफी पहले, 1804 में ही समझकर बैठ चुका था उसने 1804 में प्रकाशित अपने अभिलेख में स्पष्ट रूप से लिखा था कि नेपोलियन को पोलैण्ड में सफलता किसी भी मामले में नहीं मिल सकती है और रूस में उसको पराजय का सामना करना पड़ सकता है। सन् 1812 में क्लॉजविट्ज का विचार शत प्रतिशत सही साबित हुए।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1- क्लॉजविट्ज आन वारय 1976 पृष्ठ 70

2- एचद्र रोथफेलसय मेकर्स, आफ माडर्न, स्टेटजी, पृष्ठ- 93

3- जे०एफ सी. फुलर दी कन्डेक्ट आफ वार, पृष्ठ- 12-13

उपनिषद् : अध्यात्मिक चिंतन की अमूल्य धरोहर

अलका केशरी
शोधछात्रा, संस्कृत विभाग
डॉ० राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय
अयोध्या

अध्यात्मिकता कोई पूजा-पद्धति नहीं, बल्कि एक विलक्षण अनुभव है। जो ईश्वर को जान जाता है, वह प्रबुद्ध हो जाता है और जो जानने की कोशिश करता है वह अध्यात्मिकता हो जाता है। जब हम धार्मिक होते हैं तो केवल ईश्वर को मानते हैं, लेकिन अध्यात्मिकता होते ही हम ईश्वर को जानने की कोशिश करने लगते हैं। यही कारण है कि धर्म में अनुयायी होते हैं, लेकिन अध्यात्म में साधक होते है।

अध्यात्मिकता में एक भावना या भावना और विश्वास की मान्यता शामिल है कि मुझसे भी बड़ा कुछ है, मानवीय होने के लिए संवेदी अनुभव से भी कुछ अधिक है और यह कि मानव जिस बड़े समग्र का भाग है, वह प्रकृति में लौकिक या दिव्य है।

उपनिषद् अध्यात्मिकता तथा दार्शनिकता से परिपूर्ण ग्रन्थ हैं। ये चिन्तनशील ऋषियों द्वारा ब्रह्मा के विषय में वर्णित ज्ञानके भण्डार हैं और भारतीय अध्यात्मिकता संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। समस्त भारतीय दार्शनिक चिन्तन का मूल उपनिषद् ही है। उपनिषद् चिंतनशील ऋषियों की ज्ञान चर्चाओं का सार है। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि, उपनिषद् भारतीय अध्यात्मिकता चिंतनके मूलाधार है, भारतीय अध्यात्मिकता दर्शन स्रोत हैं। वे ब्रह्म विद्या हैं। जिज्ञासाओं के ऋषियों द्वारा खोजे हुए उत्तर हैं। वे चिंतनशील ऋषियों की ज्ञानचर्चाओं का सार हैं। वे कवि-हृदय ऋषियों की काव्यमय अध्यात्मिकता रचनाएं हैं, अज्ञात की खोजके प्रयास है, वर्णनातीत परमशक्ति को शब्दों में बाँधने की कोशिशें हैं और उस निराकार, निर्विकार, असीम, अपार को अन्तर्दृष्टि से समझने और परिभाषित करने की अदम्य आकांक्षा के लेखबद्ध विवरण हैं।

उपनिषद् वास्तव में, एक अध्यात्मिकता मान सरोवर है जिसमें डूबने वाले व्यक्ति को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्योतिर्मठ के शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती (1868-1953) ने उपनिषदों के संदर्भ में लिखा- "उपनिषद्देव का ज्ञानकाण्ड हैं। यह प्रदीप्त वह ज्ञान-दीपक जो सृष्टि के आदि से प्रकाश देता चला आ रहा है और प्रलय पर्यन्त प्रकाशित रहेगा। इसके प्रकाश में अमरत्व है जिसने सनातन धर्म के मूल का सिंचन किया है।" प्राच्य और पाश्चात्य सभी विद्वान् इसके विपुल ज्ञान भण्डार से अपनी ज्ञान-पिपासा शांत करते रहे है। मध्यकालीन भारत में शाहजहाँ का पुत्र 'दाराशिकोह' उपनिषदों से इतना प्रभावित हुआ कि उसने स्वयं पचास के लगभग प्रमुख उपनिषदों का फारसी में अनुवाद कर डाला। वहीं 'बर्नियर' उपनिषदों के फारसी अनुवाद की कुछ पाण्डुलिपियाँ फ्रांस ले गया था।

आधुनिक युग में प्रसिद्ध जर्मन विद्वान 'शोपेन हावर' ने इसे मानव मस्तिष्क की सबसे ऊँची रचना मानकर अपने गुरु त्रयी में काण्ट एवं प्लेटोके साथ स्थान दिया। उनके अनुसार, "उपनिषदों के प्रत्येक वाक्य से बहुत गहरी, मूलभूत व उत्कृष्ट विचारधारा उत्पन्न होती है तथा जो पूरी तरह एक पवित्र व गंभीर भाव से ओत–प्रोत हैं। सारे संसार में उपनिषदों से बढ़कर लाभकारी व जीवन को ऊँचा उठाने वाला कोई दूसरा अध्ययन का विषय नहीं है।" उसने उपनिषदों को अपने जीवन में दु:खों से मुक्ति का उपाय माना। मैक्समूलर, डासन, जी0 आर्क आदि ने इसे सत्य को जानने का सर्वश्रेष्ठ साधन माना। स्वामी विवेकानन्द ने उपनिषदों को शारीरिक, मानसिक व अध्यात्मिकता स्वाधीनता का मूलमंत्र माना है।

उपनिषद् में ऋषि ने मनुष्य तथा समाज की अध्यात्मिकता उन्नति के साथ–साथ भौतिक विज्ञान की उन्नति का भी संदेश दिया है। इस विषय में अपने चिंतन को प्रस्तुत करते हुए वह कहते हैं कि, 'अविद्या अर्थात् भौतिक विज्ञान से जीवन की कठिनाइयों को पार कर, अध्यात्म विज्ञान के माध्यम से मनुष्य परम आनन्द को प्राप्त करता है। 'कठोपनिषद्' के अमरवाक्य 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' को अपने जीवन में आत्मसात् कर स्वामी विवेकानन्द ने सम्पूर्ण भारत वर्ष की सोई हुई युवा शक्ति में अध्यात्मिकता स्वावलंबन एवं स्वाभिमान की भावना को जाग्रत किया था।

उपनिषद्–साहित्य वह अध्यात्मिकता दिनकर है, जिससे अनेक किरणें निकलकर इस पवन–दर्शन–भूमि को समुज्ज्वलित करती है तथा मानवमात्र के ऐहिक–कल्याण और आयुष्मिक मंगल का निश्पादन करती है। मानव जाति के अध्यात्मिकता इतिहास में उपनिश्द्–साहित्य उस विस्तृत अध्याय की भाँति है, जो युग–युगान्तर से भारतीय धर्म, दर्शन और जीवन को निरन्तर अनुशसित करता आ रहा है। उपनिषद् अपनी प्राचीनता गम्भीरता, दार्शनिकता एवं ब्रह्मज्ञान के प्रतिपादन की दृष्टि से नितान्त प्रौढ़, प्रामाणिक तथा प्रसिद्ध है। उपनिषदों का परमलक्ष्य प्राणिमात्र को आधिभौतिक, आधिदैविक तथा अध्यात्मिकता–त्रिविध दु:खों से मुक्ति दिलाना है, जो यथार्थ ज्ञान से ही सम्भव है। यह यथार्थज्ञान ही मोक्ष है। उदाहरणस्वरूप राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने यरवदा जेल में 'ईशोपनिषद्' का अध्ययन करने और उसे कण्ठाग्र करने के बाद उसके विषय में कहा था कि, "अब मैं अन्तिम रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यदि सारे उपनिषद् तथा हमारे अन्य सारे धर्मग्रन्थ अचानक नष्ट हो जाय और ईशोपनिषद् का केवल पहला श्लोक हिन्दुओं की स्मृति में कायम रहे तो भी हिन्दू धर्म सदा जीवित रहेगा।" ईशोपनिषद् का प्रथम श्लोक है–

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यांजगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृथ: कस्य स्विद् धनम्।।"

अर्थात् इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जो भी ये जगत् हैं, सब ईज़ 'ईश्वर' द्वारा ही व्याप्त है। उसके द्वारा त्यागरूप जो भी तुम्हारे लिए प्रदान किया गया है उसे अनासक्त रूप से भोगो। किसी के भी धन की इच्छा मत करो।

आज विश्व मानव इतिहास के सबसे संकटपूर्ण दौर से गुजर रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हुई प्रगति ने एक ऐसे बौद्धिक आन्दोलन को जन्म दिया है जो बिना सोचे–समझे प्राचीन जीवन मूल्यों व ज्ञान परम्परा को अनावश्यक ही चुनौती दे रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने मनुष्य की अन्तरात्मा को मार दिया है और

उसे भिन्न-भिन्न प्रलोभनों का दास बना दिया है। उसके पास आत्मोन्नति के विषय में सोचने का समय ही नहीं है। वह धन, शक्ति, स्वामित्व व अधिकार के लिए पागल हो रहा है। विश्व के देशों के प्रशासकों की कथनी व करनी में कोई ताल-मेल नहीं है। प्राचीन काल के इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, विज्ञान तथा शनैः-शनैः लुप्त हो रहे हैं। विश्व प्रदूषण, महामारी, प्राकृतिक प्रकोप, आतंकवाद और ऐसी हजारों समस्याओं से जूझ रहा है। सर्वत्र एक निराशा व्याप्त है और अनीश्वरवादियों की संख्या में वृद्धि हो रही है। परमाणु शक्ति ने विश्व को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है। ऐसी विषम परिस्थिति में विश्व शान्ति के लिए उपनिषदों में सन्निहित ज्ञान के प्रार करने वाले विचारकों, प्रचारकों व उद्धारकों की आवश्यकता है जो संसार को इस विभीषि का से बचा सकें।

संक्षेप में, उपनिषद् भारतीय दर्शन के वे मूलस्रोत हैं, जिसके बिना भारतीय सांस्कृतिक परम्परा व भारतीय मनीषा की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। उपनिषद् साहित्य ने हमारे समक्ष सत्य का वह सिद्धान्त रखा है जिसकी तरफ कोई ऊँगली भी नहीं उठा सकता है। भारतीय संस्कृति में उपनिषदों का स्थान अक्षुण्ण है। उपनिषदों में सन्निहित ज्ञान के कारण ही भारत को समस्त विश्व ने 'जगत् गुरु' स्वीकार किया था। 'वृहदारण्यक उपनिषद्' का मानवता के लिए दिया गया अद्वितीय संदेश आधुनिक युग में अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है-

"ऊँ असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माखमृत गमय। ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।" अर्थात् 'हमें' असत्य से सत्य की ओर ले चलो, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चला; मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो। सर्वत्र शान्ति हो।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीमती मोती देवी, ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्
2. एफ0 मैक्समूलर, उपनिषद्स/Upnishads
3. गीता प्रेस, गोरखपुर, कठोपनिषद्
4. ए0एस0 गेडेन, The Philosophy of Upnishads
5. मंजुला पाठक, अध्यात्मिकता चिन्तन
6. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, The Principal of Upnishads
7. रामानुज प्रसाद, Know the Upnishad
8. बलवीर सिंह, The Philosophy of Upnishads
9. रानाडे, रामचन्द्र दत्तात्रेय, उपनिषद् दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण
10. शुब्रा शर्मा, Life in the Upnishad
11. डायसन पॉल, The Philosophy of Upnishad
12. एम0 हिरियण्ण, Outline of Indian Philosophy

काशीनाथ सिंह की कहानियों में पारिवारिक जीवन

संजय सिंह
शोध-छात्र
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

कोई भी रचनाकार ऐसा नहीं है जो सामाजिक एवं पारिवारिक स्थितियों से जुड़ा हुआ नहीं होता। यही कारण है जब वह किसी भी तरह का साहित्य लिखता है तो उसकी रचना में परिवार अथवा समाज अपने आप विवेचित हो जाता है। काशीनाथ सिंह की कहानियों पारिवारिक जीवन के कई काणो को खोलती है। उनकी कहानियों में दाम्पत्य जीवन से लेकर बच्चों के साथ होने वाली क्रियाओं- प्रतिक्रियाओं का भी समावेश है। काशीनाथ सिंह द्वारा लिखी गई कहानी 'सुख' है। इसके पात्रा भोला बाबू हैं। ये शाम को निकालने वाली सूरज की किरण जिसमें लालिमा है उसको देखकर मन- ही- मन बहुत खुश होते हैं और वह लालिमा कहीं घास पर दिखाई देती है, कहीं कपड़ों पर। उस लालिमा का प्रभाव कई जगहों पर पड़ता है जिसे देखकर ये काफी प्रफुल्लित होते हैं। "बाहर हरी घास लाल है। चारदिवारी लाल है वे तेज कदमों से आगे बढ़े और चारदिवारी तक गए। फिर रुक गए। यहां से सूरज दिख रहा था। पहाड़ियों के कुछ ऊपर बादलों के कहीं आसपास। ताड और बबुलों के बीच में। उन्होंने स्वयं पर निगाह डाली। मार्किन का सफेद कुर्ता गुलाबी हो उठा था। वे मुस्कुराए देखो, दुनिया में क्या-क्या चीजे हैं। कितनी अच्छी-अच्छी चीजें।"[1] वे संध्याकालीन सूरज की निकलने वाली लाल किरण से इतनों प्रफुल्लित थे कि सबको बताना चाहते थे कि देखो यह कितना आकर्षक और मनमोहक है। इसी क्रम में सर्वप्रथम उन्होंने अपनी पत्नी को बुलाया। वह जल्दी नहीं आ रही थी। जब वे चिल्लाकर कहने लगे, बिट्टी की मां तुम क्यों नहीं आती, जल्दी आओं। और जब वह आई, तो इन्होंने कहा-"अरे इधर तो आओ। बिट्टी की मां दौड़ी। जाकर भोला बाबू के बगल में खड़ी हो गई। सामने, उधर देखो। वे सड़क पर देखने लगी। सड़क नहीं, उधर दूर ताडों के पीछे।" यह उसे देखे जा रही थी लेकिन उन्हें कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था। भोला बाबू यह सोच रहे थे कि अब सूरज की निकलने वाली लाल किरण के बारे में कुछ कहेगी, लेकिन कुछ नहीं कह पाई। फिर उन्होंने पूछा तुम्हें कुछ दिखाई दे रहा है या नहीं? उसने कहा कि हां मैं देख रही हूं खच्चरों पर ईंट लदी है और उसके पीछे आदमी चल रहा है। उनकी बात सुनकर भोला बाबू जोर से हंस पड़े और बोले- "औरत की जात। खच्चर और गधे के सिवा देख ही क्या सकती हो? तो क्या देखने को कहते हो? कुछ नहीं जाकर मॉड पसाओ और आटा गूथो।"[3] भोला बाबू के मन में बेचैनी थी कि मैं जाकर किसको किसको सुनाऊं कि यह संध्याकालीन किरण बहुत अच्छी लग रही है, आकर्षक है इसी भाव में हुए डूबे रहे। फिर उन्हें लगा कि मैं मुख्तार साहब के यहां जाऊं और सबसे पहले उन्हीं को बताऊंगा। फिर उन्होंने अपनी पत्नी को पुकारा जरा धोती और छड़ी तो ले आना। क्यों? कहीं जाइएगा। भोला बाबू नहीं बोले। धोती और छड़ी आ गई। धोती पहनी। छड़ी ली और चले। यह ऐसी बात

नहीं जो यूं ही छोड़ दी जाए। उन्होंने विचारा आज चलेंगे और कहेंगे। सबसे कहेंगे लेकिन सबसे पहले माधव के याहॉ चलेंगे। माधव जो मुख्तार है।"[4] भोला बाबू ने जिससे जिससे कहना चाहा, उनके मन की बात नहीं समझ रहे थे। इस कारण मन- ही- मन में झुझलाए हुए थे और कई जगह से घूम कर आए, तो बिट्टी की मां उनको देखकर कहने लगी आप कुछ मनहूस जैसे दिखाई दे रहे हैं ऐसा क्यों? आईए खाना खा लीजिए। खाना रखा हुआ था लेकिन वे नहीं खा रहे थे। बिट्टी की मां उन्हें समझाती रही कि आप खाना खा ले। इस पर उन्होंने कहा आज मैं नहीं खाऊंगा। बिट्टी की मां यह सब समझ नहीं पा रही थी। भोला बाबू मन- ही- मन उदास और खिन्न थे। उन्होंने कहां- "देखो कहने को यह बीवी है। यह बेटा है। यह बेटी है। यह मकान है। यह जायदाद है। यह दोस्त हैं। ये नातेदार हैं। लेकिन सच पूछो तो कोई किसी का नहीं।"[5] भोला बाबू के द्वारा इस तरह की बात कहे जाने पर बिट्टी की मां काफी परेशान हो रही थी कि आखिर यह हम सबों को क्या सुना रहे हैं। इनको कौन सी तकलीफ हम लोगों के कारण हुई है कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उनकी यह स्थिति देखकर बिट्टी की मां रोने लगी। सबको रोते हुए यह देखकर बोले- "लेकिन इसमें रोने की क्या जरूरत है तुम सब जाओ। खाओ पियो। बस मैं नहीं खाऊंगा। भोला बाबू ने भीगी आवाज में कहा और दूसरी करवट लेट रहें। बिट्टी की मां ने बच्चों को मुंह देखा और जोर से रो पड़ी। बच्चे भी चिल्ला पड़े। भोला बाबू भी तकिए में सिसकने लगे। फिर वे कुहनी के सहारे उठ बैठे। बिट्टी की मां। आखिर क्यों? यह सब क्यों? उन्होंने बिट्टी की मां को झकझोरा। बिट्टी की मां और जोर से रोने लगी। भोला बाबू देखते रहे और सहसा टूटकर रोने लगे। रोने वालों में सबसे ऊंचा और दुखी स्वर भोला बाबू का था।"[6]

'आखिरी रात' में कहानीकार ने अपने जीवन से जुड़े कई प्रसंगों को अभिव्यक्त किया है। जब पति-पत्नी एक साथ रहते आए और एक समय ऐसा आया जब उनकी पत्नी को न ईहर जाने की घड़ी आई। उस समय इनके भीतर कई तरह का भाव बनता- बिगड़ता रहा। कहानीकार के अनुसार-"अनायास मुझ पर उदासी घिरने लगती है। पत्नी के साथ की वितायी घड़ियां, साथ-साथ रहना, घूमना- फिरना, हंसी- मजाक, रूठना- मनाना, आपसी हूं-टूॅ, बहुत सी चीजें हैं।"[7] पति-पत्नी के बीच प्यार भरी बातें चलती है। वे अपने बिताए सुख के को लम्हों को भी याद करते हैं। कब- कब इन दोनों के जीवन में सुख का अनुभव हुआ उसे भी व्यक्त करने में अपने को नहीं रोकते। उनकी पत्नी कहती है मुझे आज बहुत कुछ याद आ रहा है- पत्नी सकुचाई रहती है। गांव से आते समय रास्ते में आपने कितना तंग किया था और पहली रात को तो... वे शर्मा जाती है। और तुम भी तो शुरू में कितनी सीधी लगी थी मुझे क्या पता था कि तुम इतनी शोख हो।"[8] कहानीकार की पत्नी को जब जाना है उनके मन में कई तरह की पिछली बातें याद आती हैं। इसके अलावा पत्नी के संबंध में भी वे कई तरह की बातें करने पर विवश हो जाते हैं। पत्नी इतने दिन मेरे साथ रही है। मैंने उनके लिए कुछ भी नहीं किया है कर ही नहीं सका हूं। और जब आज जा रही हैं तब भी मैं उलझन अनुभव कर रहा हूं। तुम्हें किसी अच्छे घर में होना चाहिए था। क्यों? वह चौंकती हैं। फिर मुझे देखते हैं यह आप क्या कह रहे हैं मुझे अफसोस है कि हम तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सके। वे मेरे होठों पर हाथ रख देती है।"[9] उनके मन में कई तरह की बातें हैं। यादगार रूप में आती हैं वह एक साथ रहते जैसा उन्होंने अनुभव किया था और जितना लगाव उनके प्रति हो गया था इसके कारण उन्हें दूर होने देना नहीं चाहते। वे कहते हैं वे कल अलग होगी। मैं उन्हें स्टेशन छोड़ने जाऊंगा। एक डिब्बे में खिड़की के पास बैठ जाएंगी। देखिएगा कहेंगी।

गांव से माँ को बुला लीजिएगा जरूर से। यदि न आ सके तो नौकर रख लीजिएगा। शरीर का ध्यान रखिएगा। आप बड़े लापरवाह हैं। हां सवेरे दूध की मात्रा बढ़ा लीजिएगा। उतने से काम नहीं चलेगा। गाड़ी सिटी देगी। पटरियों पर खिसकने लगेगी। में अवसन्न चेहरे से रुमाल हिलाऊंगा। उनकी आंखें भर आएंगी। वे सर को झटका देगी। सर खिड़की के बाहर कर लेंगी। मुस्कुराने का प्रयत्न करेंगीं। फिर अचानक जैसे याद आएगी। उनका गला भारी रहेगा। आवाज खो जाएगी। संभव है मैं गाड़ी के साथ कुछ दूर तक दौडूं भी।"[10] जब वे नईहर जा रही है तो सोचती हैं कि वहां अपनी भाभी और बच्चों के लिए कुछ सामान भी लेते चलें। इसलिए उनसे आग्रह करती है कि वहां ले जाने के लिए कुछ न कुछ सामान चाहिए। वे कहती हैं– भाभी, मुन्नी और बच्चों के लिए कुछ दीजिएगा या नहीं? मैं सहसा गंभीर हो जाता हूं क्यो? यह देखिए वे लेटे ही लेटे हंसती हैं इन्हें जैसे कुछ मालूम ही नहीं। मेरी आंखें उनके चेहरे पर है। मैं कुछ बोल नहीं रहा हूं। सब दिया जाता है ऐसा रिवाज है। छोटी भाभी जब मायके गई थी तब घर वालों की खातिर तो लिए ही गई खुद बक्सा भरा कपड़े बड़ी भाभियों के लिए मांगकर गई जब लौटी तब सारे कपड़े लौटा दिए।"[11] कई बार सामान ले जाने, ले आने और मांगने की प्रक्रिया चलती रही। इसी बीच पति–पत्नी दोनों में कई बार मनमुटाव की भी स्थिति बनती और उन्हें लगा कि ये कुछ नहीं देंगे। इसलिए पत्नी चुपके से चारपाई से उठती है थोड़ी दूर पड़ी कुर्सी पर बैठ जाती है। उनका मौन मुझे अरखने लगता है कुछ समय पहले उन्होंने चाहा था 'कुछ' हो मुझे स्मरण आता है लकतु वह होना या तो शायद नहीं है बड़े धैर्य से कुछ देर तक प्रतीक्षा करता रहता हूं।"[12] दोनों कई बार एक दूसरे को समझाने का प्रयत्न करते हैं लेकिन वह कोशिश नाकाम होती है पति समझाता है आखिर तुम मुझे समझने की कोशिश क्यों नहीं करती। तुम खाक समझती हो। मैं सहसा चीख उठता हूं मेरी तबीयत झल्ला जाती है– साड़ी, ब्लाउज, फ्रॉक, शर्ट इन सबके मायने क्या होता है जानती हो?[13] इस तरह हम देखते हैं इस कहानी में दाम्पत्य जीवन के कई मधुर और कटु अनुभव अभिव्यक्त हुए हैं।

काशीनाथ लसह द्वारा लिखी गई कहानी 'संकट' है। इस कहानी में पारिवारिक जीवन इस रूप में व्यक्त हुआ है। राघो मिलिट्री का एक जवान है जब छुट्टी में अपने गांव आता है तो उसकी पत्नी को उसे समय प्रसव हुआ था। वह अपने होने वाले पुत्र पर खुशी जाहिर न कर दुख प्रकट करता है। लेकिन इस बार जिस रोज मैं आए उनकी औरत सौरी में थी। राघो को बेटा हुआ था और वह आठवां दिन था। सारे गांव में खुशी थी। घर–घर में खुशी थी लेकिन राघो है कि आने के दूसरे दिन से चुप, कहीं नहीं जाते, किसी से नहीं बोलते।"[14] कई लोगों को लगा किया बाप बन जाने के कारण संकोची किस्म का हो गया है अथवा गंभीर बन गया है। लोग मन में कई तरह की आशंकाओं से भरकर उसके प्रति बात कर रहे थे लेकिन वह कभी अपने पिता से लड़ बैठता है, कभी माँ को डांटता है और घर के सारे लोगों को भी गालियां बकने लगता है कई दिन ऐसा हुआ जब वह दो–तीन जून तक भोजन नहीं किया उसकी इस स्थिति को देखकर उसकी मां ने बेचन से कहा– तुम उसके साथ पढ़े हो बाबू, उसको समझा दो। पता नहीं उसको क्या हो गया है। वह न कुछ बोलता है, न चालता है, न खुश रहता है। तुम उसके साथ पढ़े हो तुम्हारा कहना मान जाएगा। राघो की मां हमारे यहां कई का आई बेटा समझा दो उसे। वह किस पर नाराज है तुम दोनों के साथ पढ़ा लिखा है मान जाएगा।"[16] जब वह मनाने जाता है वह उसकी बात समझता नहीं है कहता है कि मैं फौजी का रंगरूट हूं। सलामी दागता हूं। बंदूक चलाता हूं और तुम मुझे समझाने चले हो। इतना ही नहीं राघो अपनी पत्नी के संबंध में कहता है कि

वह ऐसी है जिसका आचरण मुझे अच्छा नहीं लगता। उसके छींकने को लेकर भी राघो छींटाकशी करता है और कहता है कि अगर छीकना छोटी बात है तो बड़ी बात कौन सी है, जरा खुद सोचो जो औरत आज मेरे सामने छींक रही है, वही कल मेरे बाप के सामने भी छींक सकती है। मैं तुम्हीं से पूछता हूं क्या नहीं छींक सकती।"[17] वह कहता है सर्दी जुकाम होने पर अगर कोई छींकता है तो अलग बात हुई लेकिन उसके कई बार छींकने पर राघो को काफी आपत्ति है। वह कहता है– भाई, औरत ही तो है लेकिन एक बार हुआ, दो बार हुआ, उसने लगातार तीन बार छींका। और संकर तीन बार छीकना कोई खेल नहीं है। जो औरत आज मेरे सामने तीन बार छींक रही है वही कल दूसरे के सामने कुछ भी कर सकती है।"[18] उसे लगता है मेरी पत्नी जिस तरह एक भारतीय परिवार की ग्रामीण महिला रहती है उस रूप में नहीं रहती। इसी कारण वह कहता है संकर तुम मुझे जानते हो। मेरा कहना यह है कि अगर यह औरत है औरत की तरह रहे। यह क्या कभी छीक रही है, कभी हंस रही है, कभी जांत पर बैठी गा रही है। रसोई घर में कोई बिच्छू दिखा तो चिल्ला रही है। यह तो औरत न हुई तमाशा हुआ।"[19] फिर राघो के मन में औरत के प्रति जो दृष्टिकोण है वह कहता है मैं एक औरत को देखता हूं तो सोचता हूं अगर इसे होना ही था तो यह गाय, बकरी या भैंस न होकर औरत क्यों हुई? उन्होंने उठकर लालटेन की लौ जरा सी तेज कर दी और पहले की तरह लेटे रहे। सच तो यह संकर मैं औरत को हेट करता हूं। हेट समझ रहे हो न एच ए टी हेट हेट माने नफरत करता हूं।"[20] राघो के मन की बात को कोई समझ नहीं पाया वह मन ही मन काफी परेशान रहा और उसे लगा कि मैं नौकरी से छुट्टी पर यहां घर आया हूं लेकिन जिस प्रकार वहां रहा करता था यहां भी वही स्थिति मुझे देखने को मिली। इसलिए वह अपने अनुभव को संकर से साझा करते हुए कहता है– संकर यों जाना तो मुझे परसों था लेकिन सोचता हूं कल ही चला जाऊं। जैसी मिलिट्री वैसा घर टिट फॉर टाइट वे अबकी हंसे। देखा संकर तुम जरा सी बात नहीं समझ सके और मुझे दस का मुहावरा आज तक याद है क्यों? और वह हंसी दिए की अंतिम लों की तरह उनके चेहरे पर भभक उठी।"[21] इस तरह इस कहानी में राघो की मानसिक स्थिति का विवेचन किया गया है जिसका संबंध परिवार से जुड़ा हुआ है।

'अपने घर का देश' नामक कहानी का पात्र पारिवारिक जीवन में काफी कष्टमय जीवन बिता रहा है उसे न केवल शारीरिक श्रम करना पड़ता है बल्कि वह मानसिक और आर्थिक दृष्टि से भी परेशान है। इस कहानी में इसका नायक ही सभी समस्याओं से जूझता है। परिवार में कई तरह की समस्याएं हैं जिसका समाधान करने के लिए वह प्रयत्नशील है लेकिन ऐसा नहीं कर पाता। नायक के घर में सामने खुटियों पर कपड़े टंगे हैं। कपड़ों के बीच हेवडर्स का एक पुराना केलेंडर है जिसमें किसी विदेशी औरत की तस्वीर है। उसने अपने वक्ष को जालीदार चोली में बंद कर रखा है। उसने अपनी एक जांघ पर दूसरी जांघ चढ़ा रखी है और पूरी तरह हमलावर की मुद्रा में है। सब मिलकर कुछ ऐसा है जैसे कोई बिल्ली पंजा मारने के लिए उछली हो और कागज पर जाकर औरत हो गई हो। पत्नी को है औरत गंदी लगी थी और एक दिन शायद जिस रोज उनके पिता आए थे उन्होंने उसके ऊपर भारत का एक बड़ा मानचित्र टांग दिया था।"[22] उनके विवाह में जो समान मिले थे जो पलंग था उसके बारे में इनका यह अनुभव है यह तो पलंग है इसी तरह की दूसरी बहुत सी चीजें हैं। मसलन मेज पर पड़ा हुआ प्लास्टिक का मेजपोश है जो बीच से फटकर नीचे झूल रहा है। पहले जरा सा फटा था आधी दूरी तय कर चुका है। रेडियो है जिसके लिए आज तक कवर नहीं सिलवा

सका हूं। उस पर धूल जमी है और वह किस बुढ़े आदमी की नाक की तरह खरखरता है। कुर्सियां हैं, खुटियां है, किवाड़ हैं, कपड़े है, पलंग है, और पत्नी क्या हजार पत्नियों के लिए उदास हो जाने की बात है।"[23] मेरा जीवन कई तरह की उदासियों में बितता है। मैं कभी अस्सी घाट पर घूमता रहता हूं। कभी सब्जी की दुकान पर या परचून की दुकान पर बैठकर अपना समय काटता हूं। अस्सी घाट पर धतूरा लगा है। मेरी जिंदगी तीस वर्षों से अस्सी घाट, घर और धतूरे के बीच होकर बितती आई है। जब मैं घर आता हूं इस खौफ के साथ मैं किताब उठाता हूं और ऊपर से माँ आती है दबे पांव। और बैठ जाती है और कहती है कि जब से नौकरी लगी तब से घर में कोई कथा नहीं हुई। वह पाँच साल से यही कह रही है। हो जाएगी– जाओ सो जाओ। मैं कहता हूं। चुपचाप वह इधर–उधर देखती हैं और धीरे से बोलती है– साड़ी नहीं है। एक ही साड़ी साल भर से पहन रही हूं। आ जाएगी– मैं ऐसा आश्वासन देता हूं। वह कांख में दबा हुआ आंचल हटाकर सुखी छातियाँ और पसलियाँ दिखाती हैं– झूल्ला नहीं है।"[24] उनके यह सब आश्वासन देने के बाद भी माँ चुपचाप वहीं बैठी रहती है और कहती है कि बूढ़ा इतना कंजूस है कि मेरे लिए कुछ भी नहीं खरीदता। इस पर उन्होंने कहा ठीक है यह भी हो जाएगा। अब चलो। वह नहीं जाती। कुछ देर तक साँय–साँयं करती है तीन–चार बार खाँसती है ताकती –झांकती है और धीरे से बोलती है– गाजीपुर वाली को समझा दो। वह हमेशा मुंह फुलाए रहती है।"[25] अपनी मां से बात करने के बाद मन के भीतर जो मनसा थी उसने समझ लिया और उसका जवाब भी हमने दे दिया। उसे कई तरह से समझा दिया तब थोड़ी देर के बाद उनकी पत्नी आती है। वह आती है और खड़ी रहती है। मैं पूछता हूं– क्या है? वह तुनक कर बोलती है क्या है समझने आई हूं। समझाओं। वह तैश में है। और पड़ोसी खासता है।"[26] वे उसके मन की बात जानना चाहते थे कि मेरे पास परिवार की कौन सी शिकायत लेकर आई है लेकिन वह वहां खड़ा हो जाती है। फिर मैं मजाक में टालना चाहता हूं और हाथ पकड़ लेता हूं– जरा बैठ जाओ। लेकिन कौन बैठता है और शुरू करती है मर–मर कर काम करो, न ठीक से खाना, न ठीक से पहनना। मायके से आई पिछली होली की साड़ी पहने जा रही हूं। एक पंडिताइन है कि बच्चिया नंगी घूमती हैं। न पाँव में जुते न देह पर फ्रार्क। डॉक्टर ने टॉनिक के लिए चार बार नुक्सा लिखा लेकिन नहीं आया। अम्मा है कि कहती है करना धरना कुछ नहीं। यह करो वह करो। पागल हो गई है और ऊपर से समझाओ ठीक है समझाओ देखूं क्या समझाते हो।"[27] मैं उसकी बात धैर्यपूर्वक सुनता रहता हूं और समझाने का प्रयास करता हूं लेकिन वह समझने को तैयार नहीं है। खाक होगा। वह चीखती है फुफंकारती हुई चली आती हैं फिर कांखने और झीकने की आवाज सुनाई पड़ती है और मां प्रकट होती है। वह थोड़ी देर तक चुपचाप सामने देखती रहती है और सहंसा रोने लगती है। अब क्या है? मैं ऊंचे स्वर में पूछता हूं– वह स्वर में आंसू घोल़कर बोलती है सारे खुराफात की जड़ मैं हूं जिस दिन मर जाऊंगी सब दुख दर्द खत्म हो जाएगां।"[28] ये समझाने का प्रयास करते हैं और कहते हैं कि तुम बिल्कुल सही बात कह रही हो। जिस दिन तुम मर जाओगी घर का कलह पूरी तरह से समाप्त हो जाएगां घर में जब इस तरह की स्थिति बनी हुई है कि परिवार के सदस्य एक दूसरे से झगड़ते हैं एक दूसरे का कहना नहीं करते परिवार में किसी तरह का सदभाव नहीं है एक दूसरे पर दोषारोपण करना, ऐसा करने से पूरा परिवार हलचल भरे वातावरण में जीवन यापन कर रहा होता है। परिवार के सभी लोगों की समस्याओं को ये सुनते हैं समझाने बुझाने का प्रयास करते हैं और फिर जब ये आते अपने कमरे में आते हैं प्रश्नों की सूची खत्म हो चुकी है। रोती हुई बच्चियां ऊपर

से चल चुकी हैं। वे सीढ़िओं से ही चिल्ला रही हैं कि अम्मा ने मारा है। मैं उपर बत्ती जला देता हूं ताकि वे गिर न जाए। कमरे में नाचता हूं और चुप कराता हूं। मैं जानता हूं कि सोकर उठने के बाद प्यार के लिए रोती है।"[29] घर की इस प्रकार की स्थिति है कि वे पढ़ने के लिए समय निकालना चाहते हैं लेकिन नहीं निकल पाता। कई तरह से इन्हें परिवार जनों के द्वारा डिस्टर्ब किया जाता है। कभी कोई समस्या को लेकर कभी कोई समस्या को लेकर। उसमें भी बच्चे हैं जो यह नहीं जानते कि पढ़ने लिखने के लिए किस तरह का वातावरण चाहिए। वे भी उनके लिए खलल पैदा करते हैं। इन्होंने अपने मनं स्थिति को व्यक्त करते हुए लिखा है- "मैं दो महीने पहले बड़े चाव से हिरोशिमा खरीदी थी जिसे अब तक नहीं पढ़ पाया हूं। मैं छोटी की पीठ सहलाते सहलाते हाथ बढ़ाकर हिरोशिमा और एक पेंसिल उठता हूं और अपनी गोद में रखकर फिर से सहलाने लगता हूं। सोचता हूं सो जाए तो शुरू करूं। इसी बीच छोटी का ध्यान पेंसिल और किताब की ओर जाता है जिसके मुख्य पृष्ठ पर धुएं का पेड़ है। वह उठकर बैठ जाती है। बड़ी भी बैठ जाती है और दोनों एक साथ धुएं के पेड़ पर टूटती हैं। में संभालू तब तक किताब का आधा हिस्सा दोनों के हाथ में होता है। वे अपराजित भाव से एक दूसरे को देखती हैं।"[30] इस क्रम में मैं बड़ी से पेंसिल छीन कर छोटी को देता हूं तब बड़ी रोने लगती है। मैं छोटी से पेंसिल छीनता हूं और बड़ी को देता हूं छोटी रोने लगती है। मैं पेंसिल बीच से तोड़ता हूं और एक-एक टुकड़ा दोनों को देता हूं। दोनों पेंसिल फेंक देती है और रोने लगते हैं। मैं दोनों को अपने हिसाब से मारना शुरू करता हूं। वे एक साथ चिल्लाती हैं और किताब में नोचना शुरू करती हैं। मैं उनके गुस्से के इस नतीजे के बारे में नहीं सोच पाया था। में पन्ने बिनता हूं और संभाल कर मेज पर रख देता हूं सोचता हूं कोई आठ आने का मामला है सुबह जिल्द बँधवा दूंगा।"[31] एक और इनका पड़ोसी है जो इनको तंग करता हैं। नक्शा लेकर हमेशा कहता है कि मेरी दीवार आप में चली गई है इसलिए उसे तोड़ना होगा। वे उससे निपट ही नहीं पाते तब तक परिवार जनों की समस्याओं से ये ग्रसित हो जाते हैं और सोचते हैं कि मैं किस प्रकार कौन सा काम करूंगा यह समझ नहीं पाता। अब तक मां और पत्नी कमरे में आ गई हैं। मैं वैसे ही पलंग पर पड़ जाता हूं मेरे पैर ऊपर की तरु हैं और सर नीचे की तरु। बच्चियां रो रही है और मां उन्हें चुप करा रही है। पत्नी सामान ठीक करने में लगी है वह इधर-उधर करने के बाद हाथ बांधकर खड़ी हो जाती है।"[32] इस तरह हम देखते हैं कि काशीनाथ सिंह ने अपनी कहानियों में पारिवारिक जीवन के कई छोटे बड़े बिंदुओं और समस्याओं को उठाया है जो आज भी भारतीय समाज में किसी न किसी परिवार में देखा जा सकता है। कुल मिलाकर काशीनाथ सिंह की कहानियां पारिवारिक जीवन के यर्थाथ को, उसकी असलियत को सामने रखती हैं जिसके आधार पर यह हम सहजता से अनुमान कर सकते हैं कि यही हमारा पारिवारिक जीवन है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कहन-सुख-काशीनाथ सिंह-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2003-पृष्ठ सं०-13
2. कहन-सुख-काशीनाथ सिंह-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2003-पृष्ठ सं०-14
3. कहन-सुख-काशीनाथ सिंह-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2003-पृष्ठ सं०-4
4. कहन-सुख-काशीनाथ सिंह-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2003-पृष्ठ सं०-15
5. कहन-सुख-काशीनाथ सिंह-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2003-पृष्ठ सं०-19

6. कहन–सुख–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–19
7. कहन–आखिरी रात–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–21
8. कहन–आखिरी रात–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–21
9. कहन–आखिरी रात–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–23
10. कहन–आखिरी रात–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–23
11. कहन–आखिरी रात–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–24
12. कहन–आखिरी रात–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–24
13. कहन–आखिरी रात–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–24
14. कहन–आखिरी रात–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–25
15. कहन–संकट–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–27
16. कहन–संकट–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–27
17. कहन–संकट–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–28
18. कहन–संकट–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–28
19. कहन–संकट–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–29
20. कहन–संकट–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–29
21. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–55
22. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–55
23. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–55
24. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–55
25. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–56
26. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–56
27. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–6
28. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–56
29. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–57
30. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–58
31. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–58
32. कहन–अपने घर का देश–काशीनाथ सिंह–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2003–पृष्ठ सं०–59

उपनिषद् : आध्यात्मिक चिंतन की अमूल्य धरोहर

अलका केशरी
शोधच्छात्रा, संस्कृत
डॉ० राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय
अयोध्या

आध्यात्मिकता कोई पूजा-पद्धति नहीं, बल्कि एक विलक्षण अनुभव है। जो ईश्वर को जान जाता है, वह प्रबुद्ध हो जाता है और जो जानने की कोशिश करता है वह आध्यात्मिक हो जाता है। जब हम धार्मिक होते हैं तो केवल ईश्वर को मानते हैं, लेकिन आध्यात्मिक होते ही हम ईश्वर को जानने की कोशिश करने लगते हैं। यही कारण है कि धर्म में अनुयायी होते हैं, लेकिन अध्यात्म में साधक होते है।

आध्यात्मिकता में एक भावना या भावना और विश्वास की मान्यता शामिल है कि मुझसे भी बड़ा कुछ है, मानवीय होने के लिए संवेदी अनुभव से भी कुछ अधिक है और यह कि मानव जिस बड़े समग्र का भाग है, वह प्रकशति में लौकिक या दिव्य है।

उपनिषद् आध्यात्मिक तथा दार्शनिकता से परिपूर्ण ग्रन्थ हैं। ये चिन्तनशील ऋषियों द्वारा ब्रह्मा के विषय में वर्णित ज्ञान के भण्डार हैं और भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। समस्त भारतीय दार्शनिक चिन्तन का मूल उपनिषद् ही है। उपनिषद् चिंतनशील ऋषियों की ज्ञान चर्चाओं का सार है। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि, उपनिषद् भारतीय आध्यात्मिक चिंतन के मूलाधार है, भारतीय आध्यात्मिक दर्शन स्रोत हैं। वे ब्रह्म विद्या हैं। जिज्ञासाओं के ऋषियों द्वारा खोजे हुए उत्तर हैं। वे चिंतनशील ऋषियों की ज्ञानचर्चाओं का सार हैं। वे कवि-हृदय ऋषियों की काव्यमय आध्यात्मिक रचनाएं हैं, अज्ञात की खोज के प्रयास है, वर्णनातीत परमशक्ति को शब्दों में बाँधने की कोशिशें हैं और उस निराकार, निर्विकार, असीम, अपार को अन्तर्दृष्टि से समझने और परिभाषित करने की अदम्य आकांक्षा के लेखबद्ध विवरण हैं।

उपनिषद् वास्तव में, एक आध्यात्मिक मान सरोवर है जिसमें डूबने वाले व्यक्ति को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्योतिर्मठ के शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती (1868-1953) ने उपनिषदों के संदर्भ में लिखा- "उपनिषद्देव का ज्ञानकाण्ड हैं। यह प्रदीप्त वह ज्ञान-दीपक जो सृष्टि के आदि से प्रकाश देता चला आ रहा है और प्रलय पर्यन्त प्रकाशित रहेगा। इसके प्रकाश में अमरत्व है जिसने सनातन धर्म के मूल का सिंचन किया है।" प्राच्य और पाश्चात्य सभी विद्वान् इसके विपुल ज्ञान भण्डार से अपनी ज्ञान-पिपासा शांत करते रहे है। मध्यकालीन भारत में शाहजहाँ का पुत्र 'दाराशिकोह' उपनिषदों से इतना प्रभावित हुआ कि उसने स्वयं पचास के लगभग प्रमुख उपनिषदों का फारसी में अनुवाद कर डाला। वहीं 'बर्नियर' उपनिषदों के फारसी अनुवाद की कुछ पाण्डुलिपियाँ फ्रांस ले गया था।

आधुनिक युग में प्रसिद्ध जर्मन विद्वान 'शोपेन हावर' ने इसे मानव मस्तिष्क की सबसे ऊँची रचना मानकर अपने गुरु त्रयी में काण्ट एवं प्लेटो के साथ स्थान दिया। उनके अनुसार, "उपनिषदों के प्रत्येक वाक्य से बहुत गहरी, मूलभूत व उत्कृष्ट विचारधारा उत्पन्न होती है तथा जो पूरी तरह एक पवित्र व गंभीर भाव से ओत-प्रोत हैं। सारे संसार में उपनिषदों से बढ़कर लाभकारी व जीवन को ऊँचा उठाने वाला कोई दूसरा अध्ययन का विषय नहीं है।" उसने उपनिषदों को अपने जीवन में दु:खों से मुक्ति का उपाय माना। मैक्समूलर, डासन, जी० आर्क आदि ने इसे सत्य को जानने का सर्वश्रेष्ठ साधन माना। स्वामी विवेकानन्द ने उपनिषदों को शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक स्वाधीनता का मूलमंत्र माना है।

उपनिषद् में ऋषि ने मनुष्य तथा समाज की आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ भौतिक विज्ञान की उन्नति का भी संदेश दिया है। इस विषय में अपने चिंतन को प्रस्तुत करते हुए वह कहते हैं कि, "अविद्या अर्थात् भौतिक विज्ञान से जीवन की कठिनाइयों को पार कर, अध्यात्म विज्ञान के माध्यम से मनुष्य परम आनन्द को प्राप्त करता है। 'कठोपनिषद्' के अमरवाक्य 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' को अपने जीवन में आत्मसात् कर स्वामी विवेकानन्द ने सम्पूर्ण भारत वर्ष की सोई हुई युवा शक्ति में आध्यात्मिक स्वावलंबन एवं स्वाभिमान की भावना को जाग्रत किया था।

उपनिषद्-साहित्य वह आध्यात्मिक दिनकर है, जिससे अनेक किरणें निकलकर इस पवन-दर्शन-भूमि को समुज्ज्वलित करती है तथा मानवमात्र के ऐहिक-कल्याण और आयुष्मिक मंगल का निष्पादन करती है। मानव जाति के आध्यात्मिक इतिहास में उपनिषद्-साहित्य उस विस्तृत अध्याय की भाँति है, जो युग-युगान्तर से भारतीय धर्म, दर्शन और जीवन को निरन्तर अनुशासित करता आ रहा है। उपनिषद् अपनी प्राचीनता गम्भीरता, दार्शनिकता एवं ब्रह्मज्ञान के प्रतिपादन की दृष्टि से नितान्त प्रौढ़, प्रामाणिक तथा प्रसिद्ध है। उपनिषदों का परमलक्ष्य प्राणिमात्र को आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक-त्रिविध दु:खों से मुक्ति दिलाना है, जो यथार्थ ज्ञान से ही सम्भव है। यह यथार्थज्ञान ही मोक्ष है। उदाहरणस्वरूप राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने यरवदा जेल में 'ईशोपनिषद्' का अध्ययन करने और उसे कण्ठाग्र करने के बाद उसके विषय में कहा था कि, "अब मैं अन्तिम रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यदि सारे उपनिषद् तथा हमारे अन्य सारे धर्मग्रन्थ अचानक नष्ट हो जाय और ईशोपनिषद् का केवल पहला श्लोक हिन्दुओं की स्मृति में कायम रहे तो भी हिन्दू धर्म सदा जीवित रहेगा।" ईशोपनिषद् का प्रथम श्लोक है-

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यांजगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृथ: कस्य स्विद् धनम्।।"

अर्थात् इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जो भी ये जगत् हैं, सब ईश (ईश्वर) द्वारा ही व्याप्त है। उसके द्वारा त्यागरूप जो भी तुम्हारे लिए प्रदान किया गया है उसे अनासक्त रूप से भोगो। किसी के भी धन की इच्छा मत करो।

आज विश्व मानव इतिहास के सबसे संकटपूर्ण दौर से गुजर रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हुई प्रगति ने एक ऐसे बौद्धिक आन्दोलन को जन्म दिया है जो बिना सोचे-समझे प्राचीन जीवन मूल्यों व ज्ञान परम्परा

को अनावश्यक ही चुनौती दे रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने मनुष्य की अन्तरात्मा को मार दिया है और उसे भिन्न-भिन्न प्रलोभनों का दास बना दिया है। उसके पास आत्मोन्नति के विषय में सोचने का समय ही नहीं है। वह धन, शक्ति, स्वामित्व व अधिकार के लिए पागल हो रहा है। विश्व के देशों के प्रशासकों की कथनी व करनी में कोई ताल-मेल नहीं है। प्राचीन काल के इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, विज्ञान तथा शनैः-शनैः लुप्त हो रहे हैं। विश्व प्रदूषण, महामारी, प्राकृतिक प्रकोप, आतंकवाद और ऐसी हजारों समस्याओं से जूझ रहा है। सर्वत्र एक निराशा व्याप्त है और अनीश्वरवादियों की संख्या में वृद्धि हो रही है। परमाणफ शक्ति ने विश्व को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है। ऐसी विशम परिस्थिति में विश्व शान्ति के लिए उपनिषदों में सन्निहित ज्ञान के प्रार करने वाले विचारकों, प्रचारकों व उद्धारकों की आवश्यकता है जो संसार को इस विभीशिका से बचा सकें।

संक्षेप में, उपनिषद् भारतीय दर्शन के वे मूलस्रोत हैं, जिसके बिना भारतीय सांस्कृतिक परम्परा व भारतीय मनीषा की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। उपनिषद् साहित्य ने हमारे समक्ष सत्य का वह सिद्धान्त रखा है जिसकी तरफ कोई ऊँगली भी नहीं उठा सकता है। भारतीय संस्कृति में उपनिषदों का स्थान अक्षुण्ण है। उपनिषदों में सन्निहित ज्ञान के कारण ही भारत को समस्त विश्व ने 'जगत् गुरु' स्वीकार किया था। 'वृह्दारण्यक उपनिषद्' का मानवता के लिए दिया गया अद्वितीय संदेश आधुनिक युग में अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है-

"ऊँ असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माखमृत गमय। ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।" अर्थात् (हमें) असत्य से सत्य की ओर ले चलो, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चला, मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो। सर्वत्र शान्ति हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमती मोती देवी, ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्
2. एफ० मैक्समूलर, उपनिषद्स/Upnishads
3. गीता प्रेस, गोरखुर, कठोपनिषद्
4. ए०एस० गेडेन, The Philosophy of Upnishads
5. मंजुला पाठक, आध्यात्मिक चिन्तन
6. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, The Principal of Upnishads
7. रामानुज प्रसाद, Know the Upnishad
8. बलवीर सिंह, The Philosophy of Upnishads
9. रानाडे, रामचन्द्र दत्तात्रेय, उपनिषद् दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण

10. शुब्रा शर्मा, Life in the Upnishad

11. डायसन पॉल, The Philosophy of Upnishad

12. एम० हिरियण्ण, Outline of Indian Philosophy

दर्शन एवं शिक्षा का सम्बन्ध

डॉ० रवेन्द्र राजपूत,
एसोसिऐट प्रोफेसर,
शिक्षक शिक्षा विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

दर्शन का अर्थ - जगत के अन्यतम सत्यों के विषय में क्रमिक और व्यवस्थित रूप से की गई खोज (जाँच) ही दर्शन है। दर्शन का सीधा सम्बन्ध विचार करने, चिन्तन करने तथा कुछ-कुछ मानसिक साधना से भी है।

1. दर्शन शब्द संस्कृत के "दृश धातु से बना है जिसका अर्थ होता है 'देखना'। इस शब्द की व्याख्या है "दृश्यते अनेन इति दर्शनम्" अर्थात् जिससे देखा जाय या सत्य के दर्शन किये जायं वही दर्शन है।

2. दर्शन के लिए अंग्रेजी शब्द Philosophy प्रयुक्त होता है जो लैटिन के दो शब्दों Philos+Sophia से मिलकर बना है। 'फिलॉस' का अर्थ होता है 'अनुराग' (Love of) तथा 'सोफिया' का अर्थ होता है ज्ञान (Wisdom) अत: पूरे शब्द फिलॉसफी का अर्थ हुआ 'ज्ञान के प्रति अनुराग "Love of Wisdom"

3. एक अन्य अर्थ में दर्शन का अर्थ होता है जिसके द्वारा देखा जाय या जिसके द्वारा सत्य या असत्य का निरूपण किया जाय। सामान्यतया जीवन के प्रति जो नजरिया होता है उसे ही दर्शन कहा जाता है। दर्शन यथार्थ के स्वरूप का अध्ययन है।

दर्शन का विशिष्ट अर्थ- विशिष्ट रूप में दर्शन का अर्थ अमूर्त चिन्तन के उस प्रयास से है जिसके द्वारा आत्मा, ईश्वर, प्रकृति तथा सम्पूर्ण जीवन का रहस्य उद्घाटित किया जाता है। जैसे- स्वर्ग क्या है? आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? जीवन क्या है? क्या मृत्यु के उपरान्त मनुष्य दूसरा जन्म लेता है? प्रकृति क्या है? ब्रह्माण्ड की रचना किसने की?

हैण्डरसन कहते हैं - "दर्शन ऐसी जटिल समस्याओं का कठिन, अनुशासित तथा सावधानी के साथ किया हुआ विश्लेषण है जिसका मानव ने कभी अनुभव किया हो।"

दर्शन व फिलॉसफी में अन्तर - विद्वानों का मत है कि दर्शन फिलॉसफी शब्द का पयार्यवाची होते हुए भी दोनों में काफी अन्तर है। दर्शन में विद्या या ज्ञान केवल अनुराग नहीं है क्योंकि अनुराग तो केवल भावात्मक प्रत्यय है। हाँ यह प्रेम साधारण सा प्रेम न होकर निरन्तर चलने वाला प्रेम है। एक दार्शनिक का ज्ञान जीवन पर्यन्त बना रहता है। फिलासफी में वह अर्थ गौरव नहीं जो दर्शन में है दर्शन एक दिव्य दृष्टि है जिससे मानव गहन रूप से देखा करता है। इससे पर वस्तुओं में गहराई के साथ विवेकशील होकर देखता है दर्शन की दृष्टि

फिलॉसफी से कहीं अधिक व्यापक है। दर्शन का कुछ न कुछ लक्ष्य होता है परन्तु Philosophy का कोई लक्ष्य नहीं होता। दर्शन में मानसिक प्रक्रिया के तीनों पक्ष – ज्ञान, कर्म, और भाव निहित है। सत्य का साक्षात् दर्शन करना ही दर्शन है। जब सत्य का ज्ञान प्राप्त करेंगे तो सत्य के अन्वेषण के प्रयत्न भी होंगे। इस प्रकार सत्य के दर्शन के लिए ज्ञान और क्रिया साथ–साथ चलेंगे। अब हम प्रयत्न करके सत्य का साक्षात दर्शन करेंगे तो सत्य और ज्ञान से भी प्रेम अवश्य होगा। अतः विद्यानुराग उपेक्षित न होगाा। भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण पाश्चात्य दार्शनिक दृष्टिकोण से भिन्न है। फिलॉसफी के शाब्दिक अर्थ से यह स्पष्ट होता है कि फिलॉसफर आजीवन सब कहीं ज्ञान की खोज में लगा रहता है। वह इस बात की चिन्ता नहीं करता कि उसके प्रश्नों का हल निकलेगा भी या नहीं और अपनी खोज बराबर जारी रखता है क्योंकि उसका लक्ष्य ज्ञान का प्रेम है स्वामित्व नहीं। मंजिल पर पहुँचना ही एवं कुछ नहीं है, सफर का अपना भी महत्व है और लोग सफर का मजा लेना जानते है वे इस बात की चिन्ता नहीं करते कि मंजिल तक पहुँचेगें भी या नहीं और न ही मंजिल के नजर न आने से बैचेन हो उठते हैं। आचार्य बल्देव कहते है– "पश्चिमी दार्शनिक उस पतवार विहीन नाविक के समान है जो अपनी नौका को मंजिल पर पहुँचने से पूर्व ही बीच में डुबो देते हैं।"

दर्शन की उत्पत्ति – 1. प्लेटो मानता है कि "दर्शन की उत्पत्ति आश्चर्य, कौतूहल व जिज्ञासा से हुई।"

2. कुछ अन्य विद्वान मानते हैं कि व्यक्ति के मन में किसी व्यक्ति के प्रति सन्देह उत्पन्न हो जाते हैं जिसके निवारण के लिए वह कुछ प्रमाण एकत्र करता है इससे दर्शन की उत्पत्ति हुई। इसी के साथ–साथ कुछ विद्वान दर्शन की उत्पत्ति मनुष्य की जिज्ञासा या सन्देह भावना से न मानकर मानसिक अशान्ति से मानते हैं।

दर्शन की परिभाषायें–

1. हॉकिन्स – उस परम विश्वास (ईश्वर) के प्रति परीक्षण ही दर्शन है।"

   "Philosophy is an examination of Beliebs about Belief (God)"

2. कॉन्ट – दर्शन बोध क्रिया का विज्ञान एवं उसकी आलोचना है।"

3. प्लेटो – "पदार्थों के यथार्थस्वरूप का ज्ञान ही दर्शन है।"

4. डीवी – "दर्शन विचार करने का प्रयास है।"

5. अरस्तू – "दर्शन ऐसा विज्ञान है जो परम तत्व के यथार्थ स्वरूप की जाँच करता है।

6. वर्क – "दर्शन कलाओं की रानी और स्वर्ग की पुत्री है।"

7. ब्रेडले – "दृश्य जगत की अपेक्षा यथार्थ ज्ञान का प्रयत्न करना दर्शन है।"

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन द्वारा दी गई परिभाषा संक्षिप्त किन्तु अधिक व्यापक एवं उपयुक्त है इसमें एकांगीपन का भी दोष नहीं है।

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार – "वास्तविकता के स्वरूप का तार्किक विवेचन ही दर्शन है।"

दर्शन के भाग या अध्ययन क्षेत्र – किसी भी दर्शन (Philosophy) को पूरा होने के लिए उसमें 4 भाग होने चाहिए – (i) तत्व मीमांसा (Meta - Physics) (ii) ज्ञानशास्त्र (Epestemology) (iii) तर्कशास्त्र (Logicology) (iv) मूल्यशास्त्र (Axiology)

(i) **तत्व मीमांसा** – इसे तत्व ज्ञान भी कहते हैं, इसके अन्तर्गत यथार्थ स्वरूप का अध्ययन किया जाता है। इसके पाँच भाग हैं– (i) ब्रह्माण्ड विज्ञान (ii) सृष्टि विज्ञान (iii) सत्ता विज्ञान (iv) कर्मशास्त्र (ईश्वर) विज्ञान (v) ईश्वर सत्ताशास्त्र

(ii) **ज्ञानशास्त्र** – यह दर्शन शास्त्र का महत्वपूर्ण विभाग है जिसके अन्त विज्ञान का विवेचन किया जाता है एवं ज्ञान के स्रोत, ज्ञान के प्रकार, ज्ञान की उपादेयता, ज्ञान के सिद्धान्त आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है।

(iii) **तर्कशास्त्र** – इसमें आगमन – निगमन तर्क विधियों का विश्लेषण किया जाता है इसमें ज्ञान की सृष्टि एवं सत्ता की सृष्टि के लिए प्रमाणों का अध्ययन किया जाता है।

(iv) **मूल्यशास्त्र** – इसमें विभिन्न प्रकार के सामाजिक राजनैतिक, नैतिक एवं तर्क विषयक सिद्धान्तों का अध्ययन किया जाता है। मूल्य पसन्दगियां है जो किसी वस्तु की उपयोगिता पर निर्भर करती है। मूल्य शास्त्र सभी दर्शनों का निचोड़ होता है।

इन्हीं चार भागों के पूर्ण होने पर ही कोई पूरा दर्शन कहलाने का अधिकारी होता है। अन्यथा उसे विचारधारा कहेंगे। जिसमें चारों बातें नहीं होती है उसे दर्शन नहीं कहेंगे।

दार्शनिक – 1. प्लेटो के अनुसार "जिसे हर प्रकार के ज्ञान में रूचि हो जो नवीन बातों को जानने का कौतूहल रखता है और कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता उसकों दार्शनिक कहेगें।"

2. अरस्तू के शब्दों में – जो सभी ज्ञानों के प्रति अनुराग रखता हो जो सदैव ज्ञान के प्रति अवधारणा रखता हो जो सदैव ज्ञान के प्रति समर्पित हो वही अनुरागी है।"

सत्य – सनातन, अपरिवर्तनीय, सतत् (सदा चलने वाला) काल निरपेक्ष, स्थाई है ये काल से वाधित नहीं होता।

यथार्थ – यथार्थ नाशवान है, यह परिस्थिति पर आधारित है यह काल से बाधित, नाशवान, व परिवर्तित होता है।

तथ्य – यथार्थ के घटक तथ्य हैं जो वास्तविकता यथार्थ में है वही तथ्य में है। (Fact is the constibutes of truth)

दर्शन और शिक्षा का सम्बन्ध

दर्शन और शिक्षा का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। दर्शन से ही शिक्षा की उत्पत्ति होती है शिक्षा ही दर्शन का सिद्धान्त है। दर्शन ही शिक्षा है, शिक्षा का भाव (शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष) एवं उसकी बारीकियों को दार्शनिक ही समझ सकता है। दर्शन जीवन की एक विचार धारा है और शिक्षा विचारधारा का क्रियात्मक रूप। दोनों ही जीवन के दो पक्ष हैं। एक व्यक्ति के दो नेत्र हैं एक रथ के दो पहिये हैं। दर्शन शिक्षा के बिना अन्धा है और शिक्षा दर्शन के बिना लंगड़ी।" शिक्षा दर्शन की सहगामिनी है। शिक्षा और दर्शन का आपस में घनिष्ट में सम्बन्ध है और एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ता है। रॉस ने भी कहा है – "दर्शन और शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू है।"

स्पेन्सर के अनुसार – "सच्ची शिक्षा सच्चे दार्शनिक द्वारा ही दी जा सकती है।

जेन्टाइल कहते हैं– "शिक्षा की क्रिया दर्शन के बिना अधूरी है।"

फिक्टे का विचार है कि "शिक्षा की कला दर्शन के बिना स्पष्ट तथा पूर्ण नहीं हो सकेगी।" डीवी "दर्शन शिक्षा का सिद्धान्त है।"

दर्शन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा के घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। इसने शिक्षा के विभिन्न अंगों – पाठ्यक्रम, पाठ्यविधि, पाठ्य पुस्तकों आदि को यथेष्ट, प्रभावित किया है। इसीलिए रॉस ने कहा है– "मतलब यह हुआ कि यदि कोई विश्वास सचमुच प्रबल है तो वह निश्चित रूप से शिक्षा देने के प्रयत्न का रूप ले लेता है।" अन्तर इतना ही है कि दर्शन विचारात्मक है और शिक्षा क्रियात्मक।

कैसे शिक्षा आदि ? या उसका उत्थान या पतन कैसे हुआ? शिक्षा का अर्थ व उद्देश्य क्या है? उद्देश्य व अर्थ की उत्पत्ति यथार्थ ही करता है। यथार्थ ही वह केन्द्र बिन्दु है जिसमें होकर शिक्षा परिभ्रमण करती है। उदाहरण के लिए – प्रकृतिवाद में वास्तविकता (यथार्थ) ही प्रकृति है। दृश्यमान जगत ही सत्य है। प्रकृतिवादी शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को ज्ञान कराना है। मानव को विरासत में मिली शक्तियों का सामंजस्य करना है क्योंकि यथार्थ विहीन शिक्षा का उद्देश्य Govern (निश्चित) होता है। जैसा पाठ्यक्रम होगा, जैसा अनुशासन होगा, वैसे ही शिक्षक व विद्यार्थी होगें। दर्शन के अभाव में शिक्षा चल नहीं सकती। यदि चलेगी भी तो लम्बी चलती रहेगी बिना दिशा के ही क्योंकि उसका कोई लक्ष्य ही नहीं है।

शिक्षा और दर्शन के घनिष्ट सम्बन्ध को निम्नांकित ढंग से समझा जा सकता हैं:–

1. **दर्शन जीवन का सैद्धान्तिक (विचारात्मक) पहलू है और शिक्षा व्यावहारिक (क्रियात्मक)** – दर्शन विचार मूलक है। बटलर विचार था कि दर्शन में सूक्ष्म चिन्तन की विशेषता होती है। दर्शन विचारों का गुम्फन है और इससे विचारों को शिक्षा व्यवहार में परिणित करती है। दर्शन क्यों? से सम्बन्धित है इस क्यों? से शिक्षा का रास्ता साफ होता है। अर्थात् दर्शन शिक्षा के क्रियाशीलन का आधार होता है। भाव और क्रिया एक ही पहलू के दो रूप हैं इसीलिए रॉस ने इन्हें "एक ही सिक्के के वो पहलू बताया।" एडम्स ने तो इतना

तक कहा है कि "शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक पक्ष है, यह दार्शनिक विश्वासों (विचारों) का क्रियात्मक पक्ष है।"

इस प्रकार दर्शन सिद्धान्त व विचार है तथा शिक्षा क्रिया जो दार्शनिक विचारों को क्रिया रूप में परिणति करती है। बिना सिद्धान्त के शिक्षा लंगड़ी है और बिना क्रिया के दर्शन लकवे का रोगी। शिक्षा सिद्धान्तों को ढोने वाली गाड़ी है। विचारों की सामग्री जितनी तेज होगी शिक्षा की गाड़ी उतनी ही तेज रफ्तार से अपने गंतव्य पर पहुँचेगी।

2. **दर्शन जीवन का लक्ष्य तैयार करता है, शिक्षा लक्ष्य की पूर्ति का साधन**- व्यक्ति शिक्षा क्यों ग्रहण करता है इसलिए नहीं कि उसके द्वारा वह अपने जीवन के प्रमुख लक्ष्यों को प्राप्त करने में समर्थ होता है। दर्शन जीवन के लक्ष्य को ही निर्धारित करके क्या करेगा जब व्यक्ति को शिक्षा उस योग्य वहीं बनायेगी। शिक्षा के द्वारा ही लोगों के शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है।

3. **शिक्षा दर्शन की रीढ़ है** - यदि दर्शन शिक्षा की अमूल्य सहायता करता है तो शिक्षा दर्शन को हाथ पाँव और आधार देती है। बालक अ, आ, ई, गुणा, गिनती पढ़ते-पढ़ते धीरे-धीरे विचार मान बनता है और एक दिन ऐसा भी आता है जब वह दार्शनिक बन बैठता है। इस प्रकार शिक्षा ही वह आधार है जिस पर दर्शन का महत्व तैयार होता है।

4. **प्रत्येक प्रकार की शिक्षा का एक दार्शनिक आधार है**- शिक्षा खोज की प्रक्रिया है, शिक्षा प्रयोग है और शिक्षालय प्रयोगशाला। इसीलिए फिक्टे कहा करता था- "शिक्षा एक खोज है जो निरन्तर सक्रिय रहकर ईश्वरीय इच्छाओं की खोज किया करती है।"

रूसो भी यह अंगीकार किया करता था कि मानव का वास्तविक अध्ययन शिक्षा करती है। शिक्षा की खोज के सन्दर्भ में हरवर्ट ने भी इस प्रकार प्रकाश डाला है- "जब तक दार्शनिक प्रश्न उलझे रहते हैं तब तक शिक्षा को चैन नहीं रहता।" वह मनोरंजन या विश्राम नहीं करती अवकाश काल नहीं मानती, सदा सक्रिय रहती है। परन्तु शिक्षा की सक्रियता और खोज का एक आधार हुआ करता है और वह आधार दार्शनिक आधार है। शिक्षा की प्रत्येक विद्या का चाहे वह कला हो, विज्ञान हो या साहित्य उसका एक दार्शनिक आधार होता है। पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकें शिक्षण विधियाँ आदि सभी का एक दार्शनिक आधार होता है। और उसी आधार को लेकर शिक्षा क्रियाशील रहती है।

5. **मानव जीवन के दोनों अभिन्न अंग है**- शिक्षा मानव जीवन की क्रिया है। उसे ज्ञान प्राप्त करने की कला है और मानव जीवन में यह सदैव चलती रहती हैं, शिक्षा आजीवन चलने वाली क्रिया है। दर्शन भी मानव जीवन का ज्ञानकोष है, लक्ष्य है, पथप्रदर्शक है। मानव जीवन के लिए शिक्षा और दर्शन दोनों मूल्यों एवं लक्ष्यों को निर्धारित करते है। जिसके आधार पर मानव जीवन का ताना बुना खड़ा है। दर्शन जीवन के सत्यों की खोज करता है और शिक्षा इसे व्यवहार रूप में परिणित करके जीवन में प्रयोग करती है और फिर जनजीवन उस सत्य की राह पर चल पड़ता है। दर्शन जल है और शिक्षा प्रवाह और मानव जीवन प्यास है, जल को प्रवाह के माध्यम से अपने समीप पाकर जीवन अपनी प्यास बुझाता है। इस प्रकार मानव जीवन के लिए शिक्षा एवं दर्शन दोनों ही अभिन्न रूप से सहायक एवं लाभदायक हैं।

6. **शिक्षा से ही दर्शन का जन्म** - वैसे तो एडम्स ने कहा है कि शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक पहलू है परन्तु प्रयोगवादियों ने कहा कि दर्शन शिक्षा का गत्यात्मक पहलू हैं क्योंकि पहले बालक विद्यालय में सीखता है, सीखकर विचारवान बनता है और विचारवान व्यक्तियों से दर्शन बनता है। जन्म से ही कोई सुकरात या प्लेटो नहीं पैदा होता, पढ़ लिखकर ही व्यक्ति दार्शनिक बनता है।

7. **दर्शन के अनुसार शिक्षा बदलती है**- दार्शनिक विचारों में परिवर्तन के कारण भी शिक्षा बदलती रहती है। उदाहरण के लिए - हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था वैदिक काल में कुछ और प्रकार की थी, ब्राईण काल में कुछ और प्रकार की हुई बौद्ध काल में उसकी रूप रेखा कुछ और प्रकार की हो गई। गुलामी के समय शिक्षा की रूपरेखा कुछ और थी। अत: एडम्स ने ठीक ही कहा है कि - "शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक पक्ष है।"

शिक्षाविद् दार्शनिक विचारधाराओं रूपी आभूषण के जौहरी होते हैं वे दार्शनिक विचारधाराओं को परख कर उस पर निर्णय देते हैं और उस निर्णय को लेकर शिक्षा क्रियाशील हो जाती है। हाँ यह बात अलग है कि शिक्षा का गत्यात्मक पक्ष कभी तीव्र होता है और कभी मंद। मनुष्य पहले क, ख, ग, सीखता है, निगती, गुणा, भाग सीखता, अक्षरों की मिलावट सीखता है, तब उसमें विचार आते हैं और विचार मंथन के पश्चात् उसमें सिद्धांत व दर्शन का जन्म होता है। गर्भ प्लेटो गर्भ से प्लेटो बनकर आया और न रूसो ही रूसो बनकर पैदा हुआ। इन्होंने पहले शिक्षा प्राप्त की और इससे उनका दर्शन गतिशील हुआ। जहाँ तक ज्ञान व विचार का प्रश्न है, वह तो क्रिया के उपरान्त ही आता है।

बालक → विद्यालय → क्रिया → अनुभव → ज्ञान → दर्शन

8. **दोनों एक दूसरे के गतिशील स्वरूप हैं**- शिक्षा ही वह नींव है जिस पर दर्शन की विशालकाय इमारत खड़ी है। परन्तु दोनों एक दूसरे के अस्तित्व के लिए अनिवार्य हैं। दर्शन शिक्षा के बिना अन्धा और शिक्षा दर्शन के बिना लंगड़ी है। इसीलिए रॉस ने दोनों को सिक्के का एक पहलू माना है। हम इन्हें रथ के पहियों के रूप में मान सकते हैं दोनों साथ-साथ चलते हैं। दोनों एक दूसरे के गीतशील स्वरूप एवं पक्ष हैं। शिक्षा दर्शन की चलती हुई भुजा है। यदि शिक्षा गतिशील नहीं होती तो गीता का दर्शन आज हमें उपलब्ध नहीं होता और दर्शन गतिशील नहीं होता तो हममें नये - नये विचार नहीं आते। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के गतिशील स्वरूप हैं।

9. **सभी दार्शनिक ही शिक्षाशास्त्री हुए हैं**- विश्व में जितने भी शिक्षाशास्त्री हुए हैं सब पहले दार्शनिक ही थे जिन दार्शनियों ने अपने सिद्धान्तों या दार्शनिक विचारों को व्यवहारिक रूप देना चाहा उसको शिक्षाशास्त्री या शिक्षक बनना पड़ा। दार्शनिक द्वारा किया गया समस्त मानसिक श्रम शिक्षा के द्वारा ही साकार होता है। प्रकृतिवादी शिक्षा का प्रणेता रूसो दार्शनिक भी था। प्रयोगवादी शिक्षा का अविरल स्रोत डीवी एक महान दार्शनिक था, आदर्शवादी शिक्षा प्लेटो से प्रभावित है और बुनियादी शिक्षा गांधी से। रॉस ने लिखा है- "अगर कोई व्यक्ति सचमुच दार्शनिक है तो वह स्वभावत: शिक्षाशास्त्री बन जाता है।"

10. **शिक्षा ही व्यक्ति के जीवन दर्शन को प्रगतिशील बनाती है**- वह आसानी से कहा जा सकता है कि शिक्षा अपने लक्ष्य या अन्य अंगों का निर्माण जीवन दर्शन के आधार पर करती है। पर इससे यह नहीं समझना

चाहिए कि शिक्षा सदा जीवन का अनुगमन करती है। यदि शिक्षा सदैव समाज का अनुगमन नहीं करेगी तो समाज के मार्ग दर्शन का कार्य कौन करेगा? शिक्षा केवल जीवन दर्शन का निर्माण ही नहीं करती बल्कि जीवन दर्शन को प्रगतिशील भी बनाती है।

11. **दर्शन शिक्षक को भी प्रभावित करता है**– दर्शन शिक्षक का निर्माण करता है इसमें ज्ञान विज्ञान की भावना करता है वह उसकी जीवन पद्धति, शिक्षण विधि, विचार शक्ति एवं जीवन राह को भी प्रभावित करता है और शिक्षक ही शिक्षा देता है उस पर जैसे दर्शन का प्रभाव है वह उसी प्रकार की शिक्षा देता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा एवं दर्शन का घनिष्ट सम्बन्ध है। अत: शिक्षा एवं दर्शन दोनों को एक दूसरे से अलग रखकर नहीं बल्कि साथ-रखकर देखा जाना चाहिए एक दूसरे के कार्य कारण, दोनों एक दूसरे के अस्तित्व के लिए जिम्मेदार हैं। इसीलिए रॉस ने कहा है कि – "दर्शन एवं शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू है।'

शिक्षा के लिए दर्शन की आवश्यकता – शिक्षा और दर्शन में घनिष्ठ सम्बन्ध होने से यह स्पष्ट है कि दर्शन शिक्षा का आधार है और हम बिना दर्शन की सहायता के उचित शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकते हैं। शिक्षा दर्शन का अध्ययन आवश्यक है चाहे वो शिक्षक हो या शिक्षा शास्त्री या शिक्षा नियोजक शिक्षा के लिए दर्शन की आवश्यकता के निम्नवत कारण हैं–

1. **जीवन लक्ष्य निर्धारण हेतु**– दर्शन ही मानव जीवन के प्रति विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करता है और उसमें व्यक्ति अपने अनुभव तथा अध्ययन के आधार पर अपने लिए निश्चित दर्शन का चुनाव करता है जो उसके लक्ष्य निर्धारण के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार दर्शन जीवन के लक्ष्य तथा जीवन के मूल्य निर्धारित करता है।

2. **तत्व ज्ञान, आत्मा, ईश्वर एवं जगत सम्बन्धी ज्ञान के लिए** – जगत क्या है? ईश्वर क्या है? मनुष्य क्या है? इनके बीच पारस्परिक सम्बन्ध क्या है? ये दर्शनशास्त्र के मूल प्रश्न हैं जिनके उत्तर शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण हैं। हमारे जीवन मूल्य भी इन प्रश्नों के उत्तर से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। इनके उत्तर प्राप्त करने के लिए शिक्षा दर्शन की आवश्यकता पड़ती है।

3. **पाठ्यक्रम सम्बन्धी ज्ञान के लिए** – ज्ञान मीमांसा दर्शन का महत्वपूर्ण पक्ष है। दार्शनिक इन प्रश्नों को गहराई में जाकर खोज करता है। ज्ञान की वास्तविक पद्धति क्या है? ज्ञान प्राप्ति के क्या साधन हैं? विद्यालय पाठ्यक्रम निर्माण करते समय ज्ञान मीमांसा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करता है।

4. **शिक्षण विधियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए** – प्रत्येक दार्शनिक शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त शिक्षण पद्धतियों का निर्माण और उसके प्रयोग की रीति तथा महत्व को स्पष्ट करता है। शिक्षा विधियां ज्ञान मीमांसा तथा नीतिशास्त्र से प्रभावित होती है।

5. **अनुशासन स्थापना तथा विद्यालय संगठन हेतु** – नीतिशास्त्र एवं मूल्य मीमांसा अनुशासन सम्बन्धी धारणाओं को प्रभावित करते हैं। विद्यालय संगठन नियम मानवीय सम्बन्ध, छात्र के कर्तव्य एवं व्यवहार अनुशासन की विधियाँ इत्यादि सभी नीतिशास्त्र तथा मूल्य शास्त्र से सम्बद्ध है।

6. **शिक्षा की समस्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए** - शिक्षा के क्षेत्र में नये-नये प्रश्न तथा समस्यायें उत्पन्न होती रहती है। रॉस के अनुसार - "शिक्षा सम्बन्धी सभी प्रश्न अन्ततोगत्वा दर्शन के ही प्रश्न है। दार्शनिक और विचारक शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों व समस्याओं का अध्ययन करते हैं तथा उसका समाधान ढूढ़ते हैं।"

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रसाद केशव - शिक्षा के आधार
2. ओड०एल०के० - शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठ भूमि
3. लाल रमन बिहारी - शिक्षा के दार्शनिक और समाज शास्त्रीय सिद्धान्त
4. सक्सेना सरोज - शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार
5. सक्सेना एन०आर०एस० - शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में निहित संवेदना का भाव

नम्रता सिंह
शोध छात्रा,
डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या
डॉ. आलोक कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर,
का.सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या

मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य उनके चिंतन से उपजा है। वे जो कुछ भी लिखती है पूर्ण तन्मयता एवं तल्लीनता से, अपने पात्रों के साथ वे स्वयं चलती है। मैत्रेयी पुष्पा अपने उपन्यासों में वैसे तो समाज के विभिन्न अनुशासनों और विषयों का विश्लेषण करती है, मगर जिस मुद्दे पर उनकी दृष्टि केन्द्रित होती है वह है स्त्री। नारी मन के विशिष्ट भावों का अत्यंत सूक्ष्म मार्मिक व सांगोपांग चित्रण करने में उनके उपन्यास पूर्ण सफल हुए हैं। वर्षों से उपेक्षित, युगों से तिरस्कृत, शोषित नारी नृत्य जीवन के आशा जागृत करने में सक्षम है। वह भोग्या के निम्न स्तर से उच्च स्तर पर आसीन हो जाती है। उसके यथार्थ से एक आत्मीय भाव जुड़ जाता है। मैत्रेयी पुष्पा की अनुभूति कल्पना विचारणा के साथ व्यक्तित्व और जीवन दर्शन का प्रतिबिम्ब उनके लेखन में दिखाई देता है। वे साहित्य लेखन में शील और अश्लील के भेद को स्वीकार नहीं करती उनका कहना है– "अपने लेखन से मेरी सबसे पहली अपेक्षा रहती है, जीवन के पक्ष में खड़े होना, जीवन जो गतिशीलता के साथ रहे। अश्लीलता की बनी–बनाई लकीरें जब न तब हमें आगे जाने से रोकती हैं। विशेष तौर पर स्त्रियों के लिए तो बड़ी बाधा पैदा करती है, क्योंकि अपने लिए कोई फैसला लेने से उसे अपनी गलती लगता है। अपराध–बोध जगाता है और यहीं से उसका जीवन पराधीनता के हवाले हो जाता है।"[1] "लेखन और ईमानदारी एक दूसरे को सार्थकता देते हैं। लेखन यदि ईमानदारी के साथ हो तो मनुष्यों के लिए मिशाल बनता है। माना जाता है कि रचनाकार संवेदनशील होने के साथ कल्पनाशील भी होता है। मैं हवाई बातों को कल्पनाशीलता की संज्ञा नहीं देती। जिस कल्पनाशीलता से तथ्य कथ्य में बदल जाते हैं। वहीं जीवन के धरातल को सर्जना से हरा–भरा बनाती है।"[2]

मैत्रेयी पुष्पा का लेखन उनके व्यक्तित्व की सम्पूर्ण क्षमता, दक्षता और वैचारिक परिपक्वता को व्यक्त करता है। उनके अनुभवों का नयापन शिल्प व कथ्य दोनों को नूतन बनाता है। इनके कथा–सूत्र, पात्रों में एवं मानव–जीवन में नूतनता का संचार करते हैं मानव को निरंतर गतिशील रहने की प्रेरणा देते हैं। उसे परंपरा जुड़ना, कुंठा से मुक्त रखने की प्रवृत्ति को जन्म देते हैं। उनके उपन्यासों में जो प्रश्न उठाये जाते है, वे अत्यन्त आधुनिकता होते है। महानगरीय जीवन को प्रस्तुत करने वाली लेखिकाओं में भी ऐसे विद्रोही मगर तार्किक प्रश्नों के टकराने का साहस कम होता है। मैत्रेयी पुष्पा के स्त्री पात्रों पैनी प्रश्न आतुरता और संघर्षशीलता है।

सच तो यह है कि गाँव उनके यहाँ महज पृष्ठभूमि है। परिवेश से सघन जुड़ाव और गहरे अभिज्ञान के कारण ही वे अपने विचारों को ग्रामीण जीवन में संक्रमित करती है और जनमानस को नई चेतना देती है। महानगरों की चेतना और जागृत वहाँ अधिक बैलेंस पन में हैं।[3]

मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य स्त्री के संदर्भ में सदियों पुराने चलन से लेकर आज तक को चुनौती देता है। मैं मानकर चलती हूँ कि सामाजिक नैतिकाताएँ निश्चित ही लेखक की मर्यादाएँ नहीं हो सकती, जिसका वह नियम पूर्वक पालन कर पाये। लेखकीय स्वतंत्रता परम्पराबद्धता, नैतिकता पर समाज के सामने सवाल खड़े करती है, और हर काल में टकराहट की स्थिति बनती है। इसका मुख्य कारण है कि समय का बदलाव .... शायद यही कारण है कि तथ्यात्मक और कथ्यात्मक ईमानदारी से लवरेज लेखन स्त्रियों के लिए देशव्यापी आन्दोलन का रुप ले रहा है।

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा का गाढ़ी स्याही का लेखन हमेशा के लिए कटिबद्ध था और जिसमें स्त्रियों की आवाज मुखरित होती रही है।

इदन्नमम :

मैत्रेयी पुष्पा का तीसरा उपन्यास "इदन्नमम' बहुचर्चित बहुपठित और पुरस्कृत है। सन् 1994 में किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। जिसने मैत्रेयी पुष्पा को सुविख्यात लेखिका का दर्जा प्रदान किया। इदन्नमम बुंदेलखण्ड की ग्रामीण आंचलिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया एक सार्थक और स्फल उपन्यास है। इसमें विन्ध्य के सोनपुरा श्यामली तथा विरगवां गाँव की ग्रामीण जीवन से हमारा परिचय होता है। उपन्यास का समय आजादी के बाद का है। अब गाँवों में जहाँ पंचायतराज स्थापित हो गये है। वहाँ ग्राम प्रधान के नये रुप सामने आते है तथा ग्रामीण जीवन राजनीतिक षड़यंत्रों की चपेट में आने लगा। गाँव में अब तमन्चे चलने लगे हैं और रतन यादव और राजू यादव जैसे लोग पिस्तौल की नोंक पर अपने काम करवाते हैं। वकील जज सब उनके वश में है। तीन-तीन औरतों का अपहरण करने वाले रतन यादव का एकमात्र उद्देश्य उन औरतों की संपत्ति को हथियाना मात्र होता है। हतीन विधवाओं की जमीन चाप बैठा है रतन यादव, किसी को भगाकर तो किसी को बहला-ुसलाकर और उससे भी बढ़कर है उसका बेटा राजू यादव। वह पटा पिस्तौल की नोंक पर करता है सारे काम।"[4]

'इदन्नमम' मनुष्य की अर्न्तनिहित क्षमता में हमारा विश्वास कुछ और दृढ़ करता है, वह कुछ मायूस तो करता है, लेकिन हताश नहीं। वह बताता है कि सड़ी से सड़ी स्थिति में भी सम्भावना विहीन नहीं होती। जहाँ बड़े पैमाने पर संघर्ष प्रभाव नहीं दिखाई देता हो, वहाँ छोटे पैमाने पर भी कुछ किया जा सकता है। व्यक्ति इतिहास का सिर्फ शिकार नहीं होता यह इतिहास का निर्माता भी होता है।

"इदन्नमम" की कथावस्तु सिर्फ गाँव बनाम शहर की नहीं है। गाँव बनाम गाँव की भी है। गाँव की अपनी पीड़ाओं और उसके बदलते हुए मूल्य-बोध की कहानी राजेन्द्र यादव के शब्दों में नारी-सुलभ चित्रात्मकता के साथ कही गयी है। यही कारण है कि यह दृष्टि आधुनिक भी है। किशोरी मंदा के साथ कैलाश मास्टर

बलात्कार करता है, तो कुसुमा भाभी बहुत ही परिपक्वता के साथ समझाती है। जीवन के प्रति स्वस्थ-साहसी नजरिया प्रति उपेक्षिता कुसुमा को अपने देवर के साथ, ठोस प्रेम की अटूट गाँठ से बाँधता है और वह इस प्रेम की निशानी अपने बच्चे को डंके की चोट पर पालती है- गुपचुप गर्भपात का आश्रय नहीं लेती। दूसरी ओर मंदा की माँ विधवा होने के बाद भी जीने को उद्दाम ख्वाहिस से भरी हुई है। इसके लिए कौन से जोखिम नहीं उठाती, लेकिन जीवन के इस उत्सव में कभी लंबा उपवास भी जहाँ अंतहीन प्रतीत होने वाली प्रतीक्षा भी कम सुखद नहीं है, जीवन की निशानी है- यह सिद्ध होता है कि मंदा और कमरंद के शांत सम्मोहक प्रसंग से। स्पष्ट है कि मैत्रेयी पुष्पा के पास जीवन की कोई फार्मूलाबद्ध दृष्टि नहीं है। वस्तुतः प्रेम का ज्वार और प्रेम का संयम, दोनों एक ही जगत से आते है और अपने-अपने ढंग से जीवन को समृद्ध करते हैं। यह जगह है व्यक्तित्त्व की आंतरिक समृद्धि और दृढ़ता।

उपन्यास यह प्रभाव छोड़ने में आज भी पूरी तरह सफल रहा है कि आज भी पुरुष सत्ता का प्राधान्य है। वह सब कुछ करके मूछों पर ताव देता रहता है और नारी का जरा सा स्खलन उसकी बरबादी का कारण बन जाता है, किन्तु अब नारी शक्ति जाग उठी है। अब सामाजिक ढांचे को तोड़ती हुई न केवल अपने अधिकारों को सफरक्षित करेगी वरन् समाज को नई दिशा में आगे बढ़ायेगी। इस उपन्यास का कथानक स्पष्ट करता है कि मैत्रेयी पुष्पा "इदन्नमम" की सार्थक सोद्देश्य रचना के द्वारा नारी की सोच को एक कदम आगे बढ़ाती है।

चाक :

मैत्रेयी पुष्पा का बहुचर्चित उपन्यास है 'चाक', जो सन् 1997 में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित है। मैत्रेयी पुष्पा का पहला लगभग क्लासिकल उपन्यास इदन्नमम दसवें दशक की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। "चाक" उनकी कलम का अगला चरण है। गाँवों के रंग रेबो में जीता हुआ आत्मीय दस्तावेज, पुरुष समाज में रहे की अपनी पहचान का संकल्प-पात्र। "इदन्नमन" का क्षेत्र था बुन्देलखण्ड और चाक घूमता है बज प्रदेश के किसानों के बीच।

यहाँ अलीगढ़ की इग्लाश तहसील का अतरपुर गाँव कथा के केन्द्र में है। गाँव में अनेक जातियाँ है किन्तु वर्चस्व जाटों का है। गाँव पिछड़ा हुआ है विकास के नाम पर गाँव में चकरोड के द्वारा मुख्य सड़क से जोड़ दिया जाता है। सिंचाई के लिए एक सरकारी टड्बेल है। अतरपुर के दो एक घरों में बिजली आ गई है और गाँव में एक प्राइमरी स्कूल भी चालू हो गया है। अतरपुर गाँव का मुख्य धंधा खेती है। चाक की कर्मभूमि अतरपुर गाँव की है किन्तु पात्रों की गतिविधियाँ आगरा और अलीगढ़ के मध्य फैली हुई है। उत्तर प्रदेश के ये क्षेत्र कृषि की दृष्टि से विकासशील है तथा सामाजिक दृष्टि से भी। चाक में सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था का वर्णन भी गहरे रुप में है। प्रच्छन रुप में जमींदारी प्रथा है। पंचायती राज, राजनीतिक और चुनावी तिकड़म है। भ्रष्टाचार व मुकदमें बाजी है, स्त्री उत्पीड़न है, पुरुष व्यवस्था के खिलाफ स्त्री विद्रोह भी है।

मैत्रेयी पुष्पा का "चाक" ब्रजक्षेत्र में अलीगढ़ की तहसील इग्लास के एक गाँव छतरपुर को केन्द्र में रखकर विकसित होता है। बुंदेलखण्ड और ब्रज का निकटवर्ती क्षेत्र मैत्रेयी पुष्पा की मुख्य कथाभूमि है। लेकिन

क्षेत्र का यह सीमांकन उन्हें आंचलिकता के आग्रह से मुक्त रखता है। एक हजार की आबादी वाला यह गाँव अपनी प्रख्रति में लगभग एक वैसा ही गाँव है, देश के स्वाधीन दौर में जैसे गाँव तेजी से बने और विकसित हुए है। इस गाँव-अतरपुर में ब्राईण, बनिया और जाट जैसे प्रमुख जातियों के अतिरिक्त तेली, गड़रिया, कुम्हार, खटिक, चमार, नाई और सक्का मुसलमान जैसी अनेक छोटी जातियाँ भी है। फिर भी कुल मिलाकर यह जाटों के वर्चस्व वाला गाँव है। नौवें दशक की विकास योजनाओं ने गाँव को चरणही बदला है। इस विकास ने उसे एक खास पहचान दी है। चकरोड द्वारा गाँव को सड़क से जोड़ दिया गया है। टड्बवेल के बहाने गाँव में बिजली भी पहुँची हैं, जिसके कारण कुछ घरों में रेडियो की आवाज गूँजने लगी। अब टीवी आने की चर्चा भी है। गाँव में एक प्राइमरी स्कूल भी है, भले ही बच्चों की पढ़ाई से अधिक वह प्रधान और उसके हाली-मवालियों की राजनीतिका अड्डा हो।[5]

'चाक' की कथा नायिका सारंग है जो गुरुकुल में रहकर शिक्षा ग्रहण करती है। सने 'शकुन्तलम्' और 'कुमार संभव' पढ़ रखा है। सत्यार्थ प्रकाश के साथ से भी वह परिचित है और वर्तमान सामाजिक ढाँचे के अर्न्तगत स्त्री और पुरुष में विभाजक रेखा खींचने वाले दुहरे नैतिक मानदण्ड से चिढ़ है। सारंग का पति रंजीत कृषि से एम०एस०सी० है, किन्तु घर पर रहते कृषि का काम देखता है। "चाक" की कथा सारंग और रेशम को रेखांकित करती है- 'चाक' के सभी स्त्री पात्र पुरुषों की तुलना में अधिक विकासशील और विस्फोटक है। ये व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं सामाजिक स्तर पर भी उन मूल्यों और रीतियों से जुड़ने का प्रयत्न करती है। जहाँ उन्हें एक व्यक्ति का अधिकार प्राप्त नहीं है। पुरुष सत्तात्मक समाज और परिवार की अनेक सीमा रेखाओं को लांघती है।[6]

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'झूलानट' की कथाभूमि वर्चस्व विमर्श का यही पारिवारिक धरातल है। सीमित फलक और संक्षिप्त कथानक की इस रचना के पारिजात दूरगामी है। सतह पर यह घरेलू किस्म के झगड़े-झंझट को साहित्यिक गुरत्व और प्रतिभा प्रदान करता हुआ साधारण कथानक प्रतीत होता है जिससे स्त्रियोचित कलह, ईर्ष्या और प्रतिद्वन्दिता का विशद् बखान है, लेकिन यह कलह-कोलाहल कथागत जीवन और जगत् व्यवसाय के दृष्यबंधों का वह जीवन्त और रोचक सिलसिला है जिससे गुजरते हुए उपन्यास बिना किसी वैचारिक या सैद्धान्तिक शब्दाडंबर के दैनिक जीवन और दैनिक अनुभव की ढेठ भाषा में अपने कथ्य को चरितार्थ करता है।

आल्मा कबूतरी' का फलक काफी बड़ा है और उससे भी बड़ा है, लेखिका का लोभ, जो समाज की समाज पर कुकुरमुत्ते सी उगी हर विद्रूप सच्चाई को आग्रह पूर्वक संजो लेना चाहता है। फलतः कबूतराओं की बदनुमा हालत, कज्जाओं की घृणा और हृदयहीनता, पुलिस का अमानुषिक बर्बर रूप, चंबल के बीहड़ों से निकलकर डाकुओं का विधान सभाओं में प्रवेश, पुलिस-अपराधियों और राजनीति का गठबंधन आदि पर टुकड़ा-टुकड़ा प्रकाश डालकर यह उपन्यास को कोलाज का रुप दे डालता है। इससे कबूतराओं के संघर्ष की केन्द्रीय कथा का प्रभाव विश्रृंखल हुआ है। बेशक कोई भी व्यक्ति जन्म से महान नहीं होता है। परिस्थितियाँ ही उसे तोड़ती या बनाती हैं। इस प्रक्रिया में भीतरी और बाहरी संघर्ष ही उसे वह जमीन देता है, जिस पर चलकर वह एक साथ हवा सा हल्का और चट्टान सा मजबूत बन जाता है। कदम बाई छन्दग्रस्त रहकर जीवन भर आत्म छलना का शिकार बनी रहती है। यदि घबराया हुआ मांसाराम आत्मरक्षा के लिए उससे संधि न करता।

'आल्मा कबूतरी' कबूतरा जाति की कथा मात्र नहीं है। वह समकालीन राजनीति की दिशाहीनता, अपराधीकरण, सत्ता संघर्ष, बेरोजगारी तथा जीवन मूल्यों के घोर पतन की यथार्थ गाथा भी है। सामाजिक जड़ता को तोड़ती और पारंपरिक रुढ़ियों को चुनौती देती हुई आल्मा जैसी दलित नारी की अपराजेय, जिजीविषा, समकालीन नारी चेतना को शक्ति और प्रेरणा देने वाली है।[7]

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा अल्मा कबूतरी के द्वारा प्रमाणिक एवं सटीक रचना धर्मिता का परिचय देती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मैत्रेयी पुष्पा, सुनो मालिक सुनो, पृ० सं० 9
2. मैत्रेयी पुष्पा, सुनो मालिक सुनो, पृ० सं० 11
3. डॉ० शशिकला त्रिपाठी, उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री, पृ० 02
4. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ० सं० 143
5. दया दीक्षित, मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य, पृ० स० 57
6. डॉ० शशिकला त्रिपाठी, उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री विमर्श, पृ० 63
7. डॉ० रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी उपन्यास, पृ० 194

अद्वैतवेदान्ते चैतन्य महाप्रभुः

डॉ० राहुल चौधरी
स०अ० बेसिक शिक्षा परिषद
प्रयागराज।

समग्रमुत्तरभारतं विशेषतः वङ्गप्रदेशं भक्त्या आप्लावनस्य श्रेयः महाप्रभुचैतन्यस्यास्ति (1485 ई.– 1533 ई.)। भवान्नासीत् भक्तिरसस्य जीवन्तमूर्तिः, उदात्तमधुरभावस्य जाज्वल्यमानः प्रतीकः। नदियायाः एकस्मिन् पवित्रे ब्राह्मणकुले भवतः जन्म वि.सं. 1542 (1484 ई.) वर्षेऽभवत्। बाल्यकालस्य नामासीत् विश्वम्भरमिश्रः। नदियायाः प्रख्यातपण्डितात् गंगादासाद् भवान् विद्याध्ययनमकरोत्। बुद्धिरतीव तीव्रा आसीत्। भवान् समस्तशास्त्रेषु विशेषतः तर्कशास्त्रे अतीव विचक्षणतां प्राप्तमकरोत्। दुर्दान्तपण्डितान् शास्त्रार्थे पराजितमकरोत्। स्वपाठशालामुद्घाट्य छात्रान् विद्याभ्यासमप्यकारयत्। अस्य जीवनप्रवाहं परिवर्तनस्य घटनाऽस्ति, तस्य गयायात्रा। वि.सं. 1564 (=1507 ई.) वर्षे स्वपितुः श्राद्धं कर्तुमयं गयाधाम अगच्छत्, तत्रैव ईश्वरपुरीतः साक्षात्कारोऽभवत्। पुरीवर्येण तस्य साक्षात्कारः पूर्वमेवाभवत्। सः तस्य भक्तिभावनायाः वैराग्यस्य च नितान्तं पक्षपाती आसीत्। परन्तु गयायात्रेयं विश्वम्भरं प्रपञ्चाद् दूरीकृत्य भगवतः श्रीकृष्णस्योपासनां प्रति स्वतोऽग्रसरमकरोत्। ईश्वरपुरी तस्य वैष्णवदीक्षायाः गुरुरभवत्। वि.सं. 1566 (= 1508 ई.) वर्षे अयं पुरीवर्य्यस्य गुरुभ्रातुः केशवभारतीतः संन्यासदीक्षां जग्राह। तत एव सः 'कृष्णचैतन्यः' इति नाम्ना प्रख्यातोऽभवत्। वृद्धामातुः तरुणपत्न्याश्च स्नेहं ममत्वं च तिलाञ्जलि प्रदाय चैतन्यः भगवतः भक्त्याः प्रचाराय संलग्नोऽभवत्।

अयं भारतवर्षस्य विख्याततीर्थानां यात्रामकरोत्। चैतन्यमहाप्रभुः वि.सं. 1557– 58 (= 1510–11 ई.) वर्षे दक्षिणभारतस्य यात्रामकरोत्। तत्रत्यानां प्रसिद्धतीर्थानां दर्शनं कुर्वन् भक्त्याः प्रचारमकरोत्। अस्मिन्नेव समये तस्य दृष्टिः वृन्दावनस्योद्धाराय न्यपतत्। तदा स्वसहपाठिनं लोकनाथस्वामिनं पवित्रकार्यस्यास्यार्थे प्रेषयत्। अयं स्वयमपि काशीं प्रयागं भ्रमन् वृन्दावनमगच्छत्, तत्र काञ्चित् मासान् न्यवसत्। परन्तु तस्य लीलास्थली अभवत् जगन्नाथपुरी, यात्रा रथयात्राया अवसरे दर्शनाय वङ्गप्रदेशात् भक्तानामपारजनसम्मर्दः एकत्रितो भवति स्म।

चैतन्यमहाप्रभोः कोऽपि ग्रन्थः न प्राप्यते। केवलमष्टपद्यात्मकः एकः सङ्ग्रहः उपलभ्यते, यः भक्तेषु 'शिक्षाष्टकम्' इति नाम्ना विश्रुतमस्ति। तस्यैकं पद्यमवलोकनीयम्–

चेतो दर्पण – मार्जनं भवमहादावाग्नि– निर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिका–वितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतं स्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण– सङ्कीर्तनम्।।

अस्मिन् शिक्षाष्टके भक्तिमार्गस्य प्रख्यातभावनायाः यथेष्टं निर्देशोऽभवत्। एतानि पद्यानि चैतन्यः स्वजीवनस्य दर्शनमेव स्वीकृतवान्। यानि तस्मै मार्गदर्शनस्य कार्यं कुर्वन्ति स्म तथा अन्यसाधकानामपि जीवनस्य मार्गदर्शनं कुर्वन्तु इत्येव तस्य प्रधानमुद्देश्यमासीत्।

भजनं कीर्तनं चायं भक्त्याः प्रचारस्य सर्वसुलभं साधनं कृतवान्। वैष्णवधर्मस्य प्रचारेखस्मै नित्यानन्देन अतीव सहायतामलभत्। सत्यन्तु इदमस्ति यत् वङ्गप्रदेशे कृष्णभक्तेः प्रचारस्य श्रेयः निमाई (चैतन्य) तथा निताई (नित्यानन्द) द्वयोः महापुरुषयोरस्ति। चैतन्यस्य कीर्तिः तस्य जीवनकाले एव प्रासरत्। भक्ताः चैतन्यं भगवतः श्रीकृष्णस्यावतारः मन्यते। अयं सं. 1560 (= 1533 ई.) वर्षे पुर्यामेवान्तर्हितोऽभवत्।

चैतन्यस्य भक्त्यान्दोलनम्

भक्त्याः उत्कृष्टमादर्शः श्रीचैतन्यदेवः स्वयं स्वजीवने प्रादर्शयत्। भगवतः नाम्नः सङ्कीर्तनं चैतन्यस्यात्यन्तं लोकप्रियमाध्यात्मिकं साधनमासीत्। येन जनसाधारणं स्वान्दोलनं प्रति आकृष्टुमयं सर्वथा कृतकार्यमभवत्। तस्याध्यात्मिकव्यक्तित्वेन आकृष्टाः नैके आदरणीयाः सन्तः विद्वांसश्च मिलित्वा तस्यान्दोलनं अत्यन्तं लोकप्रियमकुर्वन् तथा तस्य भक्तिसन्देशं जनताया हृदये प्रापयन्। एतादृशमहात्मसु द्वौ मुख्यौ आस्ताम् – अद्वैताचार्यः, नित्यानन्दश्च। यदा चैतन्यदेवः जगन्नाथपुर्यां नियमितरूपेण न्यवसत्, तदा सः अनयोः द्वयोः ऊपरि वङ्गप्रदेशेखस्यान्दोलनस्य प्रसार-प्रसारस्य उत्तरदायित्वं समर्पयत्।

अद्वैताचार्यः भक्त एव नासीत्, तत्कालस्य महनीयः शास्त्रवेत्ता विद्वान्नप्यासीत्। अयमस्मिन् मते दीक्षाप्रदानस्य कार्यं योग्यजनान् यावदेव सीमितं कर्तुमाग्रहमकरोत्। परन्तु नित्यानन्दः सर्वस्मै भक्त्याः द्वारमुदघाटयत्। तस्य पुत्रः वीरभद्रस्तु वङ्गस्य बौद्धधर्मस्यावशिष्टान् अनुयायिनोखपि ये समाजे समाजे नितान्तं निम्नस्तरस्यासन्, वैष्णवधर्मस्य दीक्षादानस्य साहसपूर्णं कार्यमकरोत्। अस्मिन् विषये अद्वैताचार्यस्य समर्थनं न प्राप्यापि नित्यानन्दः स्वासामान्यव्यक्तित्वस्य बले निम्नश्रेणीनां जनानपि वैष्णवधर्मस्यान्तर्भुक्तं कर्तुं किञ्चिदपि सङ्कोचं नाकरोत्। नित्यानन्दस्य द्वादशशिष्या अपि ये 'द्वादशगोपाल' इति नाम्ना विख्याताः सन्ति, कार्येखस्मिन् गुरोः पर्याप्तं सहायतामकुर्वन्, एवमयं मार्गः शनैः शनैः वृलद्ध प्राप्तः समग्रवङ्गे व्याप्तोऽभवत्। चैतन्यमतस्य प्रधाना आसन् स्वयं महाप्रभुः चैतन्यः, नित्यानन्दः, अद्वैताचार्यश्च। अनुमीयते यद् अयमेवाद्वैताचार्यः स्वात्मानं नित्यानन्दानुचरः कथयति। यः प्रकृतपञ्चरत्नप्रकाशस्य कर्ता अस्ति। अत एवास्य पञ्चरत्नप्रकाशटीकायां विट्ठलमतस्य चैतन्यमतस्य च प्रभावः परिलक्ष्यते।

महाप्रभुचैतन्यस्य दार्शनिक सिद्धान्तः

माध्वमतस्य शाखा सत्यपि चैतन्यमतस्य दार्शनिकः दृष्टिकोणः सर्वथा स्वतन्त्रः पृथक् चास्ति। माध्वमतस्य मूलदृष्टिः द्वैतवादस्यास्ति, यस्माद् भिन्नं चैतन्यमतस्य नामास्ति कृ अचिन्त्यभेदाभेदः। भगवान् श्रीकृष्ण एव परमतत्त्वमस्ति। तस्यानन्तशक्तयः सन्ति। शक्तिशक्तिमतोः न तु परस्परं भेद एव सिद्धो भवति, न चाभेदः अनयोद्व

'यो: सम्बन्ध: तर्केणाचिन्त्योऽस्ति। तस्मादस्य मतस्य प्रसिद्धि: 'अचिन्त्यभेदाभेद:' इति नाम्नाऽभवत्। अस्मिन् विषये श्रीरूपगोस्वामी लघुभागवतामृते स्पष्टं लिलेख–

एकत्वं च पृथक्त्वं च तथांशत्वमुतांशिता।
तस्मिन्नेकत्र नायुक्तमचिन्त्यानन्तशक्तत:।।

अचिन्त्यानन्तशक्तीनां कारणात् तस्मिन्नेकस्मिन् पुरुषोत्तमे एकत्वपृथक्त्वयो:,

अंशत्वांशित्वयो: स्थिति: कथमप्ययुक्ता न भवति। श्रीजीवगोस्वामिन: कथनानुसारं भगवति श्रीकृष्णे तस्य स्वरूपादिशक्तिभिरभिन्नरूपेण चिन्तनमशक्यत्वात् सोऽभिन्न: प्रतीयते। ताभ्य: भिन्नरूपेण चिन्तनमशक्यत्वात् स: भिन्न: प्रतीयते। यथाह जीवगोस्वामी–

'स्वरूपाद्यभिन्नत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वाद्भेद:, भिन्नत्वेन चिन्तयितुमशक्यत्वाद् अभेदश्च प्रतीयते इति शक्तिशक्तिमतोर्भेदाभेदौ अ्गीकृतौ तौ च अचिन्त्यौ स्वमते तु अचिन्त्यभेदाभेदावेव अचिन्त्यशक्तित्वाद्"।

चैतन्यमतस्य सारांश निम्नलिखिते प्रसिद्धे पद्ये द्रष्टुं शक्यते–

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तधाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता:।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमार्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो: न: पर:।।

अर्थाद् व्रजस्वामिन: नन्दस्य पुत्र: श्रीकृष्ण एवाराधनीयो भगवान् अस्ति। तस्य धामास्ति कृ वृन्दावनम्, व्रजस्य गोपिकाभि: कृता रमणीया उपासनैव साधभ्य:। माननीया प्रामाणिकी उपासनाऽस्ति। श्रीमद्भागवतं निर्मलं प्रमाणशास्त्रमस्ति। प्रेम एव सर्वश्रेष्ठ: पुरुषार्थोऽस्ति कृ इत्ययं चैतन्यमतस्य सारांशोऽस्ति।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय दर्शन, सी०डी० शर्मा।
2. नित्यानन्द रचित पञ्चरत्न प्रकाश।
3. भारतीय दर्शन की रूपरेखा–हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा।
4. प्रेमावतार श्री चैतन्य महाप्रभु- भक्ति विकास स्वामी।
5. भारतीय दर्शन–सुरेन्द्र प्रसाद सिन्हा।

चांदायन का वस्तु वर्णन

डॉ० तारा कुमारी
परम नगर नियर माइको
पोस्ट थाना–सासाराम
जिला–रोहतास बिहार
पिन कोड –82115

मुल्ला दाऊद द्वारा लिखा गया "चांदायन' एक प्रबंध काव्य है। जो छब्बीस खंडो में बँटा हुआ है। इसका प्रथम भाग स्तुति खंड है। इसमें सर्वप्रथम सृष्टि कर्ता का गुणगान करते हुए यह लिखा गया है कि उन्होंने देश–प्रदेश की सृष्टि की है धरती– आकाश, मेरू मंदिर और केलाश पर्वत सहित सूर्य, चंद्र, शीतल, छाया, धूप अंधकार, आदि का सृजन किया।

"पहले गांऊ सिरजन हारु। जिनि सिरज्या यह दौ स वि यारू।" 1

कवि का कहना है कि जिस सृष्टि कर्ता ने यह सब रचा, उससे मेरा मन खुशी से भर गया। इसके अलावा वह सृष्टिकर्ता के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहता है कि उसकी महिमा अनंत है। उसने नदियों, पहाड़ों, झरनों, मगर, घड़ियाल, चंदन, फूल, कमल, अग्नि, जड़ी बूटी आदि का भी सृजन किया है। इतना ही नहीं उन्होंने मानव जीवन के उपयोग में आने वाली सभी वस्तुओं का रचयिता सिद्ध किया है। इस वर्णन के क्रम में कवि ने तत्कालीन बादशाह का भी वर्णन किया है। इसके अलावा उन्होंने यह भी लिखा है कि उसने एक उज्जवल पुरुष का निर्माण किया है जिसका नाम मोहम्मद है। वह किसी भी जीव जंतु में भेदभाव करना नहीं जानता। इतना ही नहीं वह सब लोगों को धर्म के मार्ग पर चलने का निर्देश देता है। वेद, पुराण और कुरान का रचयिता वह मोहम्मद को ही मानता है। फिरोज शाह तुगलक जो दिल्ली का बादशाह था उसकी शासन प्रणाली के अलावे आम जनों के हित में जिस तरह का उसने काम किया उसका भी विस्तृत विवेचन इस प्रबंध काव्य में किया गया है। खुद कवि कहता है कि मैं उनसे बहुत प्रभावित रहा हूं। इसके अलावा कवि का मानना है कि शेख जैनुद्दीन ने मुझे धर्म के मार्ग पर चलाया–

"शेष जैनदी हौ पथि लावा। धरमपंथ जिहि पाप गवावा।"[2]

कवि का मानना है कि इनके कारण मेरा हृदय उज्जवल हो गया और मेरे ज्ञान चक्षु भी खुल गए। इतना ही नहीं मेरे जितने भी पाप थे उन सबों को भी इन्होंने मिटा दिया। कवि ने सुल्तान के मंत्री खाने जहां के संबंध में लिखा है कि इन्होंने आम जनता के लिए बहुत सारी सुख–सुविधा प्राप्त कराए। इसके अलावे वन, उपवन, गलियां, तालाब आदि को भी इन्होंने सुसज्जित किया। खानेजहां के संबंध में कवि की धारणा है"–

"खानेजहां घरि जुग जुग पानी। अति नागरू बुधि़वंत बिनानी।
चतुर सुजान भाष सब जानू। रुपवंत मंतिरी सयानू।"[3]

इसका अगला अध्याय गोबर वर्णन खंड है जिसमें कवि ने गोबर नामक स्थान का वर्णन किया है। वह कहता है कि गोबर की कथा कानो को बहुत सुहावनी लगती है। इतना ही नहीं वह गोबर प्रकृति से लेकर कई तरह के उपादानों से सुसज्जित है–

"कहूं कबितु मनभयो गियानू। कहत सुहावन सुनहु दै कानू।
गोबर कहौं महर कर ठाऊं। कुँआ बाई बहुत अंबराऊ।"[4]

इस नगर में आम के बहुत सारे पेड़ हैं– अनार, नारंगी, कटहल, इमली के अलावे कई तरह के पक्षी भी यहां के बगीचा में कलरव करते रहते हैं। यहां बहुत बड़ा पोखरा भी है उसमें हंस और चकवा चकयी का जोड़ा क्रीडा करता है। इतना ही नहीं इस नगर में कई जातियां भी हैं, जिनमे ब्राह्मण, ग्वाले, अग्रवाल, तिवारी बंजारा, ठाकुर आदि हैं। कवि के अनुसार–

"बांभन खतरी बैस गोवारा। खंडरवार अउ अग्गरवारा।
बसहिं तिवारी अउ पंचवाना। धाकर जोसी अउ जजमाना।
वसहि खंधाई अउ बनिजारा। जाति सरावग अउर पंवारा।
सोनी बसहि सुनार बिनानी। रावत लोग बसाए आनी।
ठाकुर बहुत बसहि चौहाना। परजा पौनी गिनति को जाना।"[5]

कवि ने कहा कि गोबर में कई तरह का हाट बाजार लगता है एक तरह से वह नगर हमेशा आकर्षण का केंद्र लबदु बना रहता है। सहदेव यहां के राजा हैं और उनकी रानी का नाम फुला देवी है। इन्हीं के घर चंदा का जन्म हुआ। वह अलौकिक गुणों से संपन्न थी। जब उसका अवतार हुआ तो सर्वत्र उजाला फैल गया। चंद्र से लेकर जितने नक्षत्र हैं उसकी सेवा किसी न किसी रूप में कर रहे थे। कवि ने चंदा के जन्म के संबंध में लिखा है–

"सहदेव मंदिर चांद अवतारी। धरती सुरगि भई उजियारी।
पहिलिइ घरी़ भयऊ अवतारू। दूइ रातन जानौ सयसारू।
सातव चंद्र नखत भा मांगा। जानौ सुरू दिपई तिय आंगा।
भई सपूरन चउदसि राती। चांद महर धिय पदुमिनी जाती।"[6]

वह जैसे–जैसे सयानी होती जा रही थी उसका सौंदर्य बहुत ही उत्कृष्ट कोटि का होता जा रहा था। बाद में ब्राह्मण और वहां के गणमान्य लोगों ने कहना शुरू किया कि अब चंदा का विवाह कर देना चाहिए। सहदेव को भी इस बात की चिंता हुई और उसने जैत के यहां अपनी पुत्री चांदा का विवाह प्रस्ताव भेजा। उसने यह भी कहा कि तुम मेरे भाई हो, मेरी जाति के हो इसलिए मैं तुम्हारे पास संबंध बनाने के लिए भेज रहा हूं–

"दीन्हि सुपारी मोतिन्ह हारू। कहिह महर सौ मोर जुहारू।
अस अस कहेहू मोर तू भाई। राजा नइ कइ करहू सगाई।"[7]

इस तरह राजा सहदेव ने अपनी बेटी चंदा का विवाह वामन से कर दिया और जब वह अपने ससुराल गई तो उसने यह पाया कि वामन कम उम्र का है साथ ही उसकी जीवन शैली भी ऐसी नहीं है जिसके साथ उसका गुजर- बसर हो सके। इसलिए चंदा उससे नफरत करने लगी। उसने इतना तक कहा आज तक उसने मेरी कोई भी इच्छा पूरी नहीं की। जिस तरह एक सुहागिन स्त्री रहती है वह प्यार दुलार मुझे नहीं मिल पाया-

"एकउ साधि न हिस बुझानी। मुइउ पियास नाक लहिं पानी।
एहि परिहंसी उठि मायके जाऊं। तिय सो राघ सुहागिनि नाऊ।"[8]

चंदा को काफी समझाने का प्रयास किया गया। उसकी ननद और सास इन दोनों ने बहुत समझाया लेकिन वह मानने को तैयार नहीं थी। उसकी सास जब कई तरह का उदाहरण देकर समझाती है तो चंदा ने कहा कि तुम मुझे अपने घर में जिस तरह रखती आई हो या जिस तरह से मैं अपना जीवन यापन कर रही हूं उस तरह मैं नहीं रह सकती और जहां तक सोना, चांदी, हीरे, जवाहरात की बात है तो मेरे घर में क्या नहीं है? एक सहस्त्र मनुष्य प्रतिदिन हमारे यहाँ जेवनार करते हैं। वह इतना तक कहती है यदि तुम्हरी बेटी ससुराल में रहे और उसका पति नहीं पूछे तो तुम को कैसा लगेगा?

"तुम्हारी धिय जो ससुरे आहा। पिउ न पूछत बोलहू काहा।"[9]

इस प्रकार वह अपने पितृगृह आ गई। चंदा जब अपने नैहर गोबर में रहने लगी। कुछ दिन के बाद एक बाजूर घूमते हुए इस नगर में आया और वह बिहाव गीत गा रहा था और लोगों से मांग मांग कर खा रहा था। इस समय बाजुर ने धवलगृह के झरोखे से देखा तो उसे जाडा बुखार आ गया। वह मुरर्छा की अवस्था में हो गया-

"बाजूर एक कतहु हुत आवा। गोबर फिरई बिहाऊ गावा।
घर-घर भुगुति मांग लई खाई। खिन-खिन राजदुवारहि जाई।
एक दिन चांद धरौहर ठाढी। झांकसि माथ झरोखई काढी।
तिहि रिवान बाजुर मूंड उचावा। देषी चांद तवारा आवा।"[10]

वह बसुध स्थिति पड़ा था। लोग कई तरह से उसका उपचार कर रहे थे। लेकिन वह इसी तरह बेसुध अवस्था में पड़ा रहा। कई लोग पूछ रहे थे कि बाजूर तुम बताओ तुम्हें ऐसी कौन सी तकलीफ हुई है या तुम्हें कौन सी ऐसी पीड़ा है जिसके चलते तुम इस तरह अचेत हो गए हो। सभी लोग उसे होश में लाने का प्रयास करते हैं। लोग उससे पूछते हैं-

"कह बाजुर तोहि बेदन काहा। लोग महाजनु पूछत आहा।
पीर कहसि तउ सुनहु बिनानी। ओखदु मूरि देहि तोहि आनी।
कइ जुर जाड पेट कइ पीरा। कइ सिरवाहि गूढ महि कीरा।"[11]

जब उससे लोग अचेत होने का कारण पूछते हैं तो वह कभी–कभी दर्शन की भाषा में कहता है कि एक बहुत बड़ा विशाल पेड़ है जिस पर फल लगे हैं और वह पेड़ आसमान में है उसको कैसे कोई पा सकता है। जब सभी लोग उसका इलाज करते–करते थक गए और उसे होश नहीं आया तब उसने पूछने पर बताया कि मैं इसी गांव में मारा गया हूं। यहां पर एक बड़ी स्त्री है वह अपने विषाक्त नेत्रों के वाण से मुझे मार गई है। यही कारण है न तो मेरा खून गिरा, न ऊपर ऊपर कहीं घाव दिखाग्र दे रहा है बल्कि उसकी चोट हमारे हृदय में लगी है–

"हउं मारिउं इहि गाऊं तुम्हारे। नैन बांन हनि गई बिसारे।
रगत् न आवा दीस न धाऊ। हिए सालु मोर उठइ न पाऊ।
कत मइ देखि धौराहर ठाढी। हिए पइसि जिउ लइ गइ काढी।"[12]

बाजुर ने सोचा मैं इस गांव में रहूंगा तो मेरी मृत्यु हो जाएगी क्योंकि यहां रहते न तो मुझे भूख लगेगी न नींद आएगी न मुझे यहां का कोई अन्न जल भाता है। यह सब सोच कर बाजूर नें गोबर का त्याग किया और वह राजपुर नगर में जहां का राजा रूपचंद था वहां चला गया। बाजूर सुबह जगते ही जोगियों की तरह गीत गाता रहता था जिसमें कई तरह का भाव होता। जब राजा ने सुना कि यहां एक ऐसा गाना गाने वाला आया है तो उसने अपने मंत्री बांठ को कहा कि तुम उसे मेरे यहां ले आओ। बांठ बाजुर को पड़कर राजा के दरबार में लाता है तो उसने कहा कि तुम अपने गांव का नाम बताओ और तुम इतना सुंदर गीत गा रहे हो यह वरदान तुम्हें कैसे मिला?

"पूछा राउ कवन तोर ठाऊं।। सुसुर कंठ तोही दीन्ह गुसाऊं।
आजु राति निसु ही तई गावा। चंदरावली मनु लहरा लावा।"[13]

राजा रूपचंद ने उससे कई प्रकार से कई तरह की बातों को पूछा और वह किस कारण से गोबर नगर छोड़कर आया है उसके बारे में पूछा। उसका जवाब देते हुए बाजूर नें कहा–

स्रवन क सुना कहउ हउ काहां। बोली ऊ सोह जो देखिउ आहा।
नगरू उजयिनी मोर अस्थानू। विकराजित राजा धरमानू।
चारिउं भुवन फिरत हउं आवा। गोवरू देखेरू नगरू सोहावा।
तहवां चांद तिरी मइं देखी। पाथर कीरि जइसि चित लेखी।"[14]

उसने कहा कि मैं जो कुछ भी कह रहा हूं वह कानों का सुना हुआ नहीं है। मैंने अपनी आंखों से देखा है। उज्जैन नगर मेरा स्थान है वहां का विक्रमादित्य धर्मात्मा राजा है। मैं चारों भुवन में चक्कर लगाता हुआ गोबर का सुहाना नगर देखा। वहीं पर मैंने चंदा नामक स्त्री को देखा जो पत्थर में गडी कील की तरह मेरे चित्त में प्रवेश कर गई और अब वह प्रतिमा मुझे निकाले भी नहीं निकल पा रही है। सहदेव की पुत्री चंदा है जो चारों भुवनों में प्रकाशमान है। राजा रूपचंद ने चंदा का नाम सुनकर अंगड़ाई ली और उसने कहा कि तुम उसके बारे में बताओ कि वह किस देश में है। तुम उसका ग्राम, स्थान और उसके लक्षणों के बारे में भी बताओ। वह रूपवती स्त्री किस प्रकार दिखती है। राजा रूपचंद के द्वारा पूछे जाने पर उसने उसका ठिकाना बताया,

उसके अलावे उसका नख शिख वर्णन भी राजा के सामने किया। सबसे पहले उसने मांग का वर्णन किया। फिर भौह का, फिर ललाट का, फिर नैत्रों, का फिर मुंह का, फिर अधर का, इतना सब कुछ सुनाने के बाद फिर गर्दन का, स्तन का, पेट का फिर उसकी चाल के बारे में उसने कहा कि वह हंस के समान चलती है। वह कैसा वस्त्र पहनती है? कानों में क्या लगाती है? इन सब का भी विस्तार से वर्णन बाजूर ने राजा रूपचंद के सामने किया। बाजुर के द्वारा चंदा का नख शिख वर्णन किये जाने के बाद रूपचंद के नेत्रों में आंसुओं की नदी बह चली और उसने तय किया कि मुझे दलबल के साथ गोबर पर चढ़ाई करना है और चाहे जैसे भी हो चंदा को प्राप्त करना है। उसके बाद राजा रूपचंद नगर पर चढ़ाई के लिए अपने सैनिकों को तैयार करता है और चारों ओर से गोबर नगर को घेर लेता है। ऐसा होने पर बसिठ ने राजा रूपचंद के यहां जाकर यह जानने का प्रयास किया कि आखिर आपने इस गोबर नगर पर चढ़ाई क्यों की है। राजा रूपचंद ने अपने मंत्री बांठ को आगे किया और उसने कहा कि तुम इससे बातचीत कर लो। फिर उसने कहा कि किस कारण राजा तुम यहां तक चल कर आए हो? तुम्हारे मन में भी जो भी है उसे तुम बता दो और हमसे तुम प्राप्त कर लो।

"राइ के पाय बसीठ लइ लाए। तुरी भेंट आगे लइ आए।
पुनि बसिठेहि सिरू भुइ लइ लावा। कउनि रिसि राजा चलि आवा।"[15]

राजा रूपचंद ने कहा कि मुझे चंदा से विवाह करना है। अगर तुम प्रेम पूर्वक मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लोगे तो तुम्हें भी बहुत सम्मान मिलेगा और नहीं तो मैं तुम्हारे गोबर नगर पर आक्रमण करूंगा। इसके साथ ही मैं तुमसे हमेशा पानी भरवाऊंगा। बसीठ राजा रूपचंद के प्रश्नों का जवाब सही नहीं दे रहा था न कोई ऐसा उत्तर ही दे जिससे राजा रूपचंद संतुष्ट होता। उसकी बात सुनकर राजा रूपचंद बहुत आक्रोश में आया और उसने कहा– बसीठ, तुमको मैं चाहूंगा तो मारकर कुएं में डलवा दूंगा, तेरी खाल निकलवा दूंगा। वृक्ष मे लटकवा दूंगा, इतना ही नहीं तुम्हारे मांस को कुत्ते और बिल्ली से भी नोचवा दूंगा। तुम्हारे भीतर ऐसी कौन सी योग्यता है कि तुम इतनी धृष्टता कर रहे हो। मैं जैसा कह रहा हूं तुम जाकर उससे कहो–

'तोहि का जोगित करसि धिठाई। जस हउं कहउं तइस कहु जाई।'[16]

बसीठ गोबर नगर की महिमा और उसके ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि गोबर एक गहरा समुद्र की तरह है उसमें जो भी जाता है वह डूब जाता है उसका थाह लगाना इतना आसान नहीं है। इतना ही नहीं वह यह भी बताता है गोबर ऐसा नगर है जिसको जितना इतना आसान काम नहीं है। जब बसिठ गोबर नगर में आता है और राजा रूपचंद के इस प्रस्ताव को सुनाता है इस पर कुँवरू और धवरू जो गोवर नगर के रहने वाले थे इन सबों ने काफी आक्रोश व्यक्त किया और गाली देते हुए कहा कि ऐसा लगता है कि उसका जन्म सियारिन की पेट से हुआ है। कुंवरू धवरू दीते गारी। जेइ जरमेन्हि सो माइ सियारी।"[17]

राजा रूपचंद ने गोबर नगर पर भीषण आक्रमण किया। दोनों ओर से युद्ध प्रारंभ हो गया और ऐसी स्थिति में राजा सहदेव ने देखा कि लगता है कि मेरी हार हो जाएगी। इसके लिए उन्होंने अपने मंत्री से कहा कि तुम जाकर लोरिक को ले आओ, वही हमारी इस लड़ाई में मदद कर सकता है क्योंकि कुँवरू और धवरू ये दोनों मारे जा चुके हैं। वह दौड़े-दौड़े लोरिक के यहौ गया और उसने बताया कि कई लोग बांठ के द्वारा

मारे जा चुके हैं और इस आक्रमण में सहदेव की स्थिति बहुत खराब होती जा रही है इसलिए उन्होंने आपको मदद करने के लिए बुलाया है। जब लोरिक ने सुना तो वह तुरंत तैयार हो गया और उसने कहा कि सहदेव पर मुसीबत आ पड़ी है इसलिए उनको हमें जाकर दुख से उबारना होगा और इतना ही नहीं मैं आज ही उस युद्ध में बांठा को मारूंगा और राजा रूपचंद को यहां से भागता हुआ देखना चाहता हूं–'

"उठा लोरू सुनि नांखा, परलै महर भया अवसान।
आजु बांठ रन मारेउं, देखउ राइ परान।।"[18]

वह युद्ध में जाने के लिए तैयार हो गया तो उसकी मां खोलिन ने देखा और उसने कहा कि तुम वहां मत जाओ। इस पर वह तर्क देता है कि राजा रूपचंद चंदा को ले जाएगा और युद्ध में हार भी होगी, इसलिए मैं यह सब नहीं देख सकता। इसलिए हे माता! तू मुझे ऐसा आशीर्वाद दो, कि मैं युद्ध में बांठ को मारकर घर आऊं–

गाढ काजु मरें कर कैसे जीउ लुकाऊ।
माता देहुं असीस मुझू, मारि बांठु धरि आऊ।"[19]

जब लोरिक की पत्नी मैनां ने यह सब सुना कि वह युद्ध में जा रहा है तो तुरंत आगे आकर खड़ी हो गई और उसने कई तरह से रोकने का प्रयास किया। उसने इतना तक कहा यदि तुम्हें युद्ध करने की इच्छा है तो तू मुझे मार कर आधे टुकड़े कर दो उसके बाद उस युद्ध में जाना। लेकिन मैं तुमको इस तरह नहीं जाने दूंगी। वह कई तरह से समझा रहा था कि इस स्थिति में नहीं जाऊंगा तो, तुम मेरी वीरता के अलावा मेरा जीवन भी निरर्थक साबित होगा और ऐसे और अवसर पर एक दूसरे को मदद करना चाहिए और इतना ही नहीं राजा सहदेव ने मुझे कुछ सोच विचार कर ही बुलाने के लिए भेजा है। इसलिए तुम दोनों इसमें बाधक मत बनो। लोरिक के द्वारा ऐसे समझाए जाने के बाद उसकी मां ने कहा कि है बालक तुम धन्य हो, तुममें भीम और अर्जुन का बल हो, मैं ऐसी शुभकामना तुम्हें देती हूं और ठीक है तुम जाओ और युद्ध में जीत कर आना। उसकी पत्नी मैंने ने भी कहा कि मैं भी तुम्हें आशीष देता हूं। ऐ लोरिक! तुम जिस तरह वीर हो, तुम राजा रूपचंद को जीत कर घर आना। लोरिक कई साथियों को लेकर चल पड़ा और यह भी सेना के रूप में तैयारी करके गोबर नगर के पास पहुंचा। सहदेव की ओर से उनका दल आ रहा है जो लगता है कि हटाने से भी हटाने वाला नहीं है–

चहुं दिसि देख राउ दरू आवा। रहा अचलु होइ चल न चलावा।
जउ रे चलावहिं जाइय कहां। कवन उतरू अब दीजइ तहां।"[20]

लोरिक के आने के बाद दोनों ओर से युद्ध की रणभेरी बज गई और एक दूसरे पर आघात करने लगे। इस युद्ध में सबसे पहले कुँवरु का पुत्र श्वान मारा गया। चारों ओर से खडग, बरछे, और तलवार ये सब चलने लगे। इसी बीच लोरिक गरजते हुए उस युद्ध में जा पहुंचा। उधर से जब बांठ आगे चलता हुआ युद्ध में अपना जौहर दिखला रहा था, उस समय लोरिक पहुंचा, उसने कहा कि सभी को घेर लिया जाए और इस तरह बांठ को उसने मारा और उसके बाद आपस में कई सैनिक युद्ध करने लगे। लोरिक ने सबको पराजित किया

और वह युद्ध में एक विजेता के रूप में घोषित हुआ। युद्ध जीतने के बाद सहदेव ने लोरिक को बुलाया और कहा कि तुम एक क्षत्रिय योद्धा हो जिसने भी तुम्हें जन्म दिया है तुम्हारी जननी धन्य है। इसी समय चंदा और लोरिक का प्रथम दर्शन होता है। दोनों के भीतर प्रेम का भाव जगा और दोनों ने मन में ठान लिया कि जैसे भी हो अब हम सब एक साथ मिलेंगे। उस समय चंदा और लोरिक का जब दर्शन हुआ जिसमें जेवनार में उसे बुलाया गया था। लोरिक कहता है वह मेरा जीव लेकर चली गई है। अब मैं उसके बिना नहीं रह सकता–

"जेहि दिन हउ जेवनारि बुलावा। महर मंदिर काहू दिखरावा।
सो जिउ लइ गइ कही न जाई। बिनु जिउ भएइ परेउ धहराई।"[21]

चंदा ने मनौती की थी कि मेहर जब जीत जाएंगे तो मेरे यहां भोज का आयोजन किया जाएगा। इसी भोज में लोरिक और चंदा का प्रथम दर्शन हुआ था। लोरिक की वीरता और शौर्य प्रदर्शन से वह काफी प्रभासित थी। वह धवल गृह पर चढ़ने का प्रयत्न करने लगा। और उसने सोचा कि चाहे जैसे भी हो मुझे चंदा को प्राप्त करना है फिर क्या था लोरिक चंदा से मिलने के लिए जाने लगा। उसकी पत्नी मैनां ने जब यह समझ लिया, लोरिक चंदा के प्रेम के वशीभूत हो गया है। तब उसने अपनी सास से कहा कि आप इनको रोकिए। ये मुझे छोड़कर चंदा के प्रेम में आसक्त हो गए हैं। इतना ही नहीं मैंना ने कहा कि मैं अपने घर चली जाऊंगी। मैंना की शिकायत सुनकर उसकी सांस खोलिन ने कहा यह यदि ऐसा करता होगा तो मै उसकी जीभ खींच लूंगी। मैंना लोरिक को कई तरह से खोजती रही। बाद में चंदा और मैंना दोनों का विवाद भी होता है फिर दोनों को समझा कर शांत करती है। लोरिक चंदा को लेकर परदेश जाने लगता है तो रास्ते में कुँवरु से भेंट होती है तो वह कहता है कि तुम महर की दुहिता को लेकर कहां जा रहे हो? इसके अलावा वह यह भी कहता है कि तुम्हारी पत्नी मंजरी है, तुम्हारा उससे विवाह हुआ है इसलिए तुम्हारा उसके साथ जाना अच्छा नहीं है। जब वह जा रहा है रास्ते में वामन से लोरिक की भेंट होती है। इस पर चंदा कहती है कि तुम्हारा हमारा विवाह हुआ था लेकिन तुम इस स्थिति में रहे कि हमारा तुम्हारा संबंध स्थाई नहीं रह पाया जिसके कारण मैं अपने नैहर चली गई और यह वीर पुरुष है जिसके साथ मैं जा रही हूं। इसने राजा रूपचंद के मंत्री बांठा को मारा है। फिर जब वह आगे बढ़ा तो एक बोदि़या नाम का कलिंग राय का एक दानी दान मांगता था लोरिक से इसका युद्ध हुआ और फिर युद्ध में जीतने के बाद वह आगे बढ़ा। आगे जाने के क्रम में एक पेड़ के नीचे लोरिक और चंदा ने विश्राम किया। वहीं पर एक विषधर सांप आकर चंदा को डँस लेता है जब लोरिक ने सांप को भागते हुए देखा तो उसे पटक कर मार डालता है। सांप के काटे जाने के बाद चंदा मुर्च्छित सी हो गई और वह सांप को उलाहना दे दे कर विलाप करने लगा। उसे अपना पिछला जीवन याद आने लगा। उसने कहा कि मैंना बांठा को मारा। राजा रूपचंद को सीधा किया, महर की प्रतिष्ठा बचायी। आज मैं प्रेम की ज्वाला में तिल तिल कर जल रहा हूं। उस इस स्थिति में देखकर एक गारूडी आया उसने चंदा को जीवित किया। वहां से चलने के बाद दोनों हरदी पाटन पहुंचे। वहां के राजा ने बुला कर पूछा कि तुम लोग कैसे आए हो? इसके अलावे यह भी कहा कि कई अगम घाट और रास्ते जाने लायक नहीं है फिर यहां तक आने में कैसे सफलता मिली–

"राउ बुझं तुम्ह कैसे आएहु। बाट घाट कस आवन पाएहु।

नगर मुंगेर जउहि हम आए। राइ करिंगा भेजि हकराए।
देखन पाय राइ के आएउ। दइय संजोगे आनि मेराएउ।।"[22]

हरदी पाटन के राजा ने कहा कि तुम बहुत अच्छा किये हो कि मेरे यहां आए हो। हमारे पास बहुत कुछ है। तुम इन सबों को समझो कि यह मेरा ही है और तुम प्रसन्नता पूर्वक यहां रहो। वह राजा बहुत खुश हुआ और इसने एक घोड़ा दिया जिसको दौड़ते हुए वह हर्षित होते हुए घर पर आया। वह सोच रहा था कि वहीं पुरुष धन्य है जो परदेश में भी जाए और लोग उसकी करनी का बखान करें। लोरिक और चंदा जब हल्दी पाटन में रहने लगे, तो मैंना रात दिन रोती रहती थी और जिस रास्ते से लोरिक आता उस रास्ते को हमेशा निहारती रहती थी–

"निसि दुख मैनहिं रोई बिहाए। सभ दिन रहइ नैन पंथ लाए।
मकु लोरिक एहि माारग आवइ। कइ परिया गह आपु जनावइ।
निसि दिन झुरवइ आस पियासी। रोवई खिन खिन होइ निरासी।"[23]

उन दिनों गोबर नगर में व्यापारियों का दल आया था। वे कई नगरों और देशों में जाकर अपना व्यापार किया करते थे। जब मैंना और उसकी सास को यह पता चला कि सुरजन एक ब्राह्मण है वह हरदी पाटन जाने वाला है। ऐसा सुनते हुए दोनों दौड़कर आई और उन लोगों ने कहा कि तुम वहां जा रहे हो हम लोगों की बात ध्यान से सुनकर जाओ। मैंना कहती है कि मेरे स्वामी का नाम लोरिक है वह सूरज की कलाओं से परिपूर्ण है और चंदा मेहर की कन्या है वह लेकर हरदी पाटन चली गई है। तुम वहां जाना तो मेरे बारे में कहना। ऐ सुरजन! हर महीने उसके बिना मेरी आंखें रात दिन आंसू बहाती है। वह सुरजन से आरजू भरे शब्दों से कहती है कि चाहे जैसे भी हो तुम देव पूजन के बहाने ही सही घर पर तो आ जाओ–

पाय लागि कइ सुरिजन, मो पति जाइ मनाइहि।
हूवा देव उठान वीर पूजा मिसु आइहि।"[24]

वह अपनी ओर से कई तरह की बातें कहती है, देखो, शिशिर का महीना आ गया। इस महीने में स्त्री पुरुष एक साथ रहते हैं। लेकिन मेरा वह पति चंदा के साथ रहता है। उससे मेरी ओर से कहना हे स्वामी! तुम्हारे बिना मैं ऐसी हो गई थी जैसे कमलिनी जल भूनकर हो जाती है। इतना ही नहीं तुम यह भी कहना कि मैं तुषार से मरती जा रही हूं। तुम बहुत जल्दी आ जाओ। इसी तरह वह फागुन चैत मास से लेकर हर महीने में अपने मन में उठने वाले भावो को भी कहती है। वह यह भी कहती है कि हमने अपना पूरा दुख तुमको सुना दिया। तुम जाकर चंदा से कहना कि वह मेरा पति किसी भी तरह लौटा दे। उसके बिना एक वर्ष तक अकेले रहते हुए मुझे बीत गया है–

"मै सभ दुख तुम्ह आगे रोवा। चांद नांह मोर देहु बिछोवा।
तू हरि पूनिउं चांद सपूनी। खटरितु कीनी सेज मोरि सूनी।
कहि सुरिजन असि चांद न कीजइ। नांहु मोर मोहि दखिना दीजइ।
एकु बरिसु मोर गा बिनु नाहा। दई का उरू कीजइ चित मांहा।"[25]

मैंना कहती है कि तुम हरदी पाटन जा रहे हो, यह मेरे लिए परम सौभाग्य है। तुम चंदा को लेकर घर आओ। तुम्हारा व्यापार बहुत बढ़े और अपना काम करते हुएं तुम लोरिक को बुलाओ। हे सुरजन! मैं तुम्हें घोड़ा दूंगी, जिस पर तुम हवा के समान बैठकर उड़ोगे। इतना ही नहीं तुम यदि लोरिक को ला देते हो, तो तुम्हें जो भी खर्च करना पड़ेगा उसका मैं दस गुना तुम्हें लाकर दे दूंगी। सुरजन गोबर नगर से हरदी पाटन के लिए प्रस्थान कर गया। वहां जाकर उसने सोचा कि मैं किस प्रकार लोरिक से मुलाकात करूंगा। फिर पूछते पूछते वह लोरिक के यहां गया। उस समय वह सो रहा था। दास के सहारे उसने लोरिक को जगाने का संदेश दिया। जब लोरिक जगकर आया तब उसने उसका हाथ देखकर कई तरह की भविष्यवाणी की। इसके अलावा लोरिक के जीवन में जो जो बीता था उन सारी घटनाओं को भी वह कह गया। फिर उसे लग रहा था कि जरूर यह कोई बहुत बड़ा पंडित है और विद्वान है क्योंकि पुराण और पतरा की बात कह सुनाता हैं लेकिन उसकी भाषा में हमेशा बिरह का भाव ही व्यक्त हो रहा है। फिर उसने उसकी राशि बता कर उसके फलाफल के संबंध में भी कहा और बाद में उसने यह भी कहा कि तुम्हारा राज पाट गोबर में लिखा हुआ है और तुम मैना के स्वामी हो। फिर तुम उसे छोड़कर यहां क्यों आए हो? फिर सुरजन ब्राह्मण ने मैना से लेकर चंदा और उसकी मां इन सबों के बारे में भी कहने लगा। यह सब सुनकर लोरिक को बहुत आश्चर्य हुआ। यह कैसे मेरे जीवन की घटनाओं को जानता है। मेरी मां को जानता है, मैंना को जानता है। चंदा को जानता है और ऐसा लग रहा है यह कोई परदेसी नहीं है मेरे ही देश का कोई रहने वाला है। यह धन्य है। यदि यह मेरी मां, भाई, और मैनां का समाचार बताया तो मैं इसको धन्य समझूंगा–"

मैना सबदु बिपर जु सुनावा। सुना लोर हिए गहबरि आवा।
चांद बात बाभन कत पायहु। अउ मैना कह आइ सुनायहु।
कहु पडित फिर कित हुत आवा। कइ तू हरदी नगर पढावा।
मैना नांउ कहां तू सुना? अउ चांदा कर कहुवा गुना।
तू न होसि बांभन परदेसी। देखउ लखिन आहि सहदेसी।"[26]

सुरजन ने लोरिक से कहा कि मैंना जो तुम्हारी पत्नी है वह रात दिन जितने भी राहगीर आते जाते हैं उनसे तुम्हारा हाल समाचार पूछती है और वह यह भी पूछती है कि कोई हरदी पाटन जाने वाला है कि नहीं? जिससे मैं अपना संदेश भिजवा सकूं। फिर उसने यह भी कहा कि मैं व्यापार करने के लिए हरदी पाटन आया। जब मैंना और खोलिन ने सुना कि मैं हरदी पाटन जा रहा हूं तो दोनों ने मेरा पैर पकड़ लिया और कहा कि जाकर तुम लोरिक को समझाना और कहना कि हम दोनों उसके बिना बहुत व्याकुल है। सुरजन की बात सुनकर लोरिक को गोबर नगर अपनी मां खोलिन और पत्नी मैंना की याद सताने लगी और उसने कहा कि मैं वहां जरूर चलूंगा और ऐसा सोचकर वह लोरिक गोबर के लिए प्रस्थान किया। जब लोरिक घोड़े पर चढ़कर अपने गांव आया। आते ही उसने अपनी मां को पैरों पर गिरकर मनाया। तब माता कहने लगी, पुत्र तुम ऐसा मत करो। तुम अपनी बुढी मां के दुख को भी देखो। फिर उसने चंदा और मैनां दोनों रानियां को बुलाया। वे दोनों उसके पैरों पर गिर पड़ी और बाद में दोनों ने काजल और सिंदूर से अपना श्रृंगार किया। फिर ये दोनों आपस में सद्भाव पूर्वक रहने लगी।

"चढि तुरै लोर घर आवा। पाय लागि कइ माइ मनावा।
मात कहइ अस पूत न कीजइ । बूढी माइ कह दोख न दीजइ।
खोलिन बहुअइ दोऊ आनी। चांदा मैना दुनइ रानी।
पाइ परी अंकवारइ धरी। काजर सेन्दुर दोऊ करी।
अगिनी परजारि कइ रसोइ बधारी। कोठा बारी सेज संवारी।
चांद सुरूज अउ मैना बरिस सहस भा राजु।
गावहुं गीत सहेलिया गोबर बधावा आजु।"[27]

इस तरह हम देखते हैं कि मुल्ला दउद् द्वारा लिखित चांदायन एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें जीवन जगत से लेकर राजा महाराजा का प्रेम उत्कर्ष, सांसारिक जीवन आदि पल्लवित पुष्पित हुआ है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–01
2. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–08
3. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–09
4. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–16
5. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–23
6. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–29
7. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–33
8. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–42
9. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–44
10. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–52
11. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–54
12. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–55
13. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–59
14. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–60
15. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–92
16. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–94
17. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–98
18. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–103
19. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–105
20. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–119

21. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–154
22. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–333
23. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–337
24. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–344
25. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–352
26. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–366
27. चांदायन–मौलाना दाऊद– प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा–1967–पृष्ठ सं०–389

भारतीय सिनेमा में थर्ड जेंडर

कुलदीप कुमार पाठक
शोधार्थी, के.आर.पी.जी. कॉलेज, मथुरा
****डॉ. संजीव कुमार***
प्रोफेसर (हिंदी) के.आर.पी.जी. कॉलेज, मथुरा
*****डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह***
सहायक प्रोफेसर (हिंदी), राज.महावि. गोंडा, अलीगढ़

सारांश

भारत उन देशों में से एक है जहां एक वर्ष में सबसे अधिक फिल्मों का निर्माण किया जाता है। सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित होने वाले सिनेमा का एक बड़ा दर्शक वर्ग है। मुख्यधारा का हिंदी सिनेमा भारत में सबसे व्यापक रूप से वितरित होने वाला सिनेमा है। आइडेंटिटीकंस्ट्रक्शन बॉलीवुड में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक है। भारत में फिल्म निर्माता पारंपरिक भारतीय विषयों के घिसे-पिटे दायरे से बाहर निकलने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन तीसरे लिंग के चित्रण के लिए कोई या बहुत कम छूट दी गई है, एक ऐसा विषय जो अभी भी उस देश में एक वर्जित विषय है जहां सेक्स पर चर्चा स्वयं नैतिक प्रतिबंध से बंधी है। बॉलीवुड में उनका प्रतिनिधित्व और निर्माण लिंग पर प्रचलित विचारधाराओं से मुक्त नहीं है जहां उन्हें तीसरी श्रेणी के रूप में लिया जाता है। भारत में उन्हें केवल उनके यौन रुझान या लिंग रुझान के कारण उत्पीड़ित के रूप में दिखाया जाता है। इस संदर्भ में, यह अध्ययन करना दिलचस्प होगा कि बॉलीवुड तीसरे लिंग को कैसे चित्रित कर रहा है और पिछले दशकों में उनके चरित्र में क्या बदलाव आए हैं। शोध पत्र में हिंदी तथा हिंदीत्तर फिल्मों में थर्ड जेंडर समुदाय का विश्लेषण किया गया है, जिसका प्रमुख उद्देश्य भारतीय सिनेजगत की चुनिंदा फिल्मों का विश्लेषण करके तीसरे लिंग की पहचान निर्माण को दिखाने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्दः तीसरा लिंग, बॉलीवुड, चित्रण, फिल्में, मल्टीमॉडल प्रवचन।

प्रस्तावना

यथासर्वत्र भारतीय सिनेजगत पर भी सूचना एवं प्रौद्योगिकी का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में परिलक्षित होता है। ग्राफिक्स एवं तकनीकों के प्रयोग से सिनेमा को दिन व दिन अधिक से अधिक रोचक बनाया जा रहा है। 21वीं सदी में भारतीय समाज में भी बहुमुखी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे हैं परंतु कुछ चीजें है जैसे भारतीय

समाज के हाशियाकृत समुदायों को मुख्यधारा में लाने के लिए आम इंसान की सोच में परिवर्तन। इस परिवर्तन से हमारा समाज अभी भी कोसों नहीं अननिगत मीलों दूर है। दलित, आदिवासी, स्त्री के अतिरिक्त एक और हाशियाकृत समाज है थर्ड जेंडर समुदाय। जहां तक प्रश्न है हिंदी सिनेमा की, जो कि एक रूमानी दुनियां है परंतु स्वतंत्रता के बाद आज भी किसी भी चलचित्र में किसी किन्नर को मूल रूप से अभिनय करने का मौका शायद ही दिया हो। प्रस्तुत शोधालेख में विभिन्न भारतीय भाषाओं तथा हिंदी सिनेमा में निर्मित विभिन्न फिल्मों में प्रस्तुत किए गए थर्ड जेंडर किरदारों पर विमर्शात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

वर्तमान युग में जीवन की जटिल परिस्थितियों, सामाजिक रिश्तों, मानसिक अंतर्द्वंद्वों एवं व्यक्तिगत तनावों के सही प्रतिबिंब के रूप में कहानी पाठकों की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा के रूप में स्थापित है। साहित्यकार द्वारा मानवीय परिवेशगत मूल्यों का उद्‌घाटन वस्तुस्थितिपरक स्वरूप में करने के प्रयत्न के फलस्वरूप ही उत्तरआधुनिक साहित्य-सृजन होता है। अब साहित्य मात्र सैद्धांतिक पक्षों का उद्‌घाटन करने का साधन मात्र नहीं रह गया है और न ही इसमें रूमानियत के प्रस्तुतीकरण को ही बहुत ज्यादा महत्व प्राप्त हो रहा है। समाज में होने वाले राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं वैचारिक परिवर्तनों के प्रति साहित्यकार की सजगता ही विमर्शात्मक साहित्य के सृजन की पृष्ठभूमि है। साहित्यकार अपनी कृतियों के विभिन्न पात्रों के माध्यम से विभिन्न सामाजिक परिवर्तनों को समग्रता के साथ प्रकट करने का प्रयत्न करता है। उत्तरआधुनिक साहित्य में अमानवीय हिंसा भयावह गरीबी, घुटन, ग्लानि, अनाचार, अनिश्चितता, भुखमरी, व्यक्तिगत स्वार्थ तथा सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक अस्थिरता के प्रकट होती है। साथ ही व्यक्तिगत स्तर पर मानव जाति पूर्व में किसी भी युग की तुलना में वर्तमान समय में अपने स्व अर्थात स्वयं के अस्तित्व के अन्वेषण के प्रति अधिक सजग परिलक्षित होती है। अस्तित्व के अन्वेषण की छटपटाहट ही विमर्शात्मक साहित्य को धार देती है। आज साहित्य में दलित, आदिवासी, स्त्री विमर्शों के अतिरिक्त वृद्ध, किसान, युवा, तथा थर्ड जेंडर विमर्श आदि की उपस्थिति अस्तित्व की तलाश का ही परिणाम है।

उत्तर आधुनिक काल की हिंदी कहानी में थर्ड जेंडर विमर्श एक ज्वलंत विषय है, जिसकी चर्चा आज साहित्य जगत में जोरों से चल रही है। लैंगिक विकलांगों की समस्याएँ, स्वतंत्रता, अस्तित्व के प्रति चेतनता को कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिल रही है। वर्तमान युग व्यक्ति-स्वातंत्र्य और समानता का युग है। आज मानव दासता की बेड़ियों को तोड़कर एक नई स्वातंत्र्य जीवन-चेतना के साथ प्रगति के अछूते शिखरों का स्पर्श करने के लिए सतत उद्यमिता है। आज प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के चहुमुखी विकास के लिए समान अधिकार प्राप्त हैं, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष या तृतीय लिंगी किन्नर, हिजड़ा। परंतु दैनंदिनी जीवन में पितृसत्तात्मक संस्था, परिवार, धार्मिक संस्कारों एवं परंपराओं तथा अन्य सामाजिक मूल्यों का प्रभाव अभी बहुत व्यापक है और जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष का ही प्रभुत्व है और यही कारण है कि जिस परिवार में लैंगिक विकलांग बच्चे का जन्म होता है वहां उस बच्चे के सबसे बड़े शत्रु के रूप में पिता नामक प्राणी उपस्थित होता है। इस समाज में जिस प्रकार एक पुरूष, स्त्री का स्थान विशेष है, उसी प्रकार लैंगिक विकलांग का होना चाहिए परंतु उसकी सामाजिक हैसियत कुछ है ही नहीं। इसलिए यह तय करना है कि थर्ड जेंडर समुदाय की आजादी के लिए रूढ़िवादी सोच को बदलना नितांत आवश्यक है।

किन्नर विमर्श के प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हो सकते हैं–

1. एक लैंगिक विकलांग व्यक्ति का हिजड़ा, या किन्नर होने के कारण समाज के स्पष्ट लिंग धारक सत्ता द्व ारा जो शोषण हो रहा है, उसके विरूद्ध संघर्ष और स्वयं किन्नर का मनुष्य के रूप में व्यवहार कर सकने और उसी प्रकार व्यवहार पाने के प्रयासों का लेखा–जोखा ही थर्ड जेंडर विमर्श है।
2. 'थर्ड जेंडर विमर्श' अपने समय और समाज में किन्नरों के जीवन की वास्तविकताओं को तथा संभावनाओं को तलाश करनेवाली दृष्टि है।
3. 'थर्ड जेंडर विमर्श' का अर्थ है सबसे पहले किन्नरों की प्रचलित छवि का आकलन करना। उसपर प्रश्न–चिह्न लगाना, उसे दोबारा समझने की सकारात्मक पहल करना।
4. थर्ड जेंडर विमर्श' और कुछ नहीं बल्कि आत्मचेतना, आत्मसन्मान, आत्मगौरव, समता और समानाधिकारी होने की पहल का दूसरा नाम है।
5. 'थर्ड जेंडर विमर्श' वस्तुत: समाज में अन्य सक्षम लैंगिक प्राप्त लोगों की स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद की संकल्पना है, जो कि लैंगिक विकलांगों को मानव ही नहीं मानते।
6. 'थर्ड जेंडर विमर्श' अपनी 'अस्मिता' की पहचान 'स्व' की चिंता 'अस्तित्व बोध और अधिकार को जतलाने और बतलाने का विचार चिंतन है। स्पष्ट कहा जा सकता है कि सदियों से होते आए शोषण और दमन के प्रति किन्नर तना ने ही 'थर्ड जेंडर विमर्श' को जन्म दिया है। जहाँ 'मैं' की चिंता का एहसास है, वहीं से समझना चाहिए कि 'थर्ड जेंडर विमर्श' का प्रारंभ है। जब भावना की अपेक्षा बुद्धि की कसौटी पर, विषमता की अपेक्षा समता की कसौटी पर, परंपरा की अपेक्षा आधुनिकता की कसौटी पर, संस्कृति की अपेक्षा कार्य शक्ति की कसौटी पर और लिंगात्मक की अपेक्षा गुणात्मक कसौटी पर व्यक्ति के मूल्यांकन का सूत्रपात होगा, तभी 'थर्ड जेंडर विमर्श' हेतु चिंतन का आधार मिलेगा और इस दिशा में बढ़ने के लिए बल मिलेगा।

पाश्चात्य सिने जगत और थर्ड जेंडर

ब्रिटिश, कनाडाई और अमेरिकी फिल्मों की कहानियों में कई समलैंगिक चरित्र शामिल किए गए हैं। इस सदी की समलैंगिक फिल्मों के कुछ उदाहरण: द जैसी ब्रिटिश फिल्में लेदर बॉयज (1961) या संडे ब्लडी संडे (1971), फ्रांसीसी फिल्में जैसे ऑर्फी (1950) या उने रोब डीश्एटेश (1996), और अमेरिकी फिल्में जैसे डेमनेशन इफ यू डोंट (1987) या बॉयज डोंट क्राई (1998)।

भारतीय सिनेमा और थर्ड जेंडर

विदित है कि 3 मई 2013 को भारतीय सिनेमा पूरे सौ साल का हो गया। सौ वर्षों से भी अधिक लंबे इस सफर में भारतीय सिनेमा ने भारतीय समाज पर कई तरह के प्रभाव डाले हैं। अपने

सम्पूर्ण जीवन में भारतीय सिनेमा भारतीय समाज के दर्पण के रूप में हम सभी के मध्य विद्यमान है। यथार्थवादी सिनेमा और समानान्तर सिनेमा के माध्यम से फंतासी से अलग हटकर वास्तविकता को पर्दे पर स्थान दिया जाना सिनेमा की समाज के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाता है। हिंदी भाषा के अतिरिक्त- भारत में क्षेत्रीय फिल्म उद्योग ने भी अपने पांव पसारे और बहुत ही महत्वकपूर्ण फिल्में-भारतीय सिने जगत को दीं। 1917 में, पहली बंगाली फीचर फिल्म 'नल दमयंती' बनी तो 1919 में, पहली दक्षिण भारतीय फीचर फिल्म 'कीचक वधम' नामक मूक फिल्म बनाई गई। 'जमाई षष्ठी' बंगाली में पहली ध्वनि फिल्म थी, जिसे 1931 में प्रदर्शित किया गया था और यह मदन थियेटर लिमिटेड द्वारा निर्मित की गई थी। 'कालिदास' तमिल की पहली ध्वनि फिल्म थी, एचएम रेड्डी द्वारा निर्देशित 31 अक्टूबर 1931 को मद्रास में प्रदर्शित की गई थी। 'अयोध्येचा राजा' पहली मराठी फिल्म थी, जिसे 1932 में वी. शांताराम द्वारा निर्देशित किया गया था।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है सिनेमा और समाज एक दूसरे के प्रतिपूरक है और ऐसे में भारतीय सिने जगत के कुछ दिग्गजों ने लीक से हटकर फिल्में बनाने का कार्य किया। जिन विषयों को सामान्यत: कोई चर्चा में भी नहीं लाना चाहता है उनमें से एक है किन्नर विमर्श या थर्ड जेंडर विमर्श। साहित्य एवं समाज तथा सिनेमा भी भी इस विमर्श की दस्तक सुनाई देती है।

मुझे सिने जगत में हिजड़ों की उपस्थिति के नाम पर यदि कोई फिल्म सर्वप्रथम स्मरण में आती है तो वह है महमूद अभिनीत 'कुंवारा बाप' (1974)। महमूद ने भूत बंगला, लव इन टोक्यो, पड़ोसन, जैसी हिट फिल्मों में अपने अभिनय की कला से अपने दर्शकों को खूब हंसाया परंतु उन्होंने 'कुंवारा बाप' जैसी हिट फिल्म में ऐसा अभिनय किया कि दर्शकों को रोने पर मजबूर कर दिया। कुंवारा बाप जैसी फिल्म को बॉलीवुड की उन फिल्मों में से एक माना जाता है जिसमें एक बेहतर अभिनय देखा जा सकता है। इसमें वर्णित दृश्य में भी जब महमूद बच्चे को सड़क से उठाकर ले आता है तब हिजड़े आते है और उससे पूंछते हैं कि वो तो क्वांरा है तो बच्चा कहां से आया। बच्चे को सड़क से घर तक उठाकर लाने का जो दृश्य गाने के साथ चलता है उसमें हिजड़ों की भी पूरी-पूरी सहभागिता यथा भारतीय समाज परंपरा रहती है परंतु उनकी उपस्थिति से दृश्य बहुत ही जीवंत बन जाता है। वे मूलत: हास्य अभिनेता थे मगर करुणा की अभिव्यक्ति में उनका कोई सानी नहीं। कुँआरा बाप के गाने में जब हिजड़े पूछते हैं कि ये बगर माँ का बच्चा कहाँ से लाये, बोलो न, बोलो न तब वे जिस तरह बच्चे के मिलने की दास्तान बतलाते हैं और उस लाइन को रोते गाते हैं, मैं वापस लौटा, फिर बच्चे को उठाया, गले से यूँ लगाया.....अपना कलेजा भी हिल जाता है..(http://mishrsunil.blogspot.in/2014/04/blog-post_17.html)

सिने जगत में बेहतरीन उपस्थिति के लिए प्रसिद्ध सदी के महानायक अमिताभ बच्चन ने भारतीय सिनेमा में हर तरह के किरदार निभाए हैं। प्रकाश मेहरा द्वारा निर्देशित फिल्म 'लावारिस' में अमिताभ बच्चन पर फिल्माया गाना - मेरे अंगने में तुम्हारा क्या काम है को भला कौन भूल सकता है।

सन् 1977 की फिल्म 'अमर अकबर अन्थोनी' का एक मशहूर गाना 'तैय्यब अली प्यार का दुश्मन हाय-हाय' काफी मशहूर हुआ था। फिल्म में ऋषि कपूर अपनी प्रेमिका के पिता को सबक सिखाने के लिए कुछ एक किन्नरों को पैसे देकर उनके साथ मिलकर ये गाना गाते हैं।

हिंदी सिनेमा की अगर हम बात करें तो सन् 1974 में आई फिल्म 'नया दिन नयी रात' में संजीव कुमार ने यूँ तो नौ किरदारों को निभाया था लेकिन उनके द्वारा अभिनीत ट्रांसजेंडर के किरदार को शायद ही कोई भूल पाया है। अगर गौर किया जाए तो शायद ये ऐसी पहली फिल्म होगी, जिसमें एक मेन लीड एक्टर ने इस प्रकार का किरदार निभाया हो। ये बात और है कि इस फिल्म में ट्रांसजेंडर की समस्याओं को उस रूप में चित्रित नहीं किया गया है लेकिन हिंदी सिनेमा में 'थर्ड जेंडर' से सम्बंधित मुद्दों के लिए एक रास्ता खुल चुका था, हालांकि इसे आकार लेने में कई साल लग गए। इस फिल्म के बाद कई फिल्में आयीं, जिनमें हास-परिहास या हीरो-हीरोईन की मदद के लिए ऐसे किरदारों को फिल्म में जान-बूझकर डाला जाता था। संजीव कुमार का नाम जेहन में आते ही एक ऐसे अभिनेता की तस्वीर उभरकर आती है, जिसने सिनेमा में कई चरित्रों को अपने जीवंत अभिनय से ऐसे साकार किया की हर बार अभिनय की एक नयी मिसाल दिखने को मिलती है. संजीव कुमार कभी नायक तो कभी खलनायक तो कभी सहनायक की भूमिका में अभिनय के दम पर सबसे ज्यादा आकर्षित करते थे. इसलिए वह एक इंद्र धनुषी अभिनेता थे। उनके द्वारा निभाए किरदारों में अभिनय के सभी रंग देखने को मिलते हैं। संजीव कुमार ने फिल्म 'नया दिन नयी रात' में एक या दो नहीं बल्कि नौ अलग-अलग भूमिकाएं निभाकर दर्शकों को अचंभित कर दिया। फिल्म में संजीव कुमार ने लूले- लंगड़े, अंधे, बूढ़े, बीमार, कोढ़ी, हिजड़े, डाकू, जवान और प्रोफेसर के किरदार को निभाकर जीवन के नौ रसों को रुपहले पर्दे पर साकार किया। (http://www.bollywoodblogmagazine.com /PageDetails.aspx?id=421&cat=Life% 20and%20Journey%20of%20Superstar)

'सड़क' (1991) में रिलीज हुई इस फिल्म में सन 1956 में जन्में नासिक के एक ऑटोचालक के घर जन्मे सदाशिव अमरापुरकर (वास्तविक नाम गणेश कुमार नारवोडे) ने एक निर्मम किन्नर की एक यादगार भूमिका निभाई थी। संभवत: उस भूमिका के पूर्व एक आम आदमी ने ये सोचा भी न होगा कि कोई हिजड़ा देह व्यापार का सरगना हो सकता है और जो समुदाय सदा से ही समाज के द्वारा उपेक्षित हुआ हो वह इस प्रकार के कृत्य भी कर सकता है। सड़क फिल्म के 'महारानी' किरदार को सदाशिव अमरापुरकर ने माथे पर लाल बड़ी बिंदी और चेहरे पर व्यंगात्मक कुटिल मुसकान वाली एक निर्मम किन्नर 'महारानी' की उनकी भूमिका आज भी दर्शको के जहन में सिहरन जगाती है। अमरापुरकर ने फिल्म सड़क में एक निर्मम किन्नर की एक यादगार भूमिका निभाई थी। फिल्म सड़क में इन्होंने एक किन्नर के किरदार को इतनी जीवंतता से निभाया कि इसके लिए इन्हें फिल्मफेयर अवॉर्ड से सम्मानित किया गया। इसके साथ ही वह सर्वश्रेष्ठ नकारात्मक भूमिका के लिए सम्मान पाने वाले पहले अभिनेता बन गए थे। महेश भट्ट की फिल्म 'सड़क' में किन्नर खलपात्र महारानी की भूमिका को जीवंत करने वाले सदाशिव को इस फिल्म के लिए बेस्ट विलन का पुरस्कार भी मिला था।

"गुलाबी आईना" हिजड़ों के जीवन पर आधारित एक फिल्म गुलाबी आईना ने विदेशों में तो खासी लोकप्रियता हासिल की है लेकिन भारत में उसे सेंसर बोर्ड की हरी झंडी नहीं मिल सकी है। हिजड़ों के सामने आने वाली मुश्किलों और समलैंगिकता के मुद्दे पर बनी फिल्म 'गुलाबी आईना' तीस अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोहों में दिखाई जा चुकी है और ब्रिटेन में हाल ही में इसका प्रदर्शन मेनचेस्टर कॉमनवैल्थ इंस्टीट्यूट में किया गया।

लेकिन यह फिल्म भारत में प्रतिबंधित है क्योंकि सेंसर बोर्ड ने इसे प्रमाण–पत्र ही नहीं दिया है, यहाँ तक कि वयस्कों के लिए प्रमाण–पत्र भी नहीं। 'गुलाबी आईना' के निर्देशक श्रीधर रंगायन के अनुसार सेंसर बोर्ड ने प्रमाण–पत्र देने से इस तर्क के साथ मना कर दिया है कि फिल्म अश्लीलता से भरी हुई है। चालीस मिनट की यह फिल्म दो किन्नरों 'शब्बो और बिब्बो' की कहानी है। दोनों एक ऐसे युवा समलैंगिक से जूझती हैं जो एक अन्य युवा से प्रेम करता है। यानि फिल्म में समलैंगिक संबंधों की जटिलता और सामाजिक स्वीकृति पर बारीकी से प्रकाश डाला गया है। वैसे तो यह बॉलीवुड फिल्म नहीं है लेकिन इसमें बहुत सा ऐसा ही मसाला इस्तेमाल किया गया है जो आमतौर पर उन फिल्मों में होता है जैसेकि गाने और नृत्य वगैरा। गुलाबी आईना के निर्देशक श्रीधर रंगायन के अनुसार "मैं समझता हूँ कि ऐसे चरित्र भारतीय सिनेमा में अभी तक किसी फिल्म में प्रदर्शित नहीं किए गए हैं। दरअसल इन चरित्रों की आवाज को बिना किसी बाधा और ऐतराज के जगह मिलनी चाहिए।"(http://www.bbc.com/hindi/ entertainment/ story/2004/05/ printable/ 040510_ pink_mirror.shtml) वैसे भारतीय उपमहाद्वीप में पुरुषों द्वारा महिलाओं के कपड़े पहनना कोई नई बात नहीं है क्योंकि शुरुआती जमाने में जब महिलाओं को फिल्मों में काम करने की इजाजत नहीं थी तो पुरुष ही महिलाओं की भूमिकाएं निभाया करते थे। इस फिल्म में भी दो पुरुषों एडविन फर्नांडीस (शब्बो) और रमेश मेमन (बिब्बो) ने मुख्य भूमिकाएं निभाई हैं। हिजड़ों के चरित्र भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में खासे आकर्षण का केंद्र रहे हैं और अभिनेत्री सीमा बिस्वास ने 'क्वींस! डेस्टिनी ऑफ डांस' में किन्नर की भूमिका निभाई। इस फिल्म में उन्होंने वास्तविक हिजड़ों के साथ काम किया है। बिस्वास कहती हैं कि उनका अनुभव बहुत अच्छा रहा। बिस्वास ने एक वक्तव्य जारी कर कहा है, 'पूरी टीम के साथ काम करने का अनुभव अद्भुत रहा। वे (हिजड़े) जीवन से भरे हुए और दिल से बहुत शुद्ध हैं।' ज्यादातर फिल्मों में हिजड़ों की मजाकिया तस्वीर पेश की जाती है लेकिन डेविड एटकिंस की 'क्वींस! डेस्टिनी ऑफ डांस' बताती है कि वे वास्तविक जीवन में किस तरह के मुद्दों का सामना करते हैं। मिराज एंटरटेनमेंट लिमिटेड के निर्माण में बनी यह फिल्म 29 अप्रैल को प्रदर्शित हुई। फिल्म के ज्यादातर किरदार वास्तविक जीवन के हिजड़े हैं। बिस्वास के अनुसार 'यह फिल्म समाज को एक प्रकार का संदेश देती है कि यह बदलाव का समय है, हिजड़ों को स्वीकार किए जाने की जरूरत है न कि उनका तिरस्कार करने की क्योंकि वे भी मानव हैं।"(http://www.deshbandhu.co.in/newsdetail/ 2319/7/)

मणिरत्नम की बॉम्बे (1995) फिल्म हिजड़ा के जीवन के सकारात्मक और नकारात्मक हिस्सों को विभिन्न दृश्यों के माध्यम से रेखांकित करते हुए बहुत ही कुशलता से सिनेजगत में मानवीय संवेदना के प्रस्तुतीकरण में एक प्रकार का टाइमस्पेस मैट्रिक्स में रखती है। फिल्म का हिजड़ा चरित्र मुंबई सांप्रदायिक दंगों के भीतर ध र्मनिरपेक्ष रूप से भटके हुए शेखर और शकीला के जुड़वा बच्चों में से एक को बचाता है। मणिरत्नम ने इस फिल्म में हिजड़ों के कार्यस्थल को बहुत ही जीवंतता के साथ चित्रित करते हुए बच्चे को उसकी दुनिया में वापस जाने का रास्ता खोजने में मदद करते हुए दिखाया है। फिल्म में दिखाया गया है कि एक हिजड़ा आसानी से विपरीत दिशा में मुड़ सकता है परंतु जहां अन्य सभी लोगों ने बच्चे को बचाने के लिए साहस दिखाने से परहेज किया वहीं एक हिजड़े ने अदम्य साहस का परिचय देते हुए एक अनजान बच्चे के जीवन की रक्षा की।

'बुलेट राजा' फिल्म में भोजपुरी फिल्मों के महानायक कहे जाने वाले रवि किशन ने हिजड़े का किरदार निभाया है। इस फिल्म का निर्देशन, स्टोरी राइटिंग डॉयलॉग, स्क्रीनप्ले आदि तिग्माशु धूलिया ने किए है।

'निर्मल पांडे' ने फिल्म 'दायरा' (1996) में हिजड़े की भूमिका निभाई और अमोल पालेकर द्वारा निर्देशित 'दायरा' में हिजड़े की भूमिका निभाने के लिए उन्हें फ्रांस फिल्म महोत्सव में पुरस्कार भी मिला। (http:// hindi-oneindia-com/news / 2010/02/19/actor & nirmal &pandey&passes&away-html) इस फिल्म की कहानी एक अपहृत युवती की कहानी है, जिसे जबरन एक पुरुष की तरह कपड़े पहनने पड़ते हैं और एक ट्रांसवेस्टाइट डांसर के बीच की प्रेम कहानी के इर्द–गिर्द घूमती है। अनुभवी अभिनेता अमोल पालेकर ने इस अभूतपूर्व फिल्म का निर्माण किया। निर्मल पांडे और सोनाली कुलकर्णी अभिनीत, दायरा को काफी आलोचनात्मक प्रशंसा मिली। यह कहानी एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति के रोमांटिक और सामाजिक जीवन को इतनी स्पष्टता से दर्शाती है कि यह अब दुनिया की सबसे प्रशंसित फिल्मों में से एक है। इस फिल्म की एक सबसे अच्छी बात यह है कि इतने सारे संवेदनशील मुद्दों से निपटने के बावजूद यह फिल्म काफी मनोरंजक है।

पद्मश्री से सम्मानित हिंदी फिल्मों के प्रसिद्ध अभिनेता परेश रावल ने महेश भट्ट की फिल्म 'तमन्ना' (1997) में हिजड़े की बहुत ही सशक्त भूमिका निभाई है। परेश रावल ने अपने सिने करियर की शुरुआत 1984 में प्रदर्शित फिल्म 'होली' से की। बहुत कम लोगों को पता होगा कि अभिनेता आमिर खान ने इसी फिल्म से अभिनेता के रुप में अपने सिने करियर की शुरुआत की थी। 'तमन्ना' परेश रावल की महत्वपूर्ण फिल्म में शुमार की जाती है। इस फिल्म में उन्होंने एक ऐसे 'हिजड़े' की भूमिका निभाई, जो समाज के तमाम विरोध के बावजूद एक अनाथ लड़की का पालन–पोषण करता है। हालांकि यह फिल्म टिकट खिड़की पर कोई खास सफल नहीं हुई लेकिन उन्होंने अपने भावपूर्ण अभिनय से दर्शकों के साथ ही समीक्षकों का भी दिल जीत लिया।

शबनम मौसी (2005) में आशुतोष राणा ने शबनम मौसी की भूमिका निभाई है। शबनम मौसी का नाम देश की पहली किन्नर विधायक के तौर पर इतिहास में दर्ज हो चुका है। अब से 14 साल पहले पूरे भारत में उनके नाम की चर्चा थी। लेकिन, अब वो बिल्कुल अकेली और उदास हैं। ये अकेलापन और उदासी उनकी जिंदगी में पहली बार नहीं आई है, बल्कि जिंदगी का हिस्सा रही है। महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण परिवार में पैदा हुई शबनम मौसी के पिता आईपीएस अधिकारी थे। इसके बाद भी उन्हें आदिवासियों ने पाला–पोशकर बड़ा किया। एक अखबार को दिए इंटरव्यू में शबनम मौसी ने कहा था कि, मैं चाहती हूं कि अगले जन्म में वही आदिवासी उनके माता–पिता बनें। शबनम मौसी कहती हैं, मैं अपने माता–पिता के बारे में कुछ नहीं जानती, जब उन्होंने ही मुझे प्यार नहीं दिया तो हम उनके बारे में क्या सोचें और क्या जानें। फरवरी 1999 में सोहागपुर सीट विधानसभा का चुनाव लड़ने वाली शबनम मौसी ने 18 हजार मतों से जीत हासिल की थी। उतने मत जितने उस वक्त के कांग्रेस और बीजेपी उम्मीदवारों के मिलाकर भी नहीं थे।

बिटवीन द लाइन्स – 'इंडियंस ड्रिट्स गेस्च्लेच' (2005) थोमस वार्टमेन द्वारा निर्देशित फिल्म है जिसमें फिल्म निर्माता ने फोटोग्राफर अनिता खेमका को "हिजड़ों" की गुप्त, जटिल और अस्पष्ट दुनिया में प्रवेश

करने का काम सौंपा। इस फिल्म में हम तीन "हिजड़ों" की दस्तां देखते हैं, जो अपने भारी मेकअप और आकर्षक कपड़ों के बावजूद, एक दूसरे से बहुत अलग हैं। एक ऐसी दुनिया के प्रतिनिधि जो लंबे समय से अपना वैभव खो चुके हैं, वे खुद को दान और वेश्यावृत्ति पर जीने के लिए बाध्य पाते हैं। फिर भी वे दुखद और बिना शर्त प्यार करने में सक्षम हैं, और ईर्ष्यापूर्वक अपनी अंतिम शेष स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं: न तो पुरुष और न ही महिला होने की।

'वेलकम टू सज्जनपुर' (2008) फिल्म में मुन्नी बाई के किरदार के माध्यम से हिजड़ों की राजनीति में सक्रियता को फिल्माया गया है। हिजड़ों का आधुनिक भारतीय राजनीति में प्रवेश अब एक पुरानी घटना हो चुकी है। शबनम मौसी ने पहले मध्य प्रदेश में विधायक बनकर एक नया अध्याय प्रारंभ किया फिर उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में हिजड़े का नगर निगम का महापौर चुना जाना, छत्तीसगढ़ के रायगढ़ में हिजड़े का नगर पालिका का अध्यक्ष चुना जाना आदि कुछ ऐसे उदाहरण है जो हिजड़ों का पुरूषों की मोनोपॉली को तोड़ने का संकेत देता है। इस प्रवृत्ति को फिल्म में मुन्नी बाई के चरित्र के द्वारा पूरे मानवीय संवेदना के साथ दरसाया गया है। श्याम बेनेगल की यह हास्य फिल्म एक गांव सज्जनपुर की कहानी के बहाने पूरे भारत की सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था की झलकी पेश करती है। इस फिल्म में मुन्नीबाई का किरदार रवि झांकल ने बहुत ही प्रभावी ढंग से निभाया है और अपने अभिनय से इस भूमिका को हिंदी सिनेजगत में एक हमेशा के लिए अमर कर दिया है। इस फिल्म के नायक महादेव का कार्य चिटठी लिखना है और जब हिजड़ा मुन्नी बाई चुनाब में खड़ा होता है तो महादेव से एक गीत लिखवाने आता है। इस दृश्य के संवाद न सिर्फ भारतीय मानस की पुरूष मानसिकता तो प्रस्तुत करता है बल्कि विश्व स्तर पर मर्दों की सोच को उजागर करता है – "हाय रे राजा.....काम से ही तो तेरे पास आई हूं, देख तू चार लाइन लिख दे ताकि सज्जनपुर के लोग डाल दें अपना...अपना....क्या? वोट मेरे आंचल में। तू खड़ा हो रहा है। खड़ा हो मेरे दुश्मनों का। हाय रे ....खड़ा हो मेरे दुश्मनों को। मैं तो खड़ी हो रही हूं। और राम सिंह की उस हत्यारिन भाभी को ऐसी ही जीतने नहीं दूंगी मैं। लेकिन तुझे सपोर्ट किस जाति का मिलेगा। मतलब ब्राह्मण, पटेल, दलित किस जाति। हाय मेरे राजा सभी मेरे हैं और मैं सब की। सब सपोर्ट करेंगे...क्यों..री.....सब सपोर्ट करेंगे आगे से पीछे तक नीचे से ऊपर तक। चल जब तो तू दबाकर एक फड़फडाता हुआ गीत लिख दे, ताकि मैं उसको गा....गाकर वोट मांग सकूं। .....मैं ....मैं नहीं लिखूंगा। ..(थोड़े अनुरोध करने के बाद) ठीक लिख दूंगा लेकिन किसको पता नहीं चलना चाहिए। नहीं तो ससूर हम फसेंगे। ....हाय हाय रे मेरे राजेश खन्ना। तेरा ये राज मैं दिल में छुपाके रखूंगी मैं अपने यहां दिल मे। चल लेले.....क्या.....हाय हाय अपना दाम ले ले चिटठी का। इन मर्दों का दिमाग नाड़े के ऊपर तो आता ही नहीं। चिकनी चिट्ठी .....मैं आ रही हूं लेने.....क्या.....चिट्ठी।" यह अकेला संवाद सम्पूर्ण भारतीय समाज में मर्द मानसिकता को उजागर करता है।

दोस्ताना (2008) अभिषेक बच्चन एवं जॉन अब्राह्म अभिनीत फिल्म में भी अपने मतलब के लिए दो युवकों द्वारा खुद को हिजड़ा दर्शाए जाने की कहानी है, जो कि भारत में अधिकांशत: नकली हिजड़ों की बढ़ती फौज की ओर इशारा करती है। वस्तुत देखा जाए तो भारत में सिर्फ 4 से 5 प्रतिशत हिजड़ें ही पैदाइशी हिजड़े हैं नहीं तो बाकी 95 प्रतिशत हिजड़े नकली हैं।

महेश भट्ट द्वारा निर्मित फिल्म 'मर्डर-2' (2011) निर्मित फिल्म में भी हिजड़े की भूमिका है और फिल्म की कहानी में उसकी बहुत ही अहम भूमिका है। इस फिल्म की नायिका 'जेकलिन फरनेंडिज' हैं। फिल्म के नायक अर्जुन को अपनी जाँच के दौरान पता चलता है कि सब लड़कियाँ एक ही फोन नंबर से जुड़ीं है जो एक हिजड़े धीरज पांडे का है, धीरज पांडे सेक्स का दीवाना है जो बाद में लड़कियों को मार देता है, धीरज को पकड़ने के लिए अर्जुन रेशमा को भेजता है, रेशमा एक वैश्या है जो गरीबी की वजह से इस धंधे में है। (http://filmkahani.com/preview/murder-2-preview.html)

अक्षम अजय शर्मा द्वारा निर्देशित फिल्म 'हड्डी' 07 सितंबर 2023 को जी 5 पर रिलीज हुई। इस फिल्म की कहानी अदम्य भल्ला एवं अक्षत अजय शर्मा ने लिखी है। फिल्म में नवाजुद्दीन एक किन्नर के रोल में हैं जो अपने परिवार की हत्या का बदला लेता है। अनुराग कश्यप विलेन के किरदार में हैं। जियो सिनेमा पर पिछले दिनों रिलीज हुई। इस फिल्म में हरिका उर्फ हड्डी (नवाजुद्दीन सिद्दीकी) ट्रांसजेंडर महिला है। प्रयागराज में वह शवों को चुराकर उनकी हड्डियां निकालने का काम करती है। एक दिन पुलिस का छापा पड़ता है, हड्डी वहां से निकलकर इंदर (सौरभ सचदेवा) के पास नोएडा पहुंचती है। इंदर भी इंसानी हड्डियों को बेचने का गैरकानूनी धंधा करता है। उसे चुनाव लड़ने के लिए टिकट चाहिए, इसलिए वह नेता प्रमोद अहलावत (अनुराग कश्यप) के लिए काम करता है। हड्डी का नोएडा आने का मकसद है। वह प्रमोद से बदला लेना चाहता। सही कागज न होने की वजह से प्रमोद किन्नरों की जमीन को हड़प लेता है। हड्डी जिस किन्नर घराने से होती है, उनकी जमीन हड़पने के लिए प्रमोद रेवती अम्मा (इला अरुण) और उस घराने में रहने वाले सभी किन्नरों को मार देता है। हड्डी के पति इरफान रिजवी (मोहम्मद जीशान अयूब) को भी गोली लग जाती है। इस फिल्म की एक अच्छी बात यह है कि यह उस जोन में नहीं जाती है, जहां किन्नरों की हक की बात की जा रही हो या फिर उन्हें लाचार दिखाया गया हो। हड्डी अपनों के लिए बहुत सौम्य है, लेकिन जिसने उसे नुकसान पहुंचाया है, उनके लिए बेहद खतरनाक है।

लक्ष्मी (2020) अक्षय कुमार और कियारा आडवाणी अभिनीत एक हिंदी हॉरर कॉमेडी फिल्म है जो कुछ हद तक भारत में ट्रांसजेंडर समुदाय के जीवन को दर्शाती है। इसका नाम लक्ष्मी बम रखा गया था लेकिन विरोध के बाद इसका नाम बदलकर लक्ष्मी कर दिया गया। भले ही इस फिल्म को नकारात्मक आलोचनात्मक समीक्षा मिली, लेकिन इस फिल्म को दुनिया भर में लाखों दर्शकों ने देखा। हालाँकि फिल्म के प्रमुख सितारे अक्षय कुमार हैं, फिर भी यह शरद केलकर ही थे जिन्होंने वास्तव में दर्शकों का ध्यान आकर्षित किया। उनके द्वारा निभाया गया टाइटैनिक ट्रांसजेंडर किरदार निभाया। यह फिल्म भारतीय समाज में थर्डजेंडर लोगों के बारे में रूढ़िवादिता को दूर करने की दिशा की ओर तो कोई विशेष संकेत नहीं करती है, परंतु प्रस्तुतीकरण बहुत अच्छा किया गया है।

'ताली: बजाऊंगी नहीं, बजवाऊंगी' (2023) में रवि जाधव द्वारा निर्देशित जियो सिनेमा पर हिंदी भाषा की जीवनी नाटक टीवी श्रृंखला है। इसमें मुख्य भूमिका में सुष्मिता सेन हैं, जिन्होंने ट्रांसजेंडर एक्टिविस्ट श्रीगौरी सावंत का किरदार निभाया है। फिल्म के शुरुआती संवाद में बता दिया गया है कि किन्नरों का आशीर्वाद बहुत शक्तिशाली होता है और श्राप बहुत भयावह और उससे भी भयावह होता है उनका बदला। इस फिल्म

के अन्य कलाकर हैं–गौरी सावंत की मां के रूप में ऐश्वर्या नारकर, गौरी सावंत के पिता इंस्पेक्टर दिनकर सावंत के रूप में नंदू माधव, हेमांगी कवि,सुव्रत जोशी,गणेश सावंत के रूप में कृतिका देव, नितीश राठौड़, मीनाक्षी चुघ, शान कक्कड़, हेमन्त चौधरी तथा अंकुर भाटिया।

अनुराग कश्यप की फिल्म 'गुलाल' देखी होगी, वे फिल्म के उस दृश्य को कभी नहीं भूल पाएंगे, जब सनकी से किरदार में पियूष मिश्र अपने हिजड़े साथी के संग गीत गाते घूमते हैं और अपनी हार से तिलमिलाए केके खुद पर यह व्यंग बर्दाश्त नहीं कर पाता और हिजड़े को गोली मार देता है। तंज को बर्दाश्त न कर पाना और एक हिजड़े को मारना दरअसल सत्ता के दंभ से भरे उस पात्र के खोखलेपन को दर्शाता है। सत्ता का अहंकार कभी हँसी बर्दाश्त नहीं कर सकता। गुलाल के इस दृश्य को भारतीय सिनेमा के महानतम दृश्यों में रखा जाना चाहिए जो एक साथ न जाने कितने अर्थ खोलता है। पियूष का गान और हिजड़े की वेशभूषा दरअसल उस खत्म होती लोक–कला की याद दिलाते हैं जो समाज पर कटाक्ष करने का दम रखती थी।(http://khidkiyan.blogspot.in/2009/06/blog-post.html)

'कॉमन जेन्डर' बांग्लादेश की पहली ऐसी फिल्म है जिसमें किन्नरों की बात की गई है। फिल्म में सुष्मिता नाम के किन्नर को हिंदू लड़के से प्रेम हो जाता है। हालांकि लड़के के घरवाले उन दोनों की शादी कराने से मना करा देते हैं। काफी संघर्ष के बावजूद दोनों की शादी नहीं होती और फिल्म सुष्मिता की खुदकुशी के साथ खत्म हो जाती है। पूरे दक्षिण एशिया के पारंपरिक रुढित्रवादी समाज में किन्नर सबसे निचले पायदान पर उपेक्षित हालत में हैं। फिल्म के निर्देशक नोमन रॉबिन ने एक शॉपिंग मॉल में एक किन्नर को महिला शौचालय का इस्तेमाल करने पर लोगों के हाथों बुरी तरह से पिटते देखा। इस घटना का उन पर गहरा असर हुआ और उन्होंने किन्नरों पर फिल्म बनाने की सोच ली। रॉबिन के वक्तव्य के अनुसार सैकड़ों लोगों की भीड़ के सामने हिजड़े को पीटा गया। इस तरह के हालात में फिल्म को समाज में दर्शकों की अच्दी भीड़ मिल रही है यह सबके लिए हैरानी की बात हैं। आम धारणा है कि जिस फिल्म में नामी गिरामी सिनेकलाकार नहीं होते हैं उसे आर्ट फिल्म का दर्ज दे दिया जाता है। चूंकि इस फिल्म में भी कोई बड़ा सितारा नहीं और लोग इसे आर्ट फिल्म बता रहे थे। लेकिन अब तक मिली इसकी धमाकेदार सफलता के बाद हम इसे दूसरे सिनेमाघरों में भी ले जाने के लिए विवश कर दिया है। (http://www.dw.de/ किन्नर पर बनी फिल्म बंगलादेश में हिट@a-16081961)

शिखंडी कोथा (शिखंडी कथा) एक बांग्लादेशी ड्रामा फिल्म है, जो मोहम्मद हन्नान द्वारा निर्देशित और आनन जमान द्वारा लिखित है। यह फिल्म इम्प्रेस टेलीफिल्म लिमिटेड द्वारा निर्मित और 19 अप्रैल, 2013 को रिलीज हुई थी और यह तीसरे लिंग के जीवन पर आधारित है। इस फिल्म की कथा में दो बेटियों के बाद रमेला ने एक बेटे को जन्म दिया और इसके परिणामस्वरूप रमजेड मोल्ला और रमेला खुश हैं। रामजेद द्वारा उसका नाम रतन रखा। लेकिन बाद में रतन के शारीरिक बदलाव एक लड़की के रूप में दीखते हैं। उनके परिवार और गांव के लोगों रतन के शरीर में नित आते परिवर्तनों से परिचित होते हैं, लेकिन, रमेला द्वारा रतन को हिजड़ों के साथ भेजने से इनकार कर दिया जाता है। रतन की बजह से उसकी बहन की शादी में बाधा आती है। इस घटना पर रतन का पिता उसे बहुत डांटता है जब उसे एहसास हो जाता है कि समाज उसे कभी

भी स्वीकार नहीं करेगा और वह हिजड़ों के समूह में चला जाता तथा वहां रत्ना रूप में काली मासी की देखरेख में बढ़ता और त्रासदीपूर्ण जीवन व्यतीत करता है।(https://en.wikipedia.org/wiki/Shikhandi_Kotha)

'चित्रांगदा' (2012) में प्रदर्शित रितुपर्णो घोष द्वारा निर्देशित फिल्म है। यह फिल्मकिसी भी व्यक्ति के किन्नर होने की विस्तार से पड़ताल करती है। रवीन्द्र नाथ टैगोर कृत 'चित्रांगदा' महाभारत में आई हुई चित्रगंदा की कहानी से प्रेरणा प्राप्त कर रची गई है। इस पुस्तक में तीसरे लिंग से संबंधित चिंताओं की एक विस्तृत श्रृंखला का पता लगाया गया है। पारिवारिक संरचना के अंदर तीसरे लिंग की पहचान को स्वीकार करना अहम मुद्दा है। जब कोई तृतीय-लिंगी व्यक्ति अपनी पहचान प्रकट करता है, तो सामान्य रूप से परिवार के सदस्यों को प्रतिक्रिया देने के लिए कहा जाता है। माता-पिता द्वारा किन्नर संतान को स्वीकार करने की असमंजस भरी परिस्थितियों को बहुत सी बारीकी से दर्शाया गया है। वे लैंगिक विकलांग बच्चे को बीमार व्यक्ति के रूप में स्वीकार न करके उसे एक सामान्य संतान की अनुसार ही मानते हैं जिससे उन्हें तथा किन्नर बच्चे को अनगिनत चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस फिल्म में एक दार्शनिक आधार भी है। यह कई दार्शनिक मुद्दे उठाता है शरीर के सार, उसकी संरचना और विकास तथा उसके चरम से संबंधित स्थायित्व का भाव आदि। इस फिल्म के मुताबिक, समलैंगिकता एक ऐसी हकीकत है जो किसी भी किन्नर इससे भी आगे जाती है।

1 जनवरी 2010 को महाराष्ट्र की इस विशिष्ट परम्परा को पुनर्जीवित करने का प्रयास करते हुए एक फिल्म प्रदर्शित हुई है, नाम है "नटरंग"(2011), रिलीज होने से पहले ही इसका संगीत बेहद लोकप्रिय हो चुका था और रिलीज होने के बाद इस फिल्म ने पूरे महाराष्ट्र में धूम मचाई। जी टॉकीज द्वारा निर्मित यह फिल्म प्रख्यात मराठी लेखक और महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष आनन्द यादव के उपन्यास पर आध ारित है और इसमें मुख्य भूमिका निभाई है "अतुल कुलकर्णी" ने। अतुल कुलकर्णी को हिन्दी के दर्शक, - हे-राम, पेज 3, चांदनी बार, रंग दे बसन्ती, ये है इंडिया, जेल आदि फिल्मों में महत्वपूर्ण भूमिकाओं में देख चुके हैं। फिल्म का मुख्य पात्र गुणा कागलकर अर्थात अतुल एक ग्रामीण खेत मजदूर हैं। गुणाजी को सिर्फ दो ही शौक हैं, पहलवानी करना और तमाशा-लावणी देखना, उसके मन में एक दबी हुई इच्छा भी है कि वह अपनी खुद की नाटक-तमाशा कम्पनी शुरु करे, उसमें स्वयं एक राजा की भूमिका करे तथा विलुप्त होती जा रही लावणी कला को उसके शिखर पर स्थापित करे। ग्रामीण पृष्ठभूमि और सुविधाओं के अभाव में उसका संघर्ष जारी रहता है, वह धीरे-धीरे गाँव के कुछ अन्य नाटकप्रेमी लोगों को एकत्रित करके एक ग्रुप बनाता है जिसमें लावणी नृत्य पेश किया जाना है। उसे हीरोइन भी मिल जाती है, जो उसे भी नृत्य सिखाती है। इन सबके बीच समस्या तब आन खड़ी होती है, जब "नाच्या" (स्त्री रूपी मजाकिया हिजड़े) की भूमिका के लिये कोई कलाकार ही नहीं मिलता, लेकिन गुणाजी पर नाटक कम्पनी खड़ी करने और अपनी कला प्रदर्शित करने का जुनून कुछ ऐसा होता है कि वह मजबूरी में खुद ही "नाच्या" बनने को तैयार हो जाता है। उसके इस निर्णय से उसकी पत्नी बेहद खफा होती है और उनमें विवाद शुरु हो जाते हैं, उस पर गाँव की भीतरी राजनीति में नाटक की हीरोइन तो "जेण्डर बायस" की शिकार होती है साथ ही साथ हिजड़े की भूमिका निभाने के लिये गुणाजी को भी गाँव में हँसी का पात्र बनना पड़ ता है। कहाँ तो गुणाजी अपने तमाशे में एक "विशालकाय मजबूत राजा" का किरदार निभाना चाहता है, लेकिन बदकिस्मती से उसे साड़ी-बिन्दी लगाकर

एक नचौया की भूमिका करना पड़ ती है। नाटक के अपने शौक और अपनी लावणी कम्पनी शुरु करने की खातिर वह ऐसा भी करता है। बहरहाल तमाम संघर्षों, पक्षपात, खिल्ली, धनाभाव, अपने परिवार की टूट के बावजूद गुणाजी अन्ततः अपने उद्देश्य में सफल होता है और उसकी नाटक कम्पनी सफलता से शुरु हो जाती है, लेकिन उसकी पत्नी उसे छोड़ कर चली जाती है। मराठी नाटकों की सौ वर्ष से भी पुरानी समृद्ध नाट्य परम्परा में लावणी–तमाशा में "नाच्या" की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि यह नाच्या कभी कहानी को आगे बढ़ाने के काम आता है, कभी सूत्रधार, कभी विदूषक तो कभी नर्तक बन जाता है। इस तरह नृत्य करने वाली मुख्य नृत्यांगना के साथ ही इसका रोल भी जरूरी होता है, लेकिन जैसा कि हमारे समाज में होता आया है, "थर्ड जेण्डर" अर्थात हिजड़ों के साथ अन्याय, उपेक्षा और हँसी उड़ाने का भाव सदा मौजूद होता है, वैसा नाच्या के साथ भी जेण्डर बायस किया जाता है, जबकि अधिकतर तमाशों में यह भूमिका पुरुष ही निभाते आये हैं। मराठी नाटकों में पुरुषों द्वारा स्त्री की भूमिका बाळ गन्धर्व के जमाने से चली आ रही है, कई–कई नाटकों में पुरुषों ने स्त्री की भूमिका बगैर किसी फूहड़ पन के इतने उम्दा तरीके से निभाई है कि नाटक देखते वक्त कोई जान नहीं सकता कि वह कलाकार पुरुष है। ऐसे ही एक महान मराठी कलाकार थे गणपत पाटील, जिन्होंने बहुत सारी फिल्मों में "नाच्या" की भूमिका अदा की, और उनके अभिनय में इतना दम था तथा उनकी भूमिकाएं इतनी जोरदार थीं कि नाटक–फिल्मों के बाहर की दुनिया में भी उनके बच्चों को भी लोग उनका बच्चा मानने को तैयार नहीं होते थे, अर्थात जैसी छवि हिन्दी फिल्मों में प्राण अथवा रंजीत की है कि ये लोग बुरे व्यक्ति ही हैं, ठीक वैसी ही छवि गणपत पाटील की हिजड़े के रूप में तथा निळू फुले की "खराब आदमी" के रूप में मराठी में प्रचलित है।

तमिल फिल्मों में 'थेनावेडु', नामक फिल्म बहुत ही महत्वपूर्ण फिल्म है क्योंकि ये फिल्म एक वास्तविक किन्नर द्वारा खुद की लिखी हुई आत्मकथा पर आधारित है। यह कहानी 'रेवती' नामक हिजड़े की है जो कि हिजड़ों के पुनरूत्थान के लिए एक समाजसेवी के रूप में दक्षिण भारत में सक्रिय है। 'नान कदावुल', पाल, नंदकला आदि भी तमिल भाषा में हिजड़ों पर बनी अच्छी फिल्में हैं। (http://swapnacd.blogspot.in/2009/04/list-of-transgender-films.html)

एजिल द्वारा निर्देशित थुल्लाधामनमुमथुल्लम(1999) में स्त्रैण होने के लक्षण दिखाने वाले पुरुष का उपहास किया गया है और यहां तक कि उनके अपने दोस्त भी उनका मजाक उड़ाते हैं। जबकि ऐसी अनेक सूक्ष्मताओं को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया है पटकथा तैयार करने या फिल्मों में भूमिकाओं के चरित्र–चित्रण के दौरान। सरथ कुमार ने भूमिका निभाई है।

तमिल फिल्म 'कंचना' में वैसे तो अमूमन मसाला फिल्मों की तरह इस फिल्म की कहानी में भी कुछ नया नहीं हैं। एक एम.एल.ए. जमीन हड़पता है और जमीं के असली मालिक को मार डालता है। मरा हुआ इंसान अपनी अतृत्पता आत्मा के साथ उससे बदला लेता है। आत्मा को बदला लेने के लिए एक शरीर की आवश्यकता होती है। इस फिल्म में राघव नामक किरदार का सहारा आत्मा द्वारा अपना बदला लिए जाने के लिए किया जाता है। बस फर्क इतना है और वही इस फिल्म का सबसे सशक्त पक्ष है और वह है कि जमीन का मालिक एक कंचना नाम हिजड़ा होता है। तकरीबन सभी किन्नरों जैसी ही कहानी है कंचना कि

जिस घर में उसका जन्म होता है पिता द्वारा उसके स्त्रैण गुण देखकर घर से बाहर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए छोड़ दिया जाता है। घर से निकाले जाने के दृश्य में निदेशक एवं कहानीकार दोनों ने किन्नर जन्म की जैविक सत्यता पर प्रकाश डाला है। कंचना कहता है कि "पापा..... मुझे इस तरह न मारा करो। मैं कोशिश करती हूं पर बदल नहीं पाती हूं। मैं ऐसा पैदा हुआ तो ता इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मैंने इंटरनेट पर भी पढ़ा हैं ऐसी हरकते हॉरमोन की बजह से होती हैं। मुझे घर से मत निकालिए। परंतु उसका पिता एक नहीं सुना बल्कि चप्पलों से मार कर उसे घर से निकाल देता है। फिल्म में कंचना का प्रवेश ही एक सामाजिक बुराई के विरूद्ध संघर्ष से होता है। वह जिस लड़की को गोद लेकर बड़ी मुश्किलों के साथ पढ़ा रही होता है। उस लड़की को कुछ मनचले यह जानते हुए भी कि वह एक हिजड़ा है, रोज आते जाते परेशान करते हैं। इसी का सबक सिखा रही होती है। पर रहीम चाचा उसे रोक देते हैं। वास्तविक जीवन में संभवत: ऐसा नहीं होता कि कोइ नेक इंसान किसी किन्नर को अपनाकर उसे सहारा दे। प्रस्तुत फिल्म में रहीम नाम का एक खुदाबक्श इंसान न सिर्फ उसे पनाह देता बल्कि उसका अपनी संतान की तरह पालन पोषण करता है। रहीम चाचा कार्तिक से कंचना के रूप में उसका नामकरण करते हुए कहता है कि "तेरे आधे शरीर शिव है तो आधे शरीर में शक्ति है। यानि तू तो चमक्कार है, तू तो अर्धनारीश्वर है। कोई मामूली इंसान नहीं है।" (कंचना फिल्म: 2012) कंचना स्वयं तो पढ़ नहीं पाता परंतु वह अपने जैसी ही घर से बेदखल की हुई हिजड़ी गीता (मूल नाम कृष्णा) को पढ़ाने का संकल्प लेती है। बहुत मिन्नतों के बाद स्कूल के प्राचार्य का मन पसीज उठता है और गीता को स्कूल में प्रवेश मिल पाता है और गीता किन्नर स्कूल टॉप करती है। उसे स्कॉलरशिप पर विदेश में मेडीकल की पढ़ाई करने के लिए भेजने की पेशकश करते हैं जिसे कंचना, रहीम चाचा और गीता द्वारा कृतज्ञता के साथ स्वीकार किया जाता है।

नानू अवनल्ला अवलु (2015) कन्नड़ फिल्म है जो एक ट्रांसजेंडर महिला के जीवन से संबंधित है जिसे सामान्य और सरल जीवन जीने के लिए बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इस फिल्म की कहानी बहुत अच्छी होने के साथ-साथ फिल्मांकन तथा प्रस्तुतीकरण बहुत ही प्रभावी है। संचारी विजय ने इस फिल्म में मुख्य किरदार निभाया है और फिल्म में उनके बेहतरीन अभिनय के लिए उन्होंने 62वां राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार जीता है। बी.एस. द्वारा निर्देशित लिंगदेवरु, इस फिल्म को अपनी शानदार कहानी के कारण पूरे भारत में इसे पहचान मिली। यह फिल्म हिंदी में भी डब की गई है।

अर्धनारी (2016) उनकी भानुशंकर चौधरी निर्देशित फिल्म भले ही ट्रांसजेंडर समुदाय पर आधारित तेलेगु फिल्म न हो, लेकिन यह उक्त समुदाय के लोगों के बारे में बहुत जरूरी प्रतिनिधित्व प्रदान करती है। इस फिल्म की अपार लोकप्रियता के कारण इसे हिंदी भाषा में भी डब किया गया। इस कथा का मूलाधार साइकोकिलिंग है। 'अर्धनारी' फिल्म का पूर्वार्द्ध ग्रामीण परिवेश में किन्नरों की स्थिति और परिवेश को प्रस्तुत करता है। हिंदी में निर्मित फिल्म 'संघर्ष' में भी लज्जा शंकर पांडेय नामक मनोविकृत किन्नर द्व ारा की जाने वाली साइकोकीलिंग को प्रस्तुत करती है। इस फिल्म में चह चालीस से अधिक मासूम बच्चों की बलि चढ़ाता है।

नजन मैरीकुट्टी (2018) एक मलयालम फिल्म है जिसे इसकी सम्मोहक कहानी के लिए भारत भर के आलोचकों और दर्शकों द्वारा सराहा गया था। यह फिल्म हिंदी में भी डब की गई है। फिल्म की कहानी मैरीकुट्टी नामक एक ट्रांसजेंडर महिला के संघर्षों के इर्द-गिर्द घूमती है। मुख्य किरदार पुलिस विभाग में इंस्पेक्टर बनने हेतु संघर्ष करता है और पुलिस विभाग के दकियानूसी सोच वाले पुलिस अधिकारी तथा अन्य पुलिस कर्मी उसकी राह में बाधाएं उत्पन्न करते हैं परंतु किन्नर किरदार बहुत ही सूझबूझ एवं जीवटता के सभी कठिनाईयों पर पार पाता हुआ पुलिस इंस्पेक्टर बनने में कामयाब होता है। फिल्म में एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति को अपना लिंग परिवर्तन कराने के लिए कितनी बाधाओं और बाधाओं से गुजरना पड़ता है यह भी बहुत ही सुंदर तरीके से दिखाया गया है। मुख्य भूमिका में जयसूर्या अभिनीत, नजनमारुकुट्टी को एलजीबीटीक्यू समुदाय से सराहना मिली।

सुपर डीलक्स (2019) सुपर डीलक्स थर्ड जेंडर समुदाय से संबंधित एक लोकप्रिय तमिल फिल्म है जो भारतीय समाज के कई अलग-अलग पहलुओं से संबंधित है। हालाँकि फिल्म में अलग-अलग सबप्लॉट हैं, लेकिन ट्रांसवेस्टाइट समुदाय वाले प्लॉट ने लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा। उक्त किरदार निभाते हुए, विजय सेतुपति ने भारत में एक ट्रांसजेंडर महिला के जीवन को चित्रित करने में बहुत अच्छा काम किया। त्यागराजन कुमारराजा ने फिल्म का निर्देशन किया गया है।

किन्नर और अभिन्य

सौ वर्षों से भी अधिक का समय गुजर जाने के बाद भी आज तक एक भी ऐसी फिल्म नहीं आई है जिसमें किन्नर का किरदार किसी मूल किन्नर ने निभाया हो। चाहे वो सामान्य हास्य हो या गंभीर अधिकांश फिल्मों में पुरूष ही किन्नरों की भूमिका का निर्वहन करते आए हैं। यह भारतीय समाज की मुख्यधारा के कर्णधारों की भूमिका पर अन्य विमर्शों की भांति पुनः एक बार कई सारे प्रश्न चिन्ह लगते हैं। क्या किन्नर या किन्नरी खूबसूरत नहीं होते हैं या उनमें अदाकारी का हुनर नहीं होता है परंतु भारतीय समाज सदा से ही पक्षपाती रहा है। जहां आज तक स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों का वांछित सम्मान प्रदान नहीं किया गया हो वहां पूर्णरूपेण उपेक्षित और तिरस्कृत थर्ड जेंडर समुदाय के लिए अच्छे दिन आने की उम्मीद ही की जा सकती है लेकिन कब तक इसका कोई भी उत्तर शायद ही किसी के पास हो। अभिनय, कला तथा सौंदर्य की दृष्टि से देखें तो ब्राजील निवासवी थलिथा जामरीली चौबीस वर्ष मॉडल और इंडस्ट्रियल डिजाइन की छात्रा हैं। थलिथा जामरीली की खूबसूरती देखकर किसी को भी अपनी आँखों पर यकीन नहीं होता की ये किन्नर हैं। कारमेन करेरा एक बहुत ही प्रसिद्ध अमेरिकन रियलिटी टीवी हस्ती और कलाकार हैं। वे पहले से ही फैशन की दुनिया में अपनी जगह बना चुकी हैं। आज लोग उन्हें किन्नर की नजरो से नहीं बल्कि एक खूबसूरत सुंदरी के लिए जानते है। भारत के मणिपुर की बिशेष हुइरेम की खूबसूरत के समक्ष महिलाओं की खूबसूरती भी फीकी पड़ जाती है। ये थाईलैंड में हुए मिस इंटरनेशनल क्वीन ब्यूटी कॉन्टेस्ट की प्रतिभागी रही हैं। बांग्लादेशी किन्नर एमेलिया माल्तेपे एक मॉडल हैं। वर्तमान में ये टोरंटो (जापान) में रहती हैं और मॉडलिंग की दुनिया में एक चर्चित हस्ती हैं। केनेडियन जेन्ना तालाकोवा एक मॉडल और टीवी की प्रसिद्ध हस्ती हैं। 2012 में ये मिस

यूनिवर्स कनाडा जैसे प्रसिद्ध प्रतिस्पर्धा में शामिल हो चुकी हैं। भारत में सामान्य रूप से आते जाते गाहे बगाहे बहुत से खूबसूरत किन्नर दीख जाते हैं जिन्हें देखकर बहुत से लोगों को स्त्री होने का भी भ्रम हो जाता है। अधिकांश किन्नर नृत्य गायन आदि कलाओं में दखल रखते हैं और थोड़ाबहुत प्रशिक्षण और अनुभव उन्हें टीबी सिरीयल या फिल्मों में एक कलाकार के रूप में प्रतिष्ठित कर सकता है। परंतु शायद ही ऐसा अभी तक हुआ हो, जिसमें किसी हिंदी या अन्य भारतीय फिल्मों में मूल किन्नर के द्वारा भूमिका का निर्वहन किया गया हो। सिने जगत जैसे रूमानी संसार में भी अभी तक पितृसत्ता का वर्चस्व चलता हुआ दिखाई दे रहा है। उम्मीद एक न एक दिन किन्नरों को भी फिल्मों मूल कलाकार के रूप में भूमिकाएं निर्वहन का अवसर प्राप्त होगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन यह स्पष्ट करता है कि भले ही थर्ड जेंडर समुदाय प्राचीन काल से भारतीय समाज का अभिन्न अंग रहा हो परंतु उसे सम्मान और स्थान कहीं भी प्राप्त है तो वह है उपेक्षा और तिरस्कार का। जहां समाज में आए दिन किसी न किसी रूप में किन्नर उपहास का पात्र या माध्यम होते हैं वहीं भारतीय सिनेजगत विशेषकर हिंदी सिनेमा में भी वे मात्र फूहड़ हास परिहास, भोंडी पोशाके ओर संवाद के रूप में देखे जाते हैं जिस प्रकार समाज एवं साहित्य में गंभीर विवेचन का का अभाव परलिक्षित होता है वैसा ही सिनेमा जगत भी है। समाज के कुछ सह्रदय सामाजिकों के कारण दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन या सुधार अवश्य देखा जाने लगा है परंतु दिल्ली थर्ड जेंडरों के लिए भी अभी भी बहुत दूर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. http://mishrsunil.blogspot.in/2014/04/blog-post_17.html
2. http://www.bollywoodblogmagazine.com /PageDetails.aspx?id=421&cat=Life%20and%20Journey%20of%20Superstar
3. http://www.bbc.com/hindi/ entertainment/ story/2004/05/ printable/ 040510_ pink_mirror.shtml
4. http://www.deshbandhu.co.in/newsdetail/ 2319/7/71
5. http://filmkahani.com/preview/murder-2-preview.html
6. http://hindi-oneindia-com/news / 2010/02/19/actor & nirmal &pandey&passes&away-html
7. http://khidkiyan.blogspot.in/2009/06/blog-post.html
8. http://www.dw.de/fdUUkj ij cuh fQYe caxykns"k esa fgV@a-16081961
9. http://swapnacd.blogspot.in/2009/04/list-of-transgender-films.html
10. http://www.pressnote.in/Cinema-News_266891.html
11. https://topfibe.com/[kwclwjr fdUuj/ dated 29-07-20222
12. विमर्श का तीसरा पक्ष थर्ड जेंडर, 2016, डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, अनंग प्रकाशन, दिल्ली

13. भारतीय समाज तथा साहित्य में तृतीय लिंग विमर्श, 2017 डॉ.विजेंद्र प्रताप सिंह, अमन प्रकाशन, कानपुर

14. निरूप्रह, वर्ष 2-3, अंक 6-7 संयुक्तांक सितंबर-फरवरी 2016 संपादक अरविंद कुमार अतिथि संपादक डॉ.विजेंद्र प्रताप सिंह, आईएसएसएन 2394-2223

विद्यालयी समावेशी विकास की समस्याओं का एक विश्लेषण

डॉ. अभिषेख कुमार पाण्डेय
प्राचार्य
विद्या कॉलेज ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज
रसूलपुर वरुण चिपुरा परसा पटना

सारांश

समावेशी विकास शब्द 21वीं सदी में उभरा हुआ है और इसे अनेको विद्वानों और विभिन्न नीति दस्तावेजों की एक श्रृंखला में पिरोया गया है। हालाँकि, इसकी मजबूत जड़ें विभिन्न प्राकृत विषयों में विभिन्न अवधारणाओं में खोजी जा सकती हैं। जबकि कुछ लोग समावेशी विकास को केवल राजनीतिक दृष्टिकोण के माध्यम से आर्थिक विकास के साथ सामाजिक पहलुओं के संयोजन के रूप में देखते हैं, हम समावेशी विकास को सामाजिक भलाई पर ध्यान केंद्रित करने और राजनीतिक प्राथमिकताओं को फिर से परिभाशित करने के माध्यम से प्रकृति की पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं की रक्षा करने के रूप में परिभाशित करते हैं, खासकर एंथ्रोपोसीन के संदर्भ में। यह शब्द संभावित रूप से विभिन्न विषयों को एक साथ जोड़ सकता है। यह लेख समावेशी विकास शब्द पर विद्वानों और नीति साहित्य की समीक्षा करता है और यह जांचने के लिए एक मार्गदर्शक रूपरेखा प्रस्तुत करता है कि विभिन्न विषय समावेशी विकास से केसे निपटते हैं। भारत में समावेशी विकास की अवधारणा प्राचीन समय से विद्यमान है। 12वीं पंचवषीर्य योजना (2012–17) में समावेशी शिक्षा द्वारा सामाजिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने पर जोर दिया गया। शिक्षा का समावेशीकरण यह बताता है कि विशेष शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सामान्य छात्र और एक दिव्यांग छात्र को समान शिक्षा प्राप्ति के अवसर मिलने चाहिये। भारतीय ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में कोठारी आयोग (1964–66), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), निशक्त व्यक्ति अधिनियम (1995), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) इत्यादि में समावेशन की नीति को स्वीकार किया गया है। लोकसभा ने 16 दिसम्बर, 2016 को 'The Rights of Persons with Disabilities Bill 2016' पास किया। समावेशी शिक्षा समाज के सभी बच्चो को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास करती है। अत: समावेशी शिक्षा की अवधारणा पर पुर्नविचार कर उपलब्ध संसाधनो के परिपेक्ष्य में समावेशी विकास हेतु इसकी भूमिका पर ध्यान देना आज की आवश्यकता है। किन्तु वस्तुत: इतने प्रयासों के बाद भी आज भी हमारे विद्यालयों के पास पर्याप्त संसाधन नहीं है और न ही प्रशिक्षित अध्यापक जिससे की दिव्यांग अथवा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा का

समुचित प्रबन्ध किया जा सके। आज आवश्यकता है कि समाज में समावेशी शिक्षा समावेशी विकास के प्रति जागरूकता, चेतना, संवेदना जागृत की जाये इस दिशा में समाज के सभी वर्गों, संस्थानों, संगठनों को कार्य करना अति आवश्यक है। समावेशी विकास वैष्विक स्पर्द्ध के युग में आवश्यकता ही नही अनिर्वायता है जिसकी दिशा में समावेशी शिक्षा एक सार्थक एवं महत्वपूर्ण पहल है।

की-वर्ड- समावेशी, शिक्षा, विकास, दिव्यांग

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 2015 में सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को अपनाने के साथ सतत विकास की अवधारणा अंतरराष्ट्रीय विद्वानों के ध्यान और नीति क्षेत्र में केंद्र स्तर पर पहुंच गई है, इसके लिए जगह है यह अवधारणा जिन व्यापार-बंदों की अनुमति देती है, उस पर गहन बहस चल रही है। जबकि मजबूत टिकाऊ विकास सामाजिक, पारिस्थितिक और आर्थिक पहलुओं और वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के बीच कोई व्यापार-बंद नहीं होने देता है, अनुभव से पता चलता है कि निहित स्वार्थ अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए टिकाऊ विकास की व्याख्या कर सकते हैं, जिससे अक्सर पक्ष में कमजोर टिकाऊ विकास होता है। आर्थिक विकास का सतत विकास की अवधारणा नवउदारवादी पूंजीपतियों, सामाजिक कल्याण विद्वानों और पर्यावरणविदों को अपने स्वयं के हितों के लिए व्यापार-बंद तैयार करने की अनुमति देती है, जिससे इन विचारधाराओं के स्कूलों के बीच रस्साकशी होती है। अनिवार्य रूप से, यदि नवउदारवाद और अहस्तक्षेप का राजनीतिक और आर्थिक महत्व है, तो सतत विकास की व्याख्या और कार्यान्वयन पहले विकास की ओर झुकता है, जैसा कि बाजार तय करता है। समावेशी विकास पर हमारे विशेष अंक का यह परिचयात्मक पेपर समावेशी विकास पर साहित्य की जांच करता है और विभिन्न विषयों और विषयगत क्षेत्रों में विकसित किए गए संबंधित तत्वों के आधार पर समावेशी विकास के सिद्धांत को बनाने में जांच को व्यापक बनाने के लिए एक मार्गदर्शक ढांचा विकसित करता है। अंतर्राष्ट्रीय विकास अध्ययन से परे।

भारत में समावेशी विकास की अवधारणा प्राचीन समय से विद्यमान है। प्राचीन धर्म ग्रन्थों में सभी लोगो को साथ लेकर चलने का भाव वस्तुतः समावेशी विकास का भाव है। प्राचीन लोक प्रिय संस्कृत सूत्र 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' में भी यही भाव निहित है। पुनः उदारीकरण की प्रक्रिया के प्रारम्भ होने के साथ समावेशी विकास की अवधारणा नये कलेवर के साथ वैष्विक संदर्भ में प्रासंगिक और नितान्त आवश्यक लगने लगी। सरकार द्वारा घोशित कल्याणकारी योजनाओं में समावेशी विकास पर बल दिया जाने लगा तथा समावेशी शिक्षा की चर्चा शैक्षिक मंचो पर की जाने लगी। 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) में समावेशी शिक्षा द्वारा सामाजिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने पर जोर दिया गया। शिक्षा का समावेशीकरण यह बताता है कि विशेष शैक्षणि ाक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सामान्य छात्र और एक दिव्यांग छात्र को समान शिक्षा प्राप्ति के अवसर मिलने चाहिये। समावेशी शिक्षा या एकीकरण के सिद्धान्त को विशेष विद्यालय स्वीकार नहीं करता। सामान्य विद्यालयों में अशक्त बच्चों की मित्रता सामान्य बच्चो से करायी जाती है। समावेशी विकास रोजगार के अवसर उत्पन्न करता है और गरीबी उन्मूलन में सहायक होता है। समान अवसर प्रदान कर समावेशी विकास

न केवल आर्थिक अवसरों को उत्पन्न करता है बल्कि समाज के सभी वर्गों के लिए सृजित ऐसे अवसरों की समान पहुँच को सुनिश्चित करता है।

समावेशी शिक्षा की संकल्पना पर पुर्नविचार की आवश्यकता

यह सर्वसम्मति से स्वीकार किया जा चुका है कि प्रत्येक बच्चे की विशिष्टताओं, रूचियों एवं योग्यताओं में विभिन्नता पायी जाती है परन्तु प्रत्येक बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने का मूलभूत अधिकार है। भारतीय ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में कोठारी आयोग (1964-66), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), निशक्त व्यक्ति अधिनियम (1995), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) इत्यादि में समावेशन की नीति को स्वीकार किया गया है। लोकसभा ने 16 दिसम्बर, 2016 को 'The Rights of Persons with Disabilities Bill 2016' पास किया। इस बिल के आने के बाद 1995 में निर्मित च्वॅक एक्ट 1995 अप्रभावी हो गया। इस बिल में विकलांगताओं के प्रकार को 07 से बढ़ा कर 21 कर दिये गये हैं, इसमें एसिड एटैक विक्टम तथा पारकिनसन से ग्रस्त व्यक्ति भी सम्मिलित है। इसके अनुसार 6-18 वर्श के बच्चे जो किसी भी प्रकार की विकलांगता से ग्रस्त है सम्मिलित किये गये हैं। इसमें यह भी सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है, सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त संस्थायें समावेशी शिक्षा देना सुनिश्चित करें। प्रधानमंत्री योजना के अर्न्तगत निश्चित समयाविधि में सभी पब्लिक स्थानों पर दिव्यांगो के लिये रैम्प निर्माण प्राथमिकता के आधार पर तैयार करना होगा। साथ ही सरकार को अधिकृत किया गया है कि वह किसी अन्य प्रकार की विशिष्ट विकलांगता को भी विकलांगता का दर्जा प्रदान कर सकती है। इस संदर्भ में राज्य सरकारों को प्रभावी कदम उठाने होगें तथा इसके अनुसार विकलांगों का आरक्षण प्रतिशत 3% से 4% कर दिया गया है। इस बिल में कई कानूनी बदलाव भी किये गये है तथा दिव्यांगों की आर्थिक सहायता के प्रबन्ध की भी बात की गई है तथा इसमें बिल के अधिकारों के दुरूपयोग के लिये स्पेशल कोर्ट के निर्माण का भी वर्णन है। किन्तु वस्तुतः स्थिति यह है कि आज भी विद्यालयों के पास पर्याप्त संसाधन नहीं है कि वे विशेष बच्चों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध कर सके। सामान्य विद्यालयों के शिक्षकों में तथा समाज में समावेशी शिक्षा के प्रति न तो चेतना है और न ही दृष्टि समाज को भी समावेशी शिक्षा हेतु शिक्षा के परिवर्तन को स्वीकार करने के लिये तैयार होना होगा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि समावेशन की नीति को शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किये जाने की आवश्यकता है तथा समाज के सभी वर्गो में समावेशी शिक्षा की आवश्यकता के प्रति चेतना तथा दृष्टि विकसित करनी होगी। विद्यालयों तथा अन्य प्रयुक्त स्थलों को पर्याप्त संसाधनो से युक्त करके ही समावेशी शिक्षा की संकल्पना साकार की जा सकती है। समावेशी शिक्षा को शिक्षा के अधिकार के अन्तर्गत विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकता वाले बच्चो को एक समतामूलक शिक्षा व्यवस्था द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करना है। समावेशी शिक्षा समाज के सभी बच्चो को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास करती है।

समावेशी शिक्षा के संदर्भ में विकास

सामाजिक विकास ग्रामीण तथा शहरी दोनो अंचलो के संतुलित विकास पर निर्भर करता है। अब तक का अनुभव यही कहता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के अतरिक्त अन्य रोजगार एवं व्यवसायों का सृजन नहीं हो सका है। यद्यपि वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रो में मनरेगा जैसी योजनायें प्रभावी है तथापि ग्रामों का अपेक्षित विकास न होने के कारण गावो से पलायन तेजी से हो रहा है। शहरो एवं नगरो में आबादी अधिक होने से आधारभूत सुविधायें सबको उपलब्ध नही हो पर रही है। वास्तविकता यह है भारत का कोई राज्य ऐसा नहीं है जहाँ रोजगार के साधन पर्याप्त मात्रा में युवाओं के लिये उपलब्ध है। समावेशी शिक्षा क्योकि भू–मण्डलीकरण की देन है इसलिये इसे अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक समर्थन प्राप्त है। समावेशी शिक्षा को लागू करने के लिये दिव्यागों की विभिन्न श्रेणियों के बच्चों को शिक्षित करने के लिये शिक्षक शिक्षिकाओं की नितान्त आवश्यकता है। अत: इस क्षेत्र में भी व्यवसाय एवं स्व–रोजगार के विविध अवसर उपलब्ध हो रहे है। समावेशी शिक्षा द्वारा शिक्षित दिव्यांग देश के आर्थिक समाजिक सांस्कृतिक विकास में अपनी महती भूमिका निभा सकेगें। अत: समावेशी शिक्षा की अवधारणा पर पुर्नविचार कर उपलब्ध संसाधनो के परिपेक्ष्य में समावेशी विकास हेतु इसकी भूमिका पर ध्यान देना आज की आवश्यकता है।

समावेशी शिक्षा हेतु आवश्यक दशायें

वर्तमान में सम्पर्ण शिक्षण को इस प्रकार व्यवस्थित किये जाने की आवश्यकता है जिसमे प्रत्येक शिक्षार्थी चाहे वह दिव्यांग हो या सामान्य पूर्ण रूप से शैक्षणिक वातावरण में सम्मिलित होकर न सिर्फ वैयक्तिक वरन् सामाजिक और राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सके। इसके लिये आवश्यक है कि शिक्षण प्रक्रिया में विविधता के प्रति आदर एवं सम्मान हो विद्यालय में सृजति यही आदर और सम्मान क्रमश: समाज में व्याप्त हो जायेगा ऐसी आषा की जाती है। समावेशी शिक्षा की शैक्षिक संस्थाओं से निम्न अपेक्षायें है–

- **समावेशित विद्यालय वातावरण**– समावेशित शिक्षा के लिये आवश्यक है कि विद्यालय का वातावरण सभी बच्चों के लिये स्वीकार्य होना चाहिये। विद्यालय में विशिष्ट बच्चो की आवश्यकता की पूर्ति हेतु आवश्यक शैक्षिक उपकरण रैम्प, संसाधनों, भवनों आदि का समुचित प्रबन्ध आवश्यक है। बच्चो की शिक्षा के सभी स्तरों पर वातावरण का बहुत योगदान होता है। समावेशी शिक्षा के संदर्भ में शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 को एक प्रभावी कदम कहा जा सकता है।

- **आवश्यकता अनुरूप पाठ्यक्रम** –समावेशित शिक्षा व्यवस्था के लिये आवश्यक है कि विद्यालय पाठ्यक्रम बच्चों में व्याप्त विविधता, भिन्नता, अभिवृत्तियों, मनोवृत्तियों, आकाक्षांओ, योग्यताओं क्षमताओ को ध्यान में रख कर निर्धारित किया जाना चाहिये। पाठ्यक्रम में लचीलापन होना आवश्यक है जिससे बच्चो की क्षमताओं, रूचियों, आवश्यकताओं के अनुकूल पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया जा सके। सभी बच्चो का राष्ट्र के विकास में योगदान आवश्यक है उन्हें समाज का उत्पादक नागरिक बनाने में शैक्षिक संस्थाओं को अपना महत्वपूर्ण योगदान देना आवश्यक है।

- **परामर्श एवं निर्देशन** –विशेष आवश्यकता वाले दिव्यांग बच्चों के लिये परामर्श एवं निर्देशन की प्रक्रिया एक सतत प्रक्रिया है। परामर्श एवं निर्देशन वैसे तो सभी बच्चों के लिये अत्यन्त उपयोगी है परन्तु विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिये ये नितान्त आवश्यक एवं उपयोगी है। दिव्यांग बच्चों को नवीन परिवेश में सांमजस्य स्थापित करने में अधिक असुविधा होती है। शिक्षक, परामर्शदाता, कर्मचारी, कक्षा के अन्य बच्चे उनकी इस कार्य में सहायता कर सकते हैं। दिव्यांग बच्चों को मित्र और दोस्त बनाने में अपेक्षाकृत अधिक कठिनाई होती है क्योंकि प्राय: उनमें आत्म सम्मान और आत्म विश्वास की कमी पायी जाती है। घर में माता–पिता तथा विद्यालय में शिक्षकों से उचित प्रेरणा एवं मार्गदर्शन प्राप्त कर ये सामाजिक विकास में अतुलनीय योगदान दें सकते है तथा ये समाज के उपयोगी सदस्य बन सकते हैं।

- **आधुनिक सूचना तकनीकों का प्रयोग**–समावेशी शिक्षा की सफलता के लिये शिक्षा व्यवस्था में आधुनिकतम तकनीकी उपकरणों जैसे कम्प्यूटर, मोबाइल, टीवी आदि का प्रयोग अत्यावश्यक है। ये तकनीक बच्चों के व्यक्तित्व विकास के साथ–साथ समाज के विकास में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा बच्चों में अर्न्तक्रिया मनोरंजन भली प्रकार सम्भव हो जाता है। समावेशी वातावरण में शिक्षा के सभी स्तम्भों, यथा शिक्षक बच्चों, अभिभावक के बीच संवाद होना आवश्यक है। ये बच्चों के समावेशी विकास में सहायक है।

- **शिक्षकों का सघन प्रशिक्षण**–शिक्षक ही शिक्षा पद्धति की वास्तविक शक्ति है और शैक्षिक संस्थानों की आधारशिला है यद्यपि पाठ्यक्रम, अधिगम, शिक्षण सामग्री आदि सभी वस्तुयों को शैक्षिक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

  समावेशी शिक्षा में शिक्षक की जिम्मेदारी और बढ़ जाती है क्योंकि उसका कर्त्तव्य शिक्षण तक ही सीमित नहीं होता वरन दिव्यांग विशिष्ट आपष्यकता वाले बच्चों के शिक्षण हेतु सहायक सामग्री का निर्माण, बच्चों से सौहार्दपूर्ण वातावरण में सामजस्य कर उन्हें सीखने के लिए प्रेरित करना भी शिक्षक के लिये अत्यन्त चुनौतीपूर्ण कार्य है।

- **समाज की सक्रिय सहभागिता**–विशेष शैक्षिक आवश्यकता वाले दिव्यांग बच्चों के विकास की बुनियाद समाज की सक्रिय सहभागिता पर निर्भर करता है। समावेशी शिक्षा के विद्यालयों को समुदाय का केन्द्र बिन्दु बनाना चाहिये जिससे सामाजिक विकास की भावना को बल मिले। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये समय–समय पर विद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रम, वाद–विवाद, खेल–कूद जैसे मनोरंजक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिये। बच्चों के अभिभावकों एवं समाज के गणमान्य नागरिकों को इसमें आमंत्रित किया जाना चाहिये।

समावेशी शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त

- समावेशी शिक्षा सम्मान और आदर के साथ वैयक्तिक भिन्नताओं को स्वीकार करते हुए बच्चों को सर्वांगिण विकास की ओर अग्रसर होती है।
- प्रत्येक बच्चे को स्वाभाविक रूप से सीखने के लिये अभिप्रेरित करती है।

- विशेष आवश्यकता वाले दिव्यांग बच्चों को भी सामूहिक गतिविधियों में प्रतिभाग कराकर उनका सामाजिक विकास करती है।
- समावेशी शिक्षा अभिभावकों, समुदाय के सदस्यों, सहपाठी छात्र–छात्राओं को शैक्षणिक गतिविधियों में सम्मिलित करने की सिफारिष करती है।
- शैक्षिक संस्थाओं में बच्चों के विशेष रूप से दिव्यांगों को सीखने के लिय तैयार करती है।
- सीखने सिखाने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है अत: विद्यालय तथा समाज में बच्चों का विशेष रूप से दिव्यांगों हेतु सकारात्मक वातावरण निर्मित करना आवश्यक है तथा प्रत्येक बच्चे को उसकी क्षमता के अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराना विद्यालय और समाज का कर्त्तव्य है।

निष्कर्ष: किसी भी देश के विकास में उस संविधान के द्वारा सभी को समावेशित किये जाने का, समान अवसर, उपलब्ध कराये जाने का प्रयास होता रहा है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अनुसार समावेशन की नीति को हर स्कूल और सारी शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किये जाने की जरूरत है। स्कूलों को ऐसे केन्द्र बनाये जाने की आवश्यकता है जहाँ यह सुनिश्चित किया जाए कि विशेष आवश्यकता वाले दिव्यांग बच्चों को विकास और उन्नति के अवसर उपलब्ध हों।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Bahuguna, Sunderlal. Sustainable Development in India. Perspective. www.moel nid/wsed/doc/consul_book_persp pdf.
2. Datt, Gaurav & Ravallion, Martin. (2010). Shining for the poor too? Economic and Political Weekly, 45(7), 55-60.
3. Dev, Mahendra S. & Ravi, C. (2007). Poverty and inequality: All India and states, 1983-2005. Economic and Political Weekly, 42(6), 509-521.
4. Himanshu, H. (2007). Recent trends in poverty and inequality: Some preliminary results. Economic and Political Weekly, 42(6), 497-508.
5. Ravallion, Martin and Chen, Shaohua (1997). What Can New Survey Data Tell Us about Recent Changes in Distribution and Poverty?, The World Bank Economic Review, 11(2): 357-82.
6. Ravallion, Martin; Datt, Gaurav (January 1996). How important to India's poor is the sectoral composition of economic growth? (English). The World Bank economic review, 10(1):1-25.
7. http://www.planningcommission.nic.in/plans/planrel/fiveyr/11th/11_v1/11v1_ch1.pdf http://www.planningcommission.nic.in/reports/genrep/Inter_Exp.pdf
8. http://planningcommission.gov.in/plans/planrel/12thplan/welcome.html http://www.worldbank.org.
9. प्रपन कौशलेंद्र (योजना, अगस्त 2012) भारत में प्राथमिक शिक्षा।
10. एनुअल स्टेटस आफ एजुकेशन रिपोर्ट (एसर) 2014, दैनिक भास्कर, 22 जनवरी 2015।
11. राम मिलन मिश्र "प्राथमिक शिक्षा विजन 2020", कुरूक्षेत्र, सितंबर 2006।

पर्यावरणीय दृष्टि से श्रीराम

डॉली देवी
शोधार्थिनी
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोधालेख सार :-

भारतीय संस्कृति में श्रीराम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण तथा रामचरितमानस रामायण में पर्यावरणीय दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो पर्यावरण और पर्यावरण संरक्षण स्वाभाविक रूप से प्रकृति में उपलब्ध औषधियाँ, नदी, वन, पर्वत, पहाड़, सरोवर, जीव-जन्तुओं व मानवीय जीवन आदि जैवविविधता का प्रतीकात्मक रूप से वर्णन किया गया है।

बीज शब्द :- पर्यावरण, पारिस्थितिकी, संस्कृति, विविधता, प्रतीकात्मक, मानवीय, सांस्कृतिक, सारगर्भित, समग्रता, सौंदर्य, अनुभूति आदि।

पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है, परि तथा आवरण। परि का अर्थ है चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है चारों ओर से ढका हुआ। अर्थात पर्यावरण का अर्थ हुआ चारों ओर से घिरा अथवा ढका हुआ आवरण। पर्यावरण पारिस्थितिकी तन्त्र आकाश, वायु, जल, अग्नि तथा पृथ्वी इन पाँच तत्वों से परिपूर्ण जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, पशु-पछी, मानवीय जीवन तथा प्रकृति के सम्पूर्ण समावेश से बना है। इस पर्यावरण के तन्त्र में जब तक वातावरण स्वच्छ व स्वास्थ्यप्रद रहता है। जैसे-जैसे इसमें विकार आने लगते हैं। पर्यावरण दूषित होने लगता है। मनुष्य प्रकृति जगत का प्रणाणी है, अन्य प्राणियों के समान वह भी प्रकृति की गोद में पलकर अपने मार्ग की ओर अग्रसर होता है। उसी प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भी अपने जीवन में प्रकृति का संरक्षण प्राप्त करते हुए रामराज्य की स्थापना करते हैं।

प्रकृति और पर्यावरण के मध्य अन्त:सम्बनध है जो मानवीय दृष्टिकोण व सांस्कृतिक विरासत की धरोहर से निर्मित एवं विकसित होता है। इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय हिन्दू संस्कृति की वैश्विक भूमिका प्राचीन काल से ही पर्यावरण की दृष्टि से संरक्षक, भारतीय संस्कृति की पूरक तथा अभिन्न अंग रही है। प्रकृति और मनुष्य परस्पर सहचरी हैं। दोनों का अटूट संबन्ध है। वाल्मीकि रामायण और तुलसी रामायण दोनों में प्रकृति का मनोरम रूप चित्रित किया गया है। पर्यावरणीय दृष्टि से श्रीराम के साथ जुड़े हुए अनेक स्थल साकेत व मिथिला नगरी, तपस्वियों के आश्रम, किष्किंधा पर्वत, हिमालय पर्वत, वन, जंगल, सरयू मंदाकिनी जैसी नदियाँ, सुन्दरकाण्ड व लंकाकाण्ड के दृश्य स्थल वातावरण से

परिपूर्ण श्रीराम के जीवन को सफल बनाते हैं। सम्पूर्ण रामायण में प्रकृति राम की सहचरी बनकर एक दूसरे के पूरक सिद्ध होती है। वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण और राम का सम्बन्ध वहीं से स्फुट होने लगता है जब तमसा नदी के तट पर व्याध द्वारा मारे गये काम-क्रीडा में मग्न नर-क्रौञ्च पक्षी को देखकर वाल्मीकि के मुख से निम्न श्लोक निकल पड़ता है-

मां निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

महर्षि वाल्मीकि का काव्य लेखन धार्मिक दृष्टि से परिपूर्ण नहीं अपितु सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न है। वाल्मीकि ने अतिसूक्ष्म दृष्टि से प्रकृति चित्रण किया है। प्रकृति के सजीव चित्रण में मानवीय रूप प्रतीत होता है। तमसा नदी के तट से जो दृश्य प्रारम्भ होता है वही रामायण की रचना का आधार बनता है। वाल्मीकि में निर्जीव पर्वतों को सजीव बनाने की कुशलता है जो अन्य किसी कवि में नहीं है। प्राचीन समय में ऋषि व तपस्वियों का रहन-सहन, प्रकृति के सानिध्य खुले वातावरण में नदी के समीप, घने जंगलों में स्थित आश्रमों में होता था। पशु-पक्षी, नदी, वन, सरोवर व पर्वतों की औषधियों से श्रीराम का गहरा सम्बन्ध रहा है। सरयू नदी की सुन्दरता व निर्मलता, हिमालय की जड़ी-बूटियों से वैद्य जी द्वारा लक्ष्मण के प्राणों का उपचार करना, वृक्षों व लताओं की महिमा में मानवीयता का स्वरूप झलकता है। प्रकृति को विभिन्न रूपों में ग्रहण करना कवि की प्रतिभा पर निर्भर करता है। तुलसी ने प्रकृति को नीति और उपदेश देने वाली शक्ति के रूप में ग्रहण कर प्रकृति के कई रूपों का वर्णन किया है। आलम्बन रूप का वर्णन करते हुए बालकाण्ड में इस प्रकृति चित्रण का स्वरूप कुछ इस तरह से वर्णित है-

सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति।।
सरिता सब पुलीत जल बहतीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहतीं।।
सहज बयरू सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा।।

श्रीराम लक्ष्मण सहित जनकपुरी में वहाँ के कुएँ, नदी, तालाब जिसमें अमृत के समान जल है और मणियों के समान सीढ़ियाँ बनी हुई देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते है। पक्षियों की मधुर ध्वनि, सरोवर के खिले हुए रंग-बिरंगे पुष्पकमल एवं शीतल वायु जनकपुरी की प्राकृतिक छटा बिखेर रहे हैं-

पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत विशेषी।
बांपी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधा सम मनि सोपाना।
गुंजत मंजु मन्त रस भृंगा। कूजत कल बहुरन बिहंगा।
बरन-बरन विकसे बन जाता। त्रिविधि समीर सदा सुख दाता।

वृक्षों से घिरा हुआ सिद्धाश्रम का कुतुहलपूर्ण वर्णन, वन्य पशुओं से युक्त दर्शनीय और मनमोहक लग रहा है-

वृक्षखण्डमितो भाति परं कौतुहलं हि मे।
दर्शनीयं मृगाकीर्णं मनोहरमतीव च।।

वनवास के समय कन्द-मूल फलों का आहार तथा वृक्षों के पत्तों से निलृमत शय्या पर विश्राम राम और प्रकृति की निकट प्रगाढ़ता के प्रतीक हैं। वन में पशु पक्षी (जटायु), बन्दर, भालू, नदी, तालाब, पर्वत आदि सब सगे संबन्धी बनकर श्रीराम के जीवन को सफल बना दिया है। दण्डक वन में श्रीराम के पहुँचने पर तपस्वियों के आश्रम में यज्ञ की समिधाएँ जल से भरे हुए कलश, स्वादिष्ट कन्दमूल फल जंगली महावृक्ष, वन्य-पुष्प और कमलपुष्पों से युक्त सरोवर अत्यन्त सुशोभित लग रहे हैं। पंचवटी में आश्रम की शोभा प्रकृति प्रदत्त मिट्टी और बांस के खम्भों से मिलकर बनी पर्णशाला अति रमणीय है। सीताहरण के बाद श्रीराम वन-वन में भटकते विलाप करते हुए वृक्षों से पूँछते हैं कि हे कदम्ब ! तुम्हारे फूलों से प्रेम करने वाली सीता को क्या तुमने कहीं देखा है? पशु पक्षियों से उनका पता पूँछते हुए कहते हैं-

हे खग हे मृग हे मधुकर श्रेणी।
तुम देखी सीता मृगनैनी।।

किष्किंधाकाण्ड में वर्षा एवं शरद ऋतु के वर्णन में उपदेश अपनी चरम सीमा पर है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार का सारगर्भित उपदेशमूलक प्रकृति निरुपण तुलसी की अपनी विशेषता है। शरद ऋतु का एक दृश्य वर्णन-

फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई।।
उदित अगस्ति पंथ चल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा।।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।।
रस रस सूख सरति सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी।।
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकत सुहाए।।

तुलसीदास ने रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड में हनुमान के द्वारा सीता को श्रीराम का सन्देश देते समय प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन किया है। वियोग के समय प्रकृति किस प्रकार प्रतिकूल होकर अपार कष्ट देती है। उसका मालृमक वर्णन है-

कहेऊ राम वियोग तव सीता। मों कहूँ सकल भए विपरीता।।
नव तरू किसलय मनहूँ कृसानु। कालनिसा सम निसि ससि भानू।।
कुवलय बिपिन कुंत बन सरिया। बारिद तपत तेल जनु बरिसा।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।।

वनवासी श्रीराम का गुणगान वनवासी वाल्मीकी और हनुमान ही कर सकते हैं और तुलसीदास भी इस प्रतिभा से सर्वगुण सम्पन्न होने में दूर नहीं हैं-

आनन्दकाने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितोज्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता।।

तुलसीदास जी ने वन उपवन की स्थल वस्तुओं का भी वर्णन करते हैं और उनके संरक्षक वातावरण की अनुभूति को भी व्यंजित करते हैं। वन-उपवन अपने समस्त जीव जन्तुओं के साथ किसी समग्रता में बँधकर एक अनुभूति बन जाता है। उनके इस वर्णन में वस्तुएँ भिन्न-भिन्न होती है परन्तु उसकी चेष्टाएँ, स्थितियां, संगति और वातावरण में लीन हो जाती हैं। वे किसी सजीव चित्र की भाँति प्रतीत होती है। वातावरण की इस संगति में तुलसी ने कलापक्ष में प्रयुक्त स्वर व्यंजनों की योजना कलात्मक ढंग से प्रस्तुत की है। तुलसी के प्रकृति चित्रण में वातावरण की एकान्वित और प्रयुक्त स्वर व्यंजनों की गुंजार प्रकृति को किसी देखे गए स्वप्न की तरह प्रतीत होता है। तुलसीदास के प्रकृति चित्रण में वातावरण की सुगन्ध व प्रकृति का सौन्दर्य राम और रामराज्य जैसा सुखद और श्रीराम का अंश बन जाता है। इनके वर्णन में आनन्दमयी वातावरण की झनकार दिखाई देती है। वाल्मीकि आश्रम का वर्णन-

देखत वन सर सैल सुहाए। वाल्मीकि आश्रम प्रभु आए।
रामु दीख मुनि बास सुहावन। सुन्दर गिरि काननु जल पावन।।
सरनि सरोज बिटप वन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले।।
खग मृग विपुल कोलाहल करही। विरहित बैर मुदित मन चरहीं।।

तुलसीदास के यहाँ प्रकृति की सुन्दरता श्रीराम के जीवन के सौन्दर्य के साथ विराजती है। श्रीराम के जीवन में प्रकृति का बहुत अधिक महत्त्व है। प्रकृति से श्रीराम का सम्बंध प्रायः आजीवन बना रहता है। बचपन में विश्वामित्र के साथ वनवास फिर विवाह के उपरान्त चौदह वर्षों का वनवास, राजा बनने पर सीता का वनवास, पुत्रों का जन्म व पालन-पोषण भी प्रकृति के सान्निध्य में होता है। वातावरणीय दृष्टि से तुलसीदास ने श्रीराम के जीवन की कथा को प्रकृति के समीप्य अत्यधिक सुन्दरता के साथ वर्णित किया है।

श्रीराम के युग समय में पर्यावरणीय सम्पन्नता की पराकाष्ठा अपनी चरम सीमा पर है। पर्यावरण के संरक्षण के लिए जिस तरह श्रीराम के समय में मानवीय दृष्टिकोण था वह अब सुसुप्तावस्था में है। मनुष्य प्रकृति से बहुत दूर जा चुका है। पर्यावरण के संरक्षण के लिए मनुष्य को सतत प्रयास करते रहने की आवश्यकता है। जब मनुष्य और प्रकृति के मध्य अनुकूल सम्बंध होता है तब प्रकृति का स्वरूप प्राणी जगत के मानव समाज के प्रति सकारात्मक रहता है। रामराज्य में प्रकृति और मनुष्य का परम आत्मीय साहचर्य का वर्णन मिलता है-

सुमन वाटिका सब हि लगाईं। विविध भाँति करि जतन बनाईं।।
लता ललित बहुजाति सुहाई। फूलहि सदा बसंत की नाई।।

वर्तमान में प्रकृति के विदोहन से मानव जीवन निकट भविष्य में संकट की और बढ़ता जा रहा है। आज के समय में मनुष्य ने वैज्ञानिक खोजों व उसकी उपलब्धियों से बहुत उन्नति कर ली है परन्तु प्रकृति से बहुत दूर होता जा रहा है। जिसके कारण जन जीवन की अष्मिता खतरे में है। भारतीय संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित

करने के लिए मानव समाज को पर्यावरण के प्रति सजग रहने की आवश्यकता है। ज्ञान व विज्ञान के निजी स्वार्थ को त्यागकर सम्पूर्ण प्राणी जगत के हित में सोचने तथा कार्य के लिए मानव समाज में पर्यावरणीय चेतना की जागरूकता होना बहुत जरूरी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, महेन्द्र प्रताप, वाल्मीकि पर्यावरण चेतना भाग–1 (वनस्पतियाँ), अभ्युदय प्रकाशन, लखनऊ।
2. सिंह, महेन्द्र प्रताप, तुलसी की अन्तदृष्टि, उद्योगनगर प्रकाशन, गाजियाबाद।
3. सरस्वती, परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द (अनुवादक), श्रीमद्वालमीकीयरामायणम्, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द प्रकाशक, संस्करण 2023
4. पोद्दार, हनुमान प्रसाद–टीकाकार, श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस, गौरखपुर
5. सिंह, उदयभानु– सम्पादक, तुलसी (आलोचना), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2018
6. त्रिपाठी, विश्वनाथ, लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण: 2022

द्विवेदी युग के उद्‌भव के कारण

डॉ० अरुण कुमार मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी
एम०डी०पी०जी० कॉलेज,
प्रतापगढ़, उ०प्र०

1900 ई० से 1918 ई० का कालखंड द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है। इस युग के पथ प्रदर्शक विचारक और सर्व स्वीकृत साहित्यनेता भाषा एवं साहित्य के व्यवस्थापक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इसका नाम द्विवेदी युग पड़ा। इसके पहले जो काव्यधारा चल रही थी, उसे भारतेंदु युग से अभिहित किया गया। इतिहास के आईने में देखा जाए तो इस बिंदु पर पहुँचकर हिंदी काव्यधारा की पारम्परिक गतिमत्ता समाप्त हो चुकी थी और धर्म निर्वाह के रूप में कवि कर्म किसी न किसी रूप में अस्तित्ववान था। विकास की ऐसी ही स्थिति में परिवर्तन उपस्थित होता है और अप्रत्याशित रूप में इतिहास, इतिहास पुरुष को जन्म देकर नए ऐतिहासिक आयाम की सृष्टि करता है। ध्यातव्य है कि निश्चित रूप से इतिहास की प्रक्रिया चरितार्थ हुई और हिंदी काव्यधारा का नया आयाम खड़ी बोली और उसकी लोकप्रियता तथा प्रबंध पटुता के साथ सामने आई। हिंदी साहित्य के क्षितिज पर धूमकेतु की भाँति पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का उदय होता है और उनके उदय के साथ-साथ काव्य के नवीन धरातल का प्राचीनता से अलगाव स्पष्ट झलकने लगा। द्वि वेदी जी का हिंदी साहित्य में आगमन एक ऐतिहासिक घटना थी। जिसे हम इस तरह से भी कह सकते हैं कि वह इतिहास पुरुष थे और इतिहास ने उन्हें जन्म दिया था। प्रेम नारायण टंडन के शब्दों में कहे तो, "जिस व्यक्ति ने बीस वर्षों तक लगातार दस करोड़ हिंदी भाषी जनता का साहित्यिक अनुशासन किया। वह बैसवाड़े की देहात का रहने वाला एक सामान्य श्रेणी का ब्राह्मण था। अवध की नवाबी के पर्यवसान के बाद उसी प्रांत के दौलतपुर नामक निर्धन गांव में उसका जन्म हुआ था। अवध- जिस प्रदेश का वह निवासी था- उस समय तक उजड़ कर निरक्षरता और दरिद्रता का केंद्र बन चुका था। किंतु प्राचीन स्मृतियाँ लुप्त नहीं होती। अत: प्राचीन संस्कार भी सुयोग पाकर कभी पुनर्जन्म ले लेते हैं। गंगा की जो धारा कभी अपनी बीच रचना के उपलक्ष में बाल्मीकि के कवि कण्ठ का सुवर्णहार प्राप्त करती होगी, वह आज भी दौलतपुर के समीप से ही बहती है। वह आम्र-कानन जो निद्रागत पथिको के मुखों में भी मधुर रस डालते थे, आज भी दौलतपुर के आसपास अपना वही उपहार लिए हुए खड़े हैं। इन्हीं आम्र काननों के परिपूर्ण यौवन के समय माधव मास में इसी ग्राम के एक कान्यकुब्ज कुल में शिशु महावीर द्विवेदी ने सन 1864 ईस्वी को जन्म लिया। प्रसूतिगृह में उसकी जिह्वा पर सरस्वती का बीज मंत्र अंकित कर दिया गया। मंत्र विद्या सत्य सिद्ध हुई।"[1] यही थे आचार्य द्विवेदी जी अब हम द्विवेदी युग के उद्‌भव के कारणों को विभिन्न वर्गों में बाटकर देखेंगे।

1. राजनीतिक कारण

यह युग हिन्दी साहित्य में 1900 ई०–1918 ई० तक माना जाता है यद्यपि इस युग के कवियों की रचनाधर्मिता देश की आजादी तक चलती रही। भारतेन्दु युग में राष्ट्रीय चेतना का विकास हो चुका था, किन्तु उन दिनों उसमें वह उमंग नहीं था जो द्विवेदी युग में प्रारंभ हुआ। अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करने पर भारतीयों को पश्चिम की विचारधारा का पता चला। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रचार-प्रसार से नवजागरण की चेतना व्यापक रूप में विस्तार पाई। राष्ट्र के उत्थान और स्वाभिमान की भावनाओं के विकास से राजनीतिक क्षेत्र में क्रांति फैल गई। सम्पूर्ण देश में अंग्रेजों की नीतियों से जनता के अंदर आवेश बढ़ता गया। भारतीय जनता के विचारों के वाहक के रूप में जो कांग्रेस के रूप में एक मंच मिला था, उसमें भी दो दल (नरम दल, गरम दल) उभरने लगे। जिसे अतिवादी और उदारवादी कहा गया। तिलक एवं गोखले क्रमशः गरम एवं नरम दल के नेता थे। कांग्रेस के प्रारंभिक चरण में उसके भीतर नरम दल का प्रभाव अधिक था। इसका बहुत कुछ कारण दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का प्रभाव कह सकते है। 1892 ई० में दादाभाई नौरोजी ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य चुने गये। किन्तु अंग्रेज़ों की दमनकारी नीति में कोई कमी नहीं आई। उधर, अकाल, टैक्स एवं महामारी से भारतीय जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। भारत के अनेक भागों में 1896 ई० में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। सरकार की सैनिक कारवाई से भी जनता परेशान थी। 1897 ई० में भूकम्प और प्लेग के कारण तो वर्णनातीत तबाही हुई। महाराष्ट्र में प्लेग फैलने के समय वहाँ के अफसर मि. रैण्ड की हत्या हुई। लेफ्टिनेंट एअरर्ट की हत्या भी इसी समय हुई। अंग्रेज़ों ने इन हत्याओं की आशंका में चापेकर बंधुओं को दण्डित किया। बलवन्त राव नातू तथा हरियल रामचन्द्र नातू को सरकार ने देश से निर्वासन इसलिए किया क्योंकि उन्होंने प्लेग में हुई बर्बादी और अंग्रेज फौजियों की ज्यादतियों को प्रकाशित कर भारतीय जनता तक इस बात को पहुँचाई थी। उधर तिलक ने देश में जनजागरण के लिए 1893 ई० में गणेश उत्सव तथा 1897 ई० में 'शिवाजी उत्सव' शुरू किया। मराठी भाषा में 'केसरी' और अंग्रेजी भाषा में 'मराठा' पत्र का प्रकाशन करके बाल गंगाधर तिलक ने जनता में एक नयी चेतना, नई स्फूर्ति फैलाने का कार्य किया। भारत की राजनीतिक क्षेत्र में यह समय बहुत ही उथल-पुथल का रहा। ऊपर कुछ की चर्चा की गई है। हम यहाँ कुछ और घटनाओं की चर्चा करेंगे जिससे स्पष्ट पता चल जायेगा कि इस अवधि के राजनीतिक क्षेत्र में क्या उतार-चढ़ाव आए। सन् 1898 ई० में लॉर्ड कर्जन भारत का गवर्नर जनरल अथवा वायसराय बन कर आया। उसी समय प्लेग जैसी महामारी भी फैली। 1899 से 1900 के बीच भीषण अकाल पड़े, जिससे बड़ी संख्या में जन-धन की बर्बादी हुई। लॉर्ड कर्जन साम्राज्यवादी नीति का कट्टर समर्थक था। उसके कार्यों से जनता को घनघोर कष्ट उठाना पड़ा। तिब्बत सैनिक अभियान का खर्च भारतीय जनता को उठाना पड़ा। उसकी शिक्षा सम्बंधी नीतियों द्वारा यहाँ की जनता को हानि ही नहीं हुई अपितु लोगों में हीन भावना का संचार भी होने लगा। 20 जुलाई 1905 ई० को बंग भंग (बंगाल बिभाजन) करके उसने जन आंदोलन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। प्रवास संबधी बिल (1907 ई०) सभा बन्दी कानून (1908 ई०) प्रेस एक्ट (8) जून 1908 ई०) इत्यादि के कारण जनता का रोष बढ़ता ही गया। एक ओर दमन बढ़ा तो दूसरी ओर जनता द्वारा प्रतिरोध परक कार्य आरंभ हुए। जनता की सबसे सशक्त वाणी 'युगान्तर' और 'सन्ध्या' पत्रिका बनी, और 'वन्देमातरम' के नारे द्वारा जनता के अंदर जोश और उमंग

को बुलंद किया गया। सन 1905 ई० में लॉर्ड मिन्टो जब भारत का वायसराय बनकर आया। तो वह आते ही भारतीयों पर दमनचक्र तेज कर दिया।

अंग्रेजी हुकूमत ने भारतीयों पर पग-पग पर अत्याचार करने से नही चूकती थी, 'वन्देमातरम' शब्द जो देश की चेतना स्फूर्ति का शब्द था उस पर नियंत्रण लगा कर लोगों को चेतनाहीन बनाने का प्रयत्न किया। वह 'मिन्टो-मॉर्ले' सुधार द्वारा अंग्रेजों की फूट डालो राज करो नीति का प्रवर्तन किया। एक ओर तो राष्ट्रीय आंदोलन का प्रसार हो रहा था दूसरी ओर अग्रेजों की कूटनीति के कारण अलगाववाद का बीज भी अंकुरित होने लगा था। 1906 ई० में मुस्लिम लीग की स्थापना में अलगाववाद का पौधा लग गया। जो इस विषय वेलि में विष ही फल बना, दूसरी ओर राष्ट्र को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्ति दिलाने वाले सपूतों ने अपना कार्य शुरू कर दिया था। गदर आंदोलन को श्याम जी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर, अरविन्द घोष, बरीन्द्र घोष, खुदीराम बोस, मदन लाल धींगरा, लाला हरदयाल जैसे नेताओं ने सम्पूर्ण देश में फैला दिया।

बंग भंग को लेकर आंदोलन उग्र होता जा रहा था जिस वर्ष अंग्रेजों ने कलकत्ता से बदल कर दिल्ली को भारत की राजधानी बनाया, उसी वर्ष यानि सन् 1911 ई० में बंग-भंग को रदद भी किया गया। जनता के रोष का परिणाम सामने आने लगा था। सन् 1914 ई० में गांधी जी का भारत में आगमन होता है। इसके पहले वे दक्षिण अफ्रीका में सरकार के अमानुषिक अत्याचार के खिलाफ सफल आंदोलन चला चुके थे। यहाँ की राजनीति में गांधी के प्रवेश से एक नए दौर की शुरुआत हुई। 1916 ई० में गांधी और मदनमोहन मालवीय द्व ारा आंदोलन शुरू किया गया जिसमें मजदूरों को देश से बाहर भेजने का कड़ा विरोध था। 1917 ई० में बाध्य होकर सरकार ने इस प्रथा पर रोक लगा दी।

1916 ई० में खिलाफत आंदोलन शुरू हुआ। इस आंदोलन से यह साफ जाहिर हो गया कि एक ओर कांग्रेस है तो दूसरी ओर मुस्लिम लीग। गांधी कांग्रेस के नेता बने तो मोहम्मद अली जिन्ना मुस्लिम लीग का। 1914-1918 ई० के बीच प्रथम विश्व युद्ध के दौरान गांधी और तिलक ने अंग्रेज़ों का साथ दिया। परन्तु अपेक्षित परिणाम उल्टा निकला। देश में अंग्रेज़ों का जुल्म और बढ़ता गया। 1915 ई० में श्रीमती एनी बेसेन्ट ने भारतीय राजनीति में कदम रखा। 1915 ई० में ही दो बड़े नेताओं, गोपाल कृष्ण गोखले और फीरोजशाह मेहता की मृत्यु हो गई। तिलक जनजागरण का कार्य कर रहे थे। अंग्रेज़ों को डर था कि तिलक लोकप्रियता कहीं उनके सरकार को न डगमगा दे। इस कारण कई झूठे आरोप लगाकर उन्हें जेल भेज दिया गया। 1914 ई० में उन्हें मांडले जेल से छोड़ा गया। 1915-16 ई० में उन्होंने एक राष्ट्रीय दल का संगठन किया, जिसे होम रूल लीग कहा गया। आयरलैण्ड से प्रेरणा पाकर 1916 ई० में पूना में उन्होंने होमरूल लीग की स्थापना की। इस लीग की स्थापना से देश के नवयुवकों में स्वराज्य प्राप्ति की चेतना का विकास हुआ। राष्ट्रीय साहित्य की रचना की जाने लगी। तिलक के स्वास्थ्य खराब होने पर इस होमरूल लीग को ऐनी बेसेन्ट ने सफलतापूर्वक चलाया। इस होमरूल लीग के प्रयत्न से ही भारत में भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्निर्माण तथा राष्ट्रीय तिरंगा झंडा का स्वरूप सामने आया।

सरकार की मूर्खतापूर्ण नीतियों से एक ओर जनता में रोष बढ़ता जा रहा था वहीं गरम और नरम दल में दूरी भी होती जा रही थी। 1919 ई० का वर्ष राजनीतिक घटनाओं से भरपूर रहा। गांधी जी ने रौलट एक्ट के

विरुद्ध सत्याग्रह शुरू कर दिया। सारे देश में सरकार के विरुद्ध आंदोलन शुरू हो गया, जिसमें सबसे ज्यादा पंजाब प्रभावित हुआ। पंजाब के गवर्नर माईकल ओ० डायर ने जलियावाला बाग में हो रही शांत सभा पर गोलियाँ चलवा कर नर संहार किया। सारा देश इस नर संहार से क्षुब्ध हो उठा। 1919 में ही नयी कौंसिलों के चुनाव के विरुद्ध असहयोग आंदोलन शुरू हुआ। अगस्त 1920 ई० में गरम दल के नेता लोकमान्य तिलक का निधन हो गया। सारा देश इस महान् सपूत के खोने पर शोक मग्न हो गया।

इस प्रकार 1900 से 1920 ई० के बीच जितनी भी राजनीतिक घटनाएँ घटी उसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ा। गांधी जी के सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, मानवता, विश्व बन्धुत्व और राष्ट्रीयता का स्थायी प्रभाव हम तत्कालीन साहित्य पर स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। श्रीधर पाठक, नाथूराम शंकर शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त तथा 'सनेही' आदि साहित्यकारों की रचनाओं में उपर्युक्त राष्ट्रीय चेतना स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'स्वर्ग सहोदर' में भारत माता की स्तुति का गान किया है–

यह भारत स्वर्ग सहोदर है,
जितने गुण सागर नागर हैं, कहते यह बात उजागर है,
अब यद्यपि दुर्बल भारत है, पर भारत के सम भारत है।
अव दीनदयालु दया करिए, सब भाँति दरिद्र दशा हरिए,
भरिए फिर वैभव नित्य नया, चिरकाल हुआ सब छूट गया।
खुलता दुख दैत्य महोदर है, यह भारत स्वर्ग सहोदर है।।[2]

गुप्त जी की आरंभ की अधिकांश रचनाएं भारतीय संस्कृति के विविध रूपों का चित्रण करती हैं। उनके अधिकांश कथानक किसी पौराणिक कथा रामायण, महाभारत, बौद्ध या जैन धर्म के ऐतिहासिक गाथाओं के चरित्रों एवं घटनाओं को लिए हुए हैं। इनकी प्रारंभ की रचनाएं 'जय थि वध' तथा 'भारत भारती' ने राष्ट्रीयता के क्षेत्र में एक नई क्रांति पैदा कर दी। मातृभूमि वंदना तथा गौरवमय अतीत सम्बन्धी उनकी कुछ रचनाएं दृष्टव्य है–

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्य चंद्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम प्रवाह, फूल तारे मंडन है।
बंदीजन खग वृन्द, शेष फन सिंहासन हैं।
मातृभूमि की धूलि में जब पूरे सन जाएगें,
होकर भव बंधन मुक्त हम, आत्मरूप बन जाएगें।[3]

मैथिलीशरण गुप्त के 'मेरा देश' आदि शीर्षक कविताएं जो प्रारम्भ में सरस्वती में प्रकाशित हुई तथा बाद में 'मंगलघट' में संकलित कर ली गई हैं, उनमें भी हम भारत की स्तुति का मंगलमय चित्र पाते हैं–

बलिहारी तेरा वर वेश, मेरे भारत! मेरे देश!
बाहर मुकुट विभूषित भाल, भीतर जटा जूट का माल,
ऊपर नभ नीचे पाताल, और बीच में तू प्रण पाल।
हरा भरा यह देश बनाकर, विधि ने रवि को मुकुट दिया,
पाकर प्रथम प्रकाश जगत ने, इसका ही अनुसरण किया।[4]

'मातृ मंदिर' शीर्षक कविता में भी हमें जन्मभूमि के प्रति उदात्त भावना मिलती है–

भारतमाता का मंदिर यह समता का संवाद जहाँ,
सबका शिव कल्याण यहाँ है, पावें सभी प्रसाद यहाँ।

गुप्त जी धार्मिक व्यक्ति हैं और भारतीय संस्कृति के गौरव और विशालता में उन्हें पूर्ण आस्था है। वे भारत को केवल अपनी मातृभूमि के कारण ही महत्व नहीं देते वरन् इसलिए भी कि वह उनके इष्ट 'हरि' की भी लीला भूमि रही है। अपनी 'मातृभूमि' कविता में वे कहते हैं–

जय जय भारत भूमि भवानी।
अमरों ने भी तेरी महिमा बारम्बार बखानी,
तेरा चंद्र वदन वट विकसित शांति सुधा बरसाता है
मलयानिल विश्वास निराला नवजीवन सरसाता है
हृदय हरा कर देता है यह अंचल तेरा धानी
जय जय भारत भूमि भवानी।।[5]

'भारतवर्ष' शीर्षक कविता में हम भारत की वंदना का चित्र देखते हैं–

जय जय भारत तेज रवि जय जग देस प्रधान,
जयति विमल–मंगल भवन भरमादा–सुचि खान।

पंद्र गयाप्रसाद शुक्ल सनेही हिन्दी के बड़े ही भावुक और सरल हरण के कवि हैं जिनमें देशप्रेम की भावना के उद्‌गार ही अधिकतर मिलते हैं। इन्होंने पुरानी और नई दोनों शैली की कविताएं लिखीं। इनकी बहुत सो कविताएं 'त्रिशूल' उपनाम से भी मिलती हैं। भारतवर्ष की स्तुति और वंदना सम्बंधी बहुत सी रचनाओं का सूजन इन्होंने किया–

सुर सरित सलिल सुधा से सिंचित,
मंजुल मलय समीर संचरित,
सुषमा सब सुरपुर की संचि गुणगान,
जयति भारत जय हिन्दुस्तान।[6]
जय जय भारत राष्ट्र परम प्रिय प्राण हमारे,
संभव विभव विभूति जयति जय प्राण हमारे।

जय रस रूप स्पर्श शब्द जय झाण हमारे,
तूने जाग्रत किये भाव त्रियमाण हमारे।[7]

अपने गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण भी कवि को बार–बार होता है––

जगत गुरु जगन्मुक्ति दातार, झुकाता था शिर सब संसार
सभ्यता के आकर आधार किया सम सबको हमने प्यार।
बढ़ाया अमरों में सम्मान, किया जो मनुज जाति उत्थान,
वही हम हैं भारत संतान, वही हम हैं भारत संतान।[8]

पंद्र बद्रीनाथ भट्ट ने मातृभूमि वंदना की तथा भोज और विक्रमादित्य जयमल आदि के शौर्य का वर्णन किया–

हे मातृभूमि सब सुखागार तुझको प्रणाम है बार–बार
वे भोज और विक्रमादित्य जिनके थे अद्‌भुत सभी कृत्य
वे जयमल पृथ्वीराज वीर जो थे अविचल और समरधीर
हे मातृभूमि तव अन्न भुक्त है तेरे ऋण से सभी युक्त।[9]

अंबिका प्रसाद वाजपेई ने 'हमें स्वराज दीजिए' शीर्षक कविता में विदेशी शासको से इस प्रकार अपनी भावनाएं व्यक्त की–

उदार जाति आपकी सिखा चुकी उदारता,
स्वतंत्रता न दी अजी यही बड़ी विचित्रता।
हठात आर्य जाति ने बड़ा सुयोग पा लिया,
विपत्ति देख आप पै स्वजात माल दे दिया।
समस्त हिंद देख लो स्वरक्त है बहा रहा।
विनीत प्रार्थना यही नृपेन्द्र! मान लीजिए
स्वराज्य योग्य हो चुके, 'हमें स्वराज्य दीजिए'।[10]

श्री 'वीरात्मा' ने अन्यायी खूँखारी विदेशी शासन को ललकारते हुए उसे समाप्त कर देने का संकल्प लेते हुए कहा–

मत रोको मदवालों से अब एक बार भिड़ जाने दो,
भारतीय खून का भी उनको चस्का आज चखाने दो।
रहे न अरमां दिल के दिल में जी की जलन बुझाने दो,
अन्यायी खूश्खारी शासन, जग से अब उठ जाने दो।[11]

माधव शुक्ल ने बड़े स्पष्ट स्वर में विदेशी शासकों के अन्याय व अत्याचारों के वीभत्स दृश्य सामने रखा और निदा की। उनमें विद्रोह तथा क्रान्ति का स्वर तीव्र होता हुआ दिखाई देता है–

पंजाबी महिलाओं की इज्जत दुष्टों ने खाक की,
जलियांवाला बाग में मेरे बच्चों का सिर चाक किया
इनका अन्याय देखकर सूरज चंदा भी शरमिंदा है
उदाहरण जिसका कि दुष्ट डायर अब तक भी जिंदा है।।[12]

इन कवियों की वाणी ने भारतीय जनता में स्वाधीनता की चेतना प्रवाहित कर देश को स्वाधीन कराने की ठान ली और हर प्रकार के जुल्म व अत्याचारों को सहने की तैयारी कर ली। उसने भविष्यवाणी की किया तो भारत में स्वतंत्रता लहराएगी या यह श्मशान भूमि होगी–

या स्वतंत्रता लहराएगी या तो होगा हिन्द मसान,
तैंतीस कोटि लाश पर शासन तब करना सुख से मतिमान।

उपर्युक्त रचनाएँ उन्ही भारतीय वीर सपूतों की प्रेरणा की देन थी।

2. सामाजिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि :

द्विवेदी युग में सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में बहुत बड़ा परिवर्तन हो रहा था। यह परिवर्तन तत्कालीन समाज सुधार दोनों ही क्षेत्रों में उपस्थित हुजा था। पश्चिम के साथ सम्पर्क होने पर किसी भी बात को वैज्ञानिक दृष्टि से परखने की शक्ति का विधान हमारे अंदर प्रविष्ट हो चुका था। पश्चिम में विकसित भाईचार धर्मनिरपेक्षता एवं तटस्थता तथा समानता के भाव ने वहाँ के प्रबुद्ध वर्ग को प्रभावित किया। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस, एनी बेसेन्ट और भारतेन्दु, दयानन्द सरस्वती जैसे समाज सुधारक नेताओं ने सामाजिक एवं धार्मिक पुनरुद्धार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, वेदान्त दर्शन, वेद समाज, गांधीवादी विचारधारा, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन सोसाइटी आदि द्वारा सबने अपने–अपने तरीको से सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। दादाभाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले, तिलक एक तरु राजनीतिज्ञ थे तो दूसरी तरफ़ समाज सुधारक, यद्यपि द्विवेदी युग के आरंभ के समय दयानन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द आदि का देहान्त हो चुका था। बावजूद इसके उनका प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा, कई अमानुषिक प्रयाएँ भी ढीली पड़ गई किन्तु आत बाल विवाह, विधवा–विवाह निषेध स्त्री शिक्षा का अभाव, पर्दा–प्रथा वर्ग–भेद, अन्ध–विश्वास समुद्र–यात्रा आदि कुरीतियों समाज को खोखला कर रही थी। तत्कालीन नेताओं ने इस सब कुरीतियों को समूल नष्ट करने के लिए कार्य किए। रेल, तार, मुद्रण के प्रसार और समुद्र यात्रा, शिक्षा का प्रसार आदि द्वारा सामाजिक रूढ़ियाँ टूटने लगी।

तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन ने सामाजिक कुरीतियों को प्रभावित किया। राष्ट्र को स्वतंत्र कराने की भावना ने लोगों को जाति, धर्म, वंश से ऊपर उठने के लिए प्रेरित किया। हिन्दू–मुस्लिम एकता, हरिजनोद्धार आदि के लिए नेताओं ने कई कार्य किए। आर्य समाज द्वारा चलाये गये शुद्धि आंदोलन ने जहाँ हिन्दुओं की बिखरी हुई जातियों को एकजुट होने के लिए प्रेरणा दी, वहीं हिन्दू मुस्लिमों की एकजुट करने के लिए कई कार्यक्रम

बनाए गए। तर्क बुद्धि, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नवीन शिक्षा और आविष्कारों से लोगों को एक नए राह पर चलने की प्रेरणा मिली। वैज्ञानिक आविष्कारों ने लोगों के बीच की दूरी को कम किया।

इस युग में पौराणिक धर्म की प्रमुखता के कारण बहुदेववाद, धार्मिक यात्रा, व्रत, कर्म–काण्ड, मूर्तिपूजा और त्यौहारों का बोलबाला था। आर्य समाज द्वारा इन भेदों को दूर करने का सर्वाधिक प्रयत्न किया गया। एकेश्वरवाद का प्रचार करके आर्य समाज ने लोगों को एकसूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। धार्मिक संस्कारों को तत्कालीन नेताओं ने नया रूप दिया। गीता के मानव धर्म का सन्देश फैलाया गया। लोकमान्य तिलक, एनी बेसेन्ट तथा महात्मा गांधी ने गीता की व्याख्या अपने–अपने ढंग से की। उन्होंने समाज को मानव मात्र से प्रेम करने का संदेश दिया। इस प्रकार हम देख सकते है कि द्विवेदी युग समग्र ढंग से सामाजिक एवं धार्मिक सुधारवाद का युग था, जिसने लोगों में तार्किक वैज्ञानिक दृष्टिकोणों को आत्मसात कराया।

3. साहित्यिक पृष्ठभूमि :

भारतेन्दु हरिश्चंद्र के अवसान के बाद हिन्दी भाषा व साहित्य की उन्नति में शिथिलता आ गई थी। एक ओर अनुवाद और अनुकरण की प्रवृत्ति भी बढ़ रही थी। दूसरी ओर खड़ी बोली ब्रज को प्रधान बनाने को लेकर भी मतभेद बना था। साहित्यिक गतिविधियों को नियंत्रित करने वाला कोई नेता नहीं था। साहित्य में एक प्रकार से अराजकता, उच्छृंखलता और पथ–भ्रष्टता का वातावरण बन गया था। एक ओर तो तिलक आदि राष्ट्रीय विचारधारा को फैला रहे थे तो दूसरी ओर हिंदी जगत में अनिश्चितता का वातावरण भी बना हुआ था। राष्ट्रीयता को बाणी देने के लिए एक सशक्त भाषा की आवश्यकता थी। अँग्रेज भाषा–भेद नीति को बनाए रखकर अपना कार्य सिद्ध करना चाहते थे। फिर भी हिंदी प्रेमियों द्वारा हिंदी की उन्नति के प्रयास निरन्तर हो रहे थे।

पं. मदनमोहन मालवीय, बाबू श्यामसुंदर दास, महाबीर प्रसाद द्विवेदी, और बालमुकन्द गुप्त के प्रयत्न से 1900 ई में लेफ्टिनेन्ट गवर्नर एटनी मेकडॉनल्ड ने अदालत में हिंदी भाषा और नागरी लिपि के व्यवहार के लिए आज्ञा पत्र निकाला। राजनीतिक आदोलनों और वैज्ञानिक आविष्कारों तथा ईसाई मिशनरियों के प्रयत्न से हिंदी के विकास में सहायता पहुँची। किन्तु जैसा कि ऊपर हमने चर्चा की है कि हिंदी भाषा में अनुकरण की प्रवृत्ति बढ़ी थी। भाषा जनगढ़ थी। काव्य परिनिष्ठित एवं काव्योचित गुणों से विहीन हो रही था। व्यवस्थित भाषण के अभाव के कारण हिंदी साहित्य का स्तर गिरता जा रहा था। ऐसे समय में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा का संस्कार शुरू किया। उस समय खड़ी बोली में रचना करने वाले अलग–अलग रचना सिद्धांत रखते थे। अंग्रेजी, बंगला, संस्कृत आदि के काव्य के अनुसार कई शैलियाँ चल पड़ी थीं। द्विवेदी जी ने काव्य रचना के क्षेत्र में काव्य भाषा को परिमार्जित एवं स्थिर रूप देने के लिए कार्य किया। एक समर्थ आलोचक की भाँति उन्होंने विभिन्न रचनाकारों की रचनाओं को सुधारा। भाषा को सजाने संवारने का कार्य उन्होंने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से किया। गद्य और पद्य की एक भाषा के लिए द्विवेदी जी ने अथक परिश्रम किया। उनकी लगन, भाषा के प्रति उनकी निष्ठा से ही खड़ी बोली, का परिमार्जित रूप उभरकर सामने आया और पद्य तथा गद्य की भिन्न भाषा का झगड़ा दूर हो गया। मुख्य रूप से उन्होंने भाषा को प्रसाद गुण से युक्त, करके उसे व्याकरण सम्बंधी अशुद्धियों से दूर किया साथ ही अभिव्यंजना शक्ति से पूर्ण, बनाने का प्रयत्न किया। रचनाकारों

को उन्होंने, शब्दाडम्बर से बचने और अश्लील और ग्राम्य, ठेठ शब्द प्रयोग से बचने का सुझाव दिया। उन्होंने लेखकों को देशज शब्द के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया। मुहावरों का प्रयोग तथा स्वाभाविक अलंकारों के प्रयोग के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार एक कठोर शासक के समान उन्होंने भाषा के क्षेत्र में लेखकों को नियंत्रित किया। उन्होंने भारतेन्दु युग से चली आ रही अव्यवस्थाओं और त्रुटियों को दूर करके साहित्य को एक अनुशासित रूप प्रदान किया। पत्रिकाओं द्वारा नवीन विचारधारा का प्रचार जोरों से हुआ। तत्कालीन पत्रिकाओं में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'सरस्वती', 'इन्दु', 'मर्यादा', 'प्रताप', 'अभ्युदय', 'प्रभा', 'भारतमित्र', 'सैनिक', 'अर्जुन', तथा 'आज' में राष्ट्रीय विचारधारा से परिपूर्ण साहित्य का प्रकाशन होता था जिससे लोगों में राष्ट्रीय चेतना फैली। इस प्रकार द्विवेदी युगीन साहित्य एक नई दिशा की ओर अग्रसर हुआ।

इस प्रकार हम देख सकते है, कि द्विवेदी युग के विकास में उपर्युक्त राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक चेतना ने महत्वपूर्ण योगदान किया है, यही वह परिस्थिति और चेतनागत कारक थे जिसने इस युग को विकसित होने की उर्वरा भूमि, आवश्यक तत्व भी प्रस्तुत की।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. द्विवेदी मीमांसा, प्रेम नारायण टंडन, इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, संस्करण 1939, पृष्ठ 7
2. मैथिलीशरण गुप्त, स्वदेश संगीत, प्रथम संस्करण पृष्ठ 16
3. मैथिलीशरण गुप्त, मंगलघट, (प्रथम संस्करण) पृष्ठ 6, 26
4. मैथिलीशरण गुप्त, मंगलघट, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 262
5. मैथिलीशरण गुप्त, मंगलघट, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 33
6. श्री भगवन्नारायण भार्गव, बी.ए., राष्ट्रीय तरंग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 37
7. गया प्रसाद शुक्ल सनेही, त्रिशूल–राष्ट्रीय मंत्र, संस्करण, प्रथम, पृष्ठ 3
8. गया प्रसाद शुक्ल सनेही, त्रिशूल तरंग, पृष्ठ 36
9. श्री बद्रीनाथ भट, मातृभूमि कविता, 'मर्यादा', मार्च 1941), मैथिलीशरण गुप्त, स्वदेश संगीत (प्रथम संस्करण) पृष्ठ 16
10. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, राष्ट्रीय तरंग काव्य संग्रह, पृष्ठ 6
11. स्वदेशमाता–सरस्वती, मार्च 1608
12. माधव प्रसाद शुक्ल, जाग्रत भारत, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 10

हिन्दी साहित्य में बालश्रम शोषण की अभिव्यक्तियाँ

डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कूबा पी०जी० कॉलेज,
दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

बालश्रम सभ्य और स्वाधीन समाज के माथे पर लगा एक कलंक है। स्वाधीनता की अवधारणा, समानता के बिना अधूरी है। बन्धुत्व उसका अग्रगामी चरण है। स्वाधीन भारत आज 67 वर्ष की यात्रा पूर्ण कर लेने के बावजूद भी स्वाधीनता आज भी अपने अर्थ तलाश रही है। गुलामी की पीड़ा के दंश का सर्वाधिक प्रभाव नारियों और बच्चों पर ही पड़ता है। स्वाभाविक है आजादी की खुशी की प्राक्ट्य या इजहार उन्हें ही करना चाहिए, किन्तु आजादी में क्या उल्लसित बच्चे और उत्फुल्लित नारियाँ दिखाई देती हैं? यदि नहीं तो इसका अर्थ है कि आजादी का स्वर्णिम प्रकाश अभी इन तक पहुँचने में लाखों कोस दूर है। इनके बुझे मुरझाये चेहरे को किसी अनजान रोशनी की तलाश है।

अनेकता में एकता का संदेश लिए हमारा भारत यदि एक उपवन है तो बच्चे भी उस उद्यान के फूल हैं जो खिले हुए सुमन की तरह बगीचे की सुन्दरता बढ़ाते हैं और बगीचे तथा उसके माली की कर्मनिष्ठा के परिचायक होते हैं। बच्चे तो राष्ट्र का भविष्य होते हैं, और किसी राष्ट्र के भावी स्वरूप का अनुमान उस राष्ट्र के बच्चों की स्थिति को देखकर ही लगाया जा सकता है। भारत के वर्तमान बच्चे क्या वास्तविक अर्थों में आजादी का एहसास कर पा रहे हैं? या आजादी उनके लिए मात्र एक स्वप्न बनकर ही रह गई है। यह यक्ष प्रश्न आज राष्ट्र के सामने खड़ी हो गई है।

किसी भी राष्ट्र की आर्थिक व भौतिक समृद्धि चिरस्थाई नहीं रह सकती, यदि उसकी नई पीढ़ी गुणक्तायुक्त न हो। अत: देश के भविष्य को बेहतर बनाने व सुरक्षित करने के लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान संतति का दक्षतापूर्ण लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा व पर्याप्त विकास किया जाए। भारत में बाल कल्याण को प्रमुखता प्रदान करने हेतु प्रथम प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू के जन्म दिवस 14 नवम्बर को 'बाल दिवस' के रूप में मनाया जाता है, किन्तु जहाँ एक ओर बाल-कल्याण पर विशेष जोर दिया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर बाल-श्रमिकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

भावनाओं के संसार से दूर आज बच्चे केवल मजदूर बनकर ही रह गए है, अपने माता-पिता के ये नन्हें खिलौने समय से पूर्व सयाने होकर नियति के खिलौने बन गये हैं। उनकी कोमल कल्पनाएँ अब परियों के देश में विचरण नहीं कर पाती, बल्कि कोई कालू पिशाच उनकी भावनाओं का बध कर उनके कोमल पसीने को बेचकर अपने लिए धन कमा लेना चाहता है। जिस तरह राजनेताओं के लिए

व्यक्ति, राष्ट्र का नागरिक नहीं, केवल एक वोट होता है, ठीक उसी तरह धन के मुमुक्षुओं के लिए बच्चे भगवान का प्रतिरूप नहीं, पैसा पैदा करने वाली मशीन होते हैं।

स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय जन मानस ने सुनहरे सपनों का एक ताना–बाना बुन रखा था। उस समय यही प्रतीत होता था कि स्वतन्त्रता मिलते ही प्रगति के रास्ते में आये सारे रोड़े स्वतः ही हट जायेंगे। पराधीनता की जंजीर टूटते ही मुक्त आकाश में स्वतन्त्र पंक्षी की तरह विचरण का सुख तो प्राप्त होगा ही, बल्कि सुख, सुविधा और सम्पन्नता भी प्राप्त होगी। असमानता, शोषण, भूख, गरीबी से मुक्ति का जो सपना था वो आज 67 वर्षों के बाद भी सपने ही रह गये। राजनीतिक स्वतन्त्रता तो हमने 15 अगस्त, 1947 को ही प्राप्त कर ली थी, परन्तु आर्थिक रूप से अपने पैरों पर मजबूती के साथ आज भी खड़े नहीं हो पा रहे हैं तथा विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की ओर देखना पड़ता है। विषमताएँ, शोषण, भूख और गरीबी का जाल उसी तरह बिछा हुआ है जैसे पहले था।

आज भारत जैसे विकासशील देश में साढ़े 5 करोड़ से भी ज्यादा नौनिहाल अपने बचपन को बूढ़ाकर जीवन से संघर्ष कर रहे हैं। इन नौनिहालों के श्रम से बेशर्म पूँजीपतियों की तिजोरियाँ तो भर रही हैं, लेकिन इन्हें और इनके परिवार को बमुश्किल दो जून की रोटी नसीब हो रही है। कुरूप हो रहे इस भारतीय समाज में अपने सुनहरे भविष्य को बेचने वाले ये बाल–श्रमिक क्या आजादी के 67 वर्ष की उपलब्धियों को समझ पायेंगे? यह भी एक सवाल बन गया है।

चाय के बागान हो या बारूद के कारखाने, कालीन बुनाई के केन्द्र हो या रंग–रोगन करने वाले संस्थान सर्वत्र बच्चे श्रमिक के रूप में कार्यरत् हैं। जब उनके स्वास्थ्य की चिन्ता किसी को नहीं तो उनके भावनाओं के संसार में झाँकने का उपक्रम कोई क्यूँ करें?

साहित्य की दुनिया भावनाओं और यथार्थ की भी दुनिया होती है। उन मूक स्वरों को मुखरित करना, उन्हें वाणी देना साहित्यकार का कला कौशल भी होता है और धर्म भी। बाल भावनाओं की अनदेखी हिन्दी के साहित्यकारों ने नहीं की है। साहित्य में बाल श्रमिकों के दुर्गति के आकड़े भले ही उपलब्ध न हों, किन्तु उनका जीवन अपनी सम्पूर्ण बेवसी के साथ जिस रूप में चित्रित है, वह आकड़े भी भयावहता से भी अधिक भयावह है। आँखों की सच्चाई आकड़ों की सच्चाई से कहीं अधिक प्रभावी और प्रवाही है।

अपने स्वास्थ्य शिक्षा व भविष्य को दाँव पर लगाकर अटूट श्रम करने के लिए मजबूर देश के करोड़ों बच्चे के कल्याण के परिप्रेक्ष्य में सर्वोच्च न्यायालय का 10 दिसम्बर, 1996 का फैसला भारतीय इतिहास में ऐतिहासिक घटना है। बच्चे ही देश के भविष्य हैं और उन्हें सुरक्षित वातावरण में शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास का अवसर प्रदान किया जाना स्वस्थ एवं सन्तुलित समाज निर्माण की महती आवश्यकता है। भारत सरकार ने बालकों के सम्बन्ध में 1979 की राष्ट्रीय नीति में बच्चों को राष्ट्र की सर्वोत्तम निधि माना है, लेकिन राष्ट्र की सर्वोत्तम निधि संवैधानिक सुरक्षाओं एवं विशेष अधिनियमों के बावजूद भी हर शहर–गाँव में संवेदनशील के भयानक जंगल में करोड़ों बाल श्रमिक भयभीत मेमनों की तरह पुटपाथों पर होली–दीवाली

मनाते अपना और अपने परिवार का पालन-पोषण करने में व्यस्त हैं। ये बाल-श्रमिक संवेदनहीन रूप समाज में दो पैसे की तलाश में अनचाहे रोजगार के अंधेरे में अपने अमूल्य बचपन को गुम होते देख रहे है और-

"बुभुक्षित: किं न करोति पापम्"

की तरह भूख की ज्वाला को शान्त करने के लिए जीवन संघर्ष की पाठशाला में हर वह पाठ पढ़ रहे हैं, जो एक समर्थ पिता अपने लाडले नौनिहाल को कभी नहीं पढ़वाना चाहता। बाल श्रमिकों की समस्या औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप ही उद्‌भूत हुआ है। इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप नगरीकरण का उदय, कुटीर उद्योगों पर संकट, ग्राम्य जीवन का पलायन और श्रम शोषण जैसी समस्याएँ पैदा हुई। जिसमें बाल श्रमिक समस्या भी है। भारत जैसे अविकसित किन्तु विकास के प्रयासरत् राष्ट्र में इस समस्या ने ज्यादा जटिल रूप धारण कर लिया है। अंग्रेजों के समय में ही सन् 1931 में शाही आयोग ने 5 वर्ष की उम्र के बच्चों को 18 घण्टे प्रतिदिन काम करते पाया था। 1946 में श्रम जाँच समिति ने श्रम सम्बन्धी दशाओं पर अपनी रिपोर्ट में लिखा था, "भारत में श्रम सम्बन्धी दशाओं का एक बड़ा दोष यह है कि कुछ उद्योगों में बच्चों को गैर-कानूरी रूप से काम पर रखा जाता है।"

आजादी के बाद लेबर ब्यूरो ने अपनी जाँच में इस विषय पर लीपा-पोती करने की चेष्ठा ही नहीं की बल्कि बालश्रम समस्या को गम्भीर समस्या मानने से भी इन्कार कर दिया। हम बच्चों के मंगल के नाम पर उन्हें बहलाने के लिए 'बाल दिवस' मनाते रहे, इधर भारतीय बालपनों की उदासियाँ बढ़ती ही रही। गुलाब के फूलों के मध्य खिलखिलाते बच्चों की तस्वीर अभिजात्यवर्गीय सजे सँवरें बच्चों की ये मुस्काने नकली थी। इस देश का बचपन तो किसी हीरो के घर गोबर के रूप में पल रह था या बलचलमा के रूप में नागार्जुन की कलम से अपनी पीड़ा अभिव्यक्त कर रहा था। शोषण दैत्य और पामाली इस देश के गरीब किसान और मजदूरों का भाग्य बनकर प्रकट होते रहे हैं। फिर उनका वंशज बाल श्रमिक के इस अभिशाप से केसे मुक्त हो सकता था। कानून बनाने वालों ने कारखाना एक्ट बनाए, जिसमें 1881, 1891, 1922, 1934, 1948, बागान श्रमिक एक्ट 1951, खान एक्ट 1952, आदि प्रमुख है। तोड़ने वाले मजे से कानून तोड़ते रहे। कभी 10 वर्ष के बच्चे को 15-16 वर्ष का बताकर तो कभी 17 घण्टे के श्रम को 5-6 घण्टे का बताकर।

सार्वजनिक क्षेत्र में कामगार बच्चों पर तो विचार किया जाता है, किन्तु घरों में काम करने वाले, होटलों में कप-प्लेट धोने वाले बाल श्रमिकों की पीड़ा पर ध्यान कम ही जाता है तभी तो कहा है-

"मेरे कवि तुझे किस बात का गम है,
कागज-कलम वाले कप-प्लेट थामे है,
यही क्या कम है?"

प्रसिद्ध कथा शिल्पी यशपाल की कहानी कुत्ते की पूँछ में नन्हा 'हरूआ' बाल श्रमिकों का प्रतीक है। उसके शोषण का चित्रण यशपाल जी ने इस प्रकार किया है-

"देखा, हलवाई की दुकान थी। सौदा उठा लिया गया था, बिजली का बल्ब अभी जल रहा था। लाला दुकान के तख्त पर चीलम उलटकर दीवाल पर औंधा रहे थे। नीचे सड़क पर बड़ी कढ़ाई ईंट के सहारे टिकाकर रखी गई थी। उसे मांजने के प्रयत्न में एक छोटी उम्र का लड़का उसी में सो रहा था। कालिख भरा जूना उसके हाथ में जमा था और उसकी बाँह फैली हुई थी, दूसरा हाथ कढ़ाई को थामे था कढ़ाई को घिसते-घिसते लड़का औंध गया और फैली हुई बाँह पर सिर रखकर सो गया।''

एक कुत्ता कढ़ाई के किनारे-किनारे बच रही मलाई को चाट रहा था। यशपाल जी सब देखकर परिस्थिति समझने का यत्न कर रहे थे कि श्रीमती जी ने पिघले हुए हृदय से क्रोध का पुट देकर कहा- "देखते हो जुलम।.....क्या तो बच्चे की उम्र है, रात को एक बजे तक यह कढ़ाई जिसे यह हिला नहीं सकता, उससे मंजवाई जा रही है।"

इन निरीह मासूमों का कहीं अन्त नहीं है। हमदर्दी दिखाकर वकील साहब की पत्नी उसे घर ले जाती है। वह 'हरूआ' से हरीश तो बन जाता है, किन्तु दुर्भाग्य यहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ती। उसे घर के नौकर का ही पद मिलता है, माता-पिता का प्यार नहीं, प्यार का अधिकार माँगने पर झिड़कियाँ और अपमान ही प्राप्त होता है। इस पर टिप्पणी करते हुए यशपाल जी लिखते हैं-यही सरकार मजदूरों की भलाई के लिए कानून पास करती है और जब मजदूरों का हौसला बढ़ जाता है तो वे खुद ही सुधार माँगने लगते हैं और तब सरकार को इनका आन्दोलन दबाने की जरूरत महसूस होने लगती है।

भारतीय परिवारों में पिता के कठोर अनुशासन की क्रूर छाया में न जाने कितनी बाल-भावनाएँ आहत होती हैं। अयोध्या नरेश हरिश्चन्द्र ने अपने वचन की पूर्णता के लिए जब छोटे बच्चे 'रोहित' को वेश्या के हाथों बेच दिया तो वह राजा तो सत्यवादी कहलाए पर बालक रोहित वेश्या के लिए फूल तोड़ते हुए अपनी जान गवाँ बैठा। इस तरह बाल भावनाओं की अनदेखी हमारे समाज का सनातन सत्य है। हिन्दी के उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यास कर्मभूमि का नायक अमरकान्त बचपन से ही अपने पिता समरकान्त के काले कारनामों से नफरत रखता है। बालश्रम की यह नफरत युवावस्था में और गहरी हो जाती है। स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कहानी के पुरोधा ज्ञान रंजन की कहानी पिता-दर-पिता में पिता के प्रति आज की पीढ़ी की बढ़ती दूरी, जो घृणा के स्तर तक पहुँच जाती है का ही चित्रण है। नागार्जुन के उपन्यास रतिनाथ की चाची का बाल पात्र रतिनाथ अपने पिता जयनाथ के आतंक का साक्षी है।

सौतेली माताओं के अत्याचारों से पीड़ित बच्चों की पीड़ा विमाता के सम्मुख बेबस व लाचार पिता के कारण कई गुना बढ़ जाती है। विमाता की पीड़ा तो ठीक मन्नू भण्डारी के उपन्यास आपका बंटी का बाल पात्र बंटी अपने सगे माँ-बाप के लिए ही बेगाना हो जाता है। इस तरह के परिवारों में पलने वाले प्रॉबल्म चाइल्ड समस्यामूलक बालकों के लिए मनोजगत की गुत्थियाँ भी अनसुलझी रह जाती है।

स्कूलों को दण्डालय और जुर्मानालय बना देने वाले तथाकथित अनुशासनप्रिय क्रूर अध्यापक- अध्यापिकाओं का व्यवहार जाने कितने मासूम बच्चों से पढ़ाई का अधिकार छीन लेता है। कचरा बीनने वाले बालक-बालिकाएँ कचरे के ढेर से ऐसी वस्तुएँ पा जाते हैं, जो उन्हें समय से पहले ही वयस्क होने का ज्ञान दे देती है। नालियों

की गन्दगी में अपनी किस्मत तलाशने वाले अभागे बाल श्रमिक सनोवरा की पीड़ा आलमशाह खान के कथा संग्रह किराये की कोख की कहानी पंक्षी करे काम में साकार होते स्पष्ट दिखाई देती है।

इतना परिश्रम करने पर भी इन मासूमों को दो जून तो क्या एक वक्त की रोटी भी मयस्सर नहीं होती। भूख और अंधेरा ही इन बाल श्रमिकों के पल्ले का सच है, जिसे हिन्दी के साहित्यकारों ने वाणी दी है। बाल श्रमिकों की पीड़ा आकड़ों के दुरूह जंगल में सरकारी कागजों की शोभा बनकर रह न जाए, इसके लिए बाल श्रमिकों की समस्या का समाधान करने के लिए हमें साहित्य का भी सहारा लेना होगा। साहित्यकार बाल शोषण और पीड़ा के भयावह दृश्यों द्वारा सामाजिक सोच में बदलाव का पथ प्रशस्त कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ध्रुव कुमार दीक्षित- बालश्रम उन्मूलन एक चुनौती
2. गुप्ता, एम एल और शर्मा डी.डी. - भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र (1996)
3. प्रभात सुमन- समाज कल्याण अंक 4 नवम्बर, 1994
4. जैनेन्द्र- अपना-अपना भाग्य
5. नागार्जुन-रतिनाथ की चाची, बलचलमा
6. प्रेमचन्द्र- कर्मभूमि
7. यशपाल- कुत्ते की पूँछ
8. ज्ञान रंजन- पिता-दर-पिता
9. मन्नू भण्डारी- आपका बन्टी
10. आलमशाह खान- पंक्षी करे काम, किराये की कोख
11. कारखाना एक्ट- 1881, 1891, 1922, 1934, 1948
12. बागान श्रामिक एक्ट - 1951
13. खान एक्ट- 1952

भोजपुरी संस्कृति में लोक साहित्य की लोकप्रियता

डॉ० विकास कुमार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़, उ०प्र०

लोक साहित्य वह लोकरंजनी साहित्य है जो सर्वसाधारण समाज की मौखिक रूप में भावमय अभिव्यक्ति करता है। सृष्टि के विकास के साथ ही लोक साहित्य का उद्‌भव माना गया है। इस प्रकार लोक साहित्य मानव समाज के क्रमिक विकास की कहानी हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। लोक साहित्य वर्तमान उन्नत एवं कलात्मक साहित्य का जनक है। आज की संस्कृति एवं परिष्कृत साहित्य व्यक्ति की महत्ता को स्वीकार करता है। लोक साहित्य जनता जनार्दन को ही अपना प्रभु मानता है। उसमें किसी का व्यक्तित्व नहीं झलकता अपितु उसमें समस्त समाज की आत्मा मुखरित होती है। इसी कारण लोक साहित्य के रचयिताओं अथवा कवियों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इसी विशेषता को लक्षित कर पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है – जिस तरह वेद अपौरूषेय माने जाते हैं, उसी तरह ग्राम गीत भी अपौरूषेय है।

शब्द कोश में लोक के अनेक अर्थ हैं, किन्तु इनमें दो अर्थ बहुत प्रसिद्ध है– एक स्थान विशेष और द्वि तीय जन सामान्य। लोक शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में प्राप्त होता है, जहाँ इसे सामान्य जन अथवा स्थान विशेष के रूप में ही प्रयुक्त किया गया है जैसे –

नाभ्यां आसीदतरीक्षं शीर्ण्णो द्यौः समवर्त्तर्त्।
पदाभ्यां भूमिदिशः श्रोत्रात्तथा लोका अकल्पयन।।

इसका तात्पर्य है कि परमेश्वर की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक, पैरों से भूमि और दिशाएँ तथा कानों से लोक की रचना हुई है। यहाँ लोक का अर्थ जन सामान्य एवं स्थान दोनों ही हो सकता है। आचार्य शुक्ल ने भी अपने निबन्धों मे लोकसामान्य, लोकसत्ता, लोक व्यवहार, लोक धर्म, लोक मंगल आदि शब्दों का स्थान–स्थान पर प्रयोग किया है। लोक धर्म अत्यन्त प्राचीन है, जिसका परम्परा से ही जनसामान्य के अर्थ में प्रयोग होता आया है।

लोक साहित्य की भूमि विस्तृत गगन सदृश है। पूर्णतया असभ्य, अनाम, आदिम कबीले से लेकर सुसभ्य महानगरों, स्त्री–पुरूष, आबाल वृद्ध सभी के साथ उसका खिलवाड़ चलता है। वह मानव की महान आत्मा का अभिन्न अंग है, जो सभी ऋतुओं, जन्म–मृत्यु सभी दशाओं में खेत, खलिहान में प्रिय सखा सा संग चलता है। समान भावनाओं का ऐसा जंगली पुरूष है जो चाहे किसी भी धरा–बोली में मँहके, तुरन्त गंध से पहचान लिया जाता है।

लोक साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त विशाल और व्यापक है। जहाँ भी लोक है उसकी अनुभूतियाँ और अभिव्यक्तियाँ हैं, वही लोक साहित्य भी है। जन सामान्य का हँसना, गाना, रोना, खेलना, कूदना आदि सभी सामान्य क्रियाओं से लेकर उत्सव पुत्रोत्पत्ति, विवाह, जन्म आदि मृत्युपर्यन्त सोलहों संस्कार के अवसर पर गाए जाने वाले गीत लोक साहित्य के कोश की ही अमूल्य निधियाँ हैं। वह जन सामान्य के अंक में ही पोषण प्राप्त करता है। जन सामान्य के दुलार में ही पलता है। जन सामान्य की मृदुल लोरी सुनकर ही आँखे खोलता है और उसके अनुराग तथा विषम परिस्थितियों के थपेड़ों मे सम और विषम परिस्थितियों का सामना करता हुआ ही प्रौढ़ता प्राप्त करता है। किसी ने सत्य ही कहा है – "एक समय था जब जनता की सरलता, स्वाभाविकता तथा स्वच्छन्दता से यह साहित्य विभूषित रहता था। वह साहित्य उतना ही स्वाभाविक था, जितना जंगल में खिलने वाला फूल। उतना ही स्वच्छन्द था, जितना आकाश में विचरने वाली चिड़िया। उतना ही सरल एवं पवित्र था, जितना गंगा की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट रह गया है। वही हमें लोक साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है। इस प्रकार लोक साहित्य के क्षेत्र में सम्पूर्ण रचनाएँ समाहित हो जाती हैं, जो जनभाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। इनमें लोकगीतों की प्रधानता होती है। ये गीत छोटे एवं बड़े दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। वृहदाकार कथात्मक गीतों केा लोकगाथा कहकर पुकारा जाता है। आचार्य शुक्ल ने इन्हें वीर गीत कहा था। ये गीत विभिन्न व्यक्तियों, ऋतुओं, पर्व–त्यौहारों, सामाजिक आचार व्यवहार एवं जीविका आदि से सम्बन्धित होते हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का यह अभिमत इस विषय में समीचीन ही है कि – "सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, जीवन–मरण, लाभ–हानि, सुख–दुख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में होती है उसी को लोक साहित्य कहते हैं, जो जनता द्वारा जनता के लिए लिखा गया हो।"

लोककथाओं और लोक साहित्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से सुरक्षित चली आयी है। अनेक शिष्ट साहित्यकार भी लोकगीतों को शिष्ट साहित्य का रूप दे देते हैं। वैदिक साहित्य के आख्यान, बौद्ध साहित्य की जातक कथाएं, पुराण ग्रंथों के अनेक आख्यान, जैन पुराणों, कथा–सरित्सागर, पंचतंत्र आदि में लोक साहित्य को शिष्ट साहित्य का रूप प्रदान किया गया है। इसके अतिरिक्त लोक साहित्य का अध्ययन करते समय अध्येता उन तत्वों को ग्रहण करने के लिए भी विवश होते हैं, जो धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, पुरातत्व इतिहास आदि क्षेत्रों में आते हैं। इस प्रकार लोक साहित्य अनेक क्षेत्रों में पदार्पण करता हुआ विशाल क्षेत्र में प्रस्तुत होने लगता है। इसकी सीमाओं केा निश्चित करना कठिन प्रतीत होने लगता है।

किसी भी देश का लोक साहित्य उस देश की जनता के हृदय का उद्‌गार है। वह उसी हार्दिक भावनाओं का सच्चा प्रतीक है। विश्व के प्रत्येक समुदाय या समूह के सर्वोत्तम संस्कृति की आधारशीला वहाँ के लोक समाज पर टिकी हुई है। यही कारण है कि लोक समाज की संस्कृति को लोक संस्कृति का नाम दिया गया है। यह कोई लिपिबद्ध लेख नहीं है, बल्कि यह एक मानसिक धरोहर एवं लोक विश्वास है, जो लोक में पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत के रूपों में युगों से चली आ रही है। सांस्कृतिक परिवर्तन किसी भी समय व्यापक स्तर पर नहीं होता। उसमें वह परिवर्तन बहुत ही मन्द गति से होता है।

हर देश व हर जाति की भाषा का अपना एक लोकसाहित्य होता है, जो मौखिक होता है, जो लोक मानव की सहज अभिव्यक्ति होता है। यह मौखिक परम्परा के द्वारा ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ता रहता है। रचयिता का नाम अज्ञात होता है। लोकसाहित्य लोक की वाणी है, लोक जो कुछ कहता है, वह समूह की वाणी है, वह लोक का गान है, लोक का सुख-दुख उसमें निहित रहता है। लोक का हास-विलास उसमें अँगड़ाई लेता रहता है, सिसकियाँ भी होती हैं - चीख भी होती है, खिलखिलाहट भी होती है, बच्चे, बूढ़े, नर, नारी और तरूणियों की अंगड़ाइयां भी करवटे लेती रहती हैं। हिन्दी साहित्य कोश में लिखा है, वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे हर लोक समूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युगयुगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक-मानस प्रतिबिम्बित रहता है। इसी कारण इसके किसी भी शब्द में रचना-चैतन्य नहीं मिलता, जिसका प्रत्येक शब्द प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोक का अपना है।

यही कारण है कि किसी भी राष्ट्र की लोक संस्कृति में स्थायित्व बना रहता है और सभी संस्कृतियाँ अपना स्वतंत्र महत्व रखती हैं। भारतीय संस्कृतिक का समन्वित रूप अपने आप में अपूर्व है।

लोक साहित्य परिष्कृत साहित्य नहीं। उसमें न छन्द, न अलंकार और न शास्त्रीय गुण। एकदम लोक का सहज और स्वाभाविक जीवन व्यक्त होता है। इसका रचनाकार किसी भी प्रयोजन से प्रभावित नहीं होता है, उसके आस-पास का जीवन, उसके रीति-रिवाज, व्रत-त्यौहार, उत्सव, परंपराएँ आदि सभी कुछ अभिव्यक्त होते हैं।

भारत की विभिन्न संस्कृतियों में भोजपुरी क्षेत्र की लोक संस्कृति अपनी विशेष पहचान रखती है। भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक प्रगति के साथ भोजपुरी लोक संस्कृति मील के पत्थर के समान अपना महत्व रखती है।

भोजपुरी लोक संस्कृति में व्यापक रूप से लोकधर्म मिला हुआ है। शिक्षित समाज का धर्म वेदों-उपनिषदों, शास्त्रों एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोणों पर आधारित होता है। भोजपुरी लोक धर्म से सृष्टि का प्रत्येक अंग-प्रकृति, जलवायु, आकाश, पृथ्वी, मानव, पशु-पक्षी आदि सभी पूज्य बनकर आते हैं, जिसकी पूजा भोजपुरी लोक मानस न जाने कब से करता चला आ रहा है। वह सूर्य, चंद्रमा तथा नक्षत्रों की भी पूजा करता है। प्रातः कालीन सूर्य को प्रणाम करना व अस्ताचल सूर्य की भी पूजा डाला छठ के रूप में इस प्रार्थना के साथ करना कि हे सूर्य देव अगले दिन और तेज पूर्वक उदित होकर के हमारे कष्टों को हरिये तथा एकादशी पूर्णिमा आदि को व्रत करना, नक्षत्रों के आधार पर लगन और शकुन का विचार करना, गंगा, घाघरा तथा अन्य छोटी नदियों की पूजा भोजपुरी लोक संस्कृति की विशेषता है।

भोजपुरी लोक मानस - पीपल, बरगद, तुलसी, आंवला, नीम आदि वृक्षों को लोक धर्म की दृष्टि से व क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर आदि को शक्ति की परिचायक के रूप में देखता है। पीपल का पेड़ काटना भोजपुरी लोक मानस की दृष्टि से अशुभ और अधर्म है। पीपल के पेड़ के नीचे जल चढ़ाना और दीप जलाना यहाँ की संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। ऐसा माना जाता है कि पीपल पर जल चढ़ाने और दीप जलाने से बाधाएँ व ग्रहों का प्रकोप दूर हो जाता है। साथ ही साथ इसे पुत्रदाता भी माना जाता है। पुत्र चाहने

वाली स्त्रियाँ सायंकाल पीपल वृक्ष के नीचे सुबह शनिवार के दिन जल चढ़ाकर पाँच भाँवरे लेती हैं व शाम को शनिवार के ही दिन पीपल के पेड़ के नीचे दीपक जलाती हैं। ऐसा किवदन्ती है कि इस वृक्ष की जड़ में ब्रह्मा, तने में विष्णु और शाखाओं में शिव का वास है –

मूल ब्रह्मा त्वचा, विष्णुः आखे रूद्र महेश्वरः
पत्रे-पत्रे देवानाम् वृक्षराज नमोखस्तुते।

गीता में स्वयं श्री कृष्ण ने कहा है –

"अश्वत्थः सर्व वृक्षाणां"
(समस्त वृक्षों में मैं पीपल का पेड़ हूँ)

तुलसी का पौधा भारतीय लोक मानस में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसलिए घर-घर में बेदी बनाकर तुलसी का पौधा लगाते हैं। पूरे कार्तिक महीने में तुलसी पौधा के नीचे दीपक जलाते हैं व एकादशी पूर्णिमा के दिन ईंख, मिठाई व लाल चुनरी से तुलसी को दुल्हन जैसे सजाकर सिन्दूर से टीककर तुलसी का विवाह करते हैं। साथ ही साथ ऐसी भी मान्यता है कि जिस घर में तुलसी की नित्य पूजा होती है, वहाँ यमदूत कभी नहीं पहुँचते और संभवतया मृत्युशय्या पर पड़े व्यक्ति को यमत्रास से मुक्ति दिलाने के लिए ही तुलसी और गंगा जल को अन्तिम समय में व्यक्ति के मुँह में डाला जाता है –

तुलसी यस्य भवने प्रात्यहं परिपूज्यते
तद्गृहं निर्वसन्ति कदाचित् यमकिंकरा

भोजपुरी का एक लोकगीत उदाहरणार्थ यहाँ पर प्रस्तुत है –

आँगन बेदियाँ बनाइला
तुलसी लगाइला हो
तेहि बेदियाँ वैइठल नारायण
माँगन कुछ माँगीला

इस प्रकार तुलसी हमारी संस्कृति में जन-जन के रोम में बसी हुई है। आम, पलाश, ऑवला, बेल, चन्दन आदि की लकड़ियाँ भोजपुरी लोक संस्कृति में धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। घर में सुख शान्ति व समृद्धि हेतु कार्तिक महीने में ऑवला के पेड़ के नीचे भोजन पकाकर खाने की भी परम्परा है। आम की लकड़ी हवन के लिए विशेष रूप से प्रयोग में लायी जाती है। बन्दनवार बनाने में, धार्मिक अनुष्ठानों में, कलश सजाने के लिए आम के पत्ते का विशेष महत्व है। महाशिवरात्रि के दिन धतूर का पत्ता, बेल, गन्ना शिव की पूजा सामग्री में विशेष रूप से सम्मिलित किये जाते हैं व शिवरात्रि के दिन भाँग खाना व भाँग की शर्बत बनाकर पीना शुभ माना जाता है।

भोजपुरी लोक मानस में सत्यनारायण की कथा, हनुमान चालीसा, गीता, रामायण आदि का धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय लोक मानस में पशु-पक्षियों को भी यथोचित स्थान प्राप्त है। पशुओं में गाय

विशेष रूप से काली गाय धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है। धार्मिक अनुष्ठानों में गाय का दूध, दही, घी, गोबर व मूत्र आदि को प्रयोग में लाया जाता है, तथा शादी–व्याह, गृह प्रवेश, कथा आदि सभी शुभ कार्यों में गाय के गोबर का गौरी बनाकर उसे सिन्दूर से टीका लगाने के पश्चात ही कार्य का शुभारम्भ किया जाता है तथा नये घर में प्रवेश करने हेतु किए जाने वाले पूजा में गाय के मूत्र से घर का शुद्धिकरण किया जाता है। भारतीय हिन्दू समाज में गोदान का भी विशेष महत्व है, जिसकी चर्चा प्रेमचन्द ने गोदान में किया है। पशुओं की भांति कुछ पक्षी भी भोजपुरी लोक जीवन में धार्मिक स्थान रखते हैं जिनमें नीलकण्ठ, हंस, मोर, कबूतर आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। श्राद्ध के दिन कौवों का भी महत्व है। अन्य जीव–जन्तुओं में सर्प की पूजा की जाती है। सर्प को भोजपुरी लोक मानस मारना नहीं चाहता और उसे दूध पिलाता है। यही नहीं श्रावण मास में नागपंचमी के दिन साँप को नाग देवता मानकर उसकी पूजा करते हैं। इसी प्रकार कुँआ (वह स्थान जिसमें से लोग गांवों में पानी निकाल कर पीते हैं)। जाँता (जिसमें गेहूँ पीसकर आटा निकालते हैं), ओखली (जिसमें धान को कूट कर चावल निकालते हैं) आदि का भी विवाह एवं पुत्र जन्म के अवसर पर पूजा की जाती है।

अप्रत्यक्ष शक्तियों में देवी–देवता, भूत–प्रेत, दानव–पीर आदि की उपासना भी भोजपुरी में प्रचलित है। भोजपुरी क्षेत्र में जिन लोगों के बच्चे जन्म लेते ही मर जाते हैं, वे पुत्र की मंगल कामना के लिए एवं जीवित रहने के लिए उसका कान छेद देते हैं या जन्म लेते ही उसे किसी को बेच देते हैं, फिर खरीद लेते हैं और उसका नाम बेचन, बेंचू आदि रख देते हैं तथा साथ ही साथ घुरहूँ, कतवारूँ, जुड़ावन, जियावन जैस नामों के साथ पुत्र के जीने की कामना छिपी है। पुत्र जन्म के समय प्रसूतिगृह में धारदार लोहा रखने की प्रथा है, इसके पीछे यह लोक विश्वास है कि ऐसा करने से भूत–प्रेत व अन्य बाधाओं से नवजात शिशु सुरक्षित रहेगा साथ ही साथ जिस बच्चे का जन्म मूल नक्षत्र में होता है, उसे उसका पिता मूल पूजने तक नहीं देखता, सत्ताईस (27) दिन बाद मूल पूजन के बाद ही देखता है।

भोजपुरी समाज में यह मान्यता है कि दूध पीकर, माँस खाकर घर से बाहर नहीं जाना चाहिए। घर से बाहर जाते समय दही खाकर जाना शुभ माना जाता है तथा समाज में स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लेती। मकान का मुख्य दरवाजा दक्षिण दिशा में नहीं रखा जाता। शनिवार और मंगलवार को बाल नहीं कटाया जाता, शनिवार को साबुन लगाकर बाल भी इसलिए नहीं धुला जाता क्योंकि ऐसा माना जाता है कि शनिवार को बाल धुलने से शनी देव के कोप का भाजन बनना पढ़ता है। शनिदेव के कोप का भाजन बनना बौद्धिकता की दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता।

भोजपुरी लोक मानस में सिआर, भेड़िया, लोमड़ी तथा बिल्ली का रास्ता काटना, शरीर के ऊपर छिपकली का गिरना तथा सोना का पाना और खोना दोनों अशुभ माना जाता है। भोजपुरी समाज के लोग श्राप से भयभीत रहते हैं तथा वरदान प्राप्त करने के लिए सर्वदा ललायित रहते हैं। शकुन, अपशकुन लोक जीवन को उत्साहित और हतोत्साहित करती है।

भोजपुरी लोक मानस मंत्र और टोने, टोटके से बहुत प्रभावित है। आज तंत्र–मंत्र, टोने–टोटके लोक जीवन के प्रमुख अंग बने हुए है। इससे ओझा, मौलवी, औघड़ आदि को बहुत महत्व मिला हुआ है। नजर उतारने

के लिए झाड़ूक के अतिरिक्त राई, नमक और मिर्च हाथ में लेकर बच्चे के सिर पर सात बार ओंछ कर (घुमाकर) चूल्हे के तरफ पीठ करके आग में डालते हैं। इस समय अगर मिर्च के डालने पर झार न उठे तो समझना चाहिए कि नजर लगी है या फिर नजर उतारने के लिए बच्चे का जूठा दूध या खाए हुए भोजन को काले कुत्ते केा भी खिलाते हैं।

भोजपुरी समाज में मनोरंजन के लिए लोक नृत्यों तथा लोक नाटकों का आयोजन किया जाता है। धोबिया नाच, कहरवा नाच आदि भोजपुरी लोक नृत्यों में विशेष स्थान रखते हैं। इन लोक नृत्यों में प्रयोग में आने वाले वस्तु, वाद्य आदि भोजपुरी समाज की संस्कृति की अभिव्यक्ति है। इसके अतिरिक्त रामलीला, नौटंकी, विदेशिया आदि नाटकों का प्रदर्शन भी इस क्षेत्र में अधिक होता है।

भोजपुरी क्षेत्र की सामान्य वेशभूषा यहाँ की लोक संस्कृति की संवाहिका है। इस क्षेत्र के पुरूष सामान्य रूप से धोती, कुर्त्ता, मिरजई पहनते हैं तथा गमछा सिर पर रखते हैं। जैस - पूजा, पाठ, धार्मिक अनुष्ठान, कन्यादान आदि के अवसर पर धोती पहनकर और उसका खूँटा (यानि एक छोर) कन्धे पर रखकर अनुष्ठान पूरा किया जाता है। भोजपुरी संस्कृति के आन्तरिक और धार्मिक पक्ष को बाह्य संस्कृतियों ने प्रभावित नहीं किया।

भोजपुरी समाज में पर्दा-प्रथा आदि भी बहुत है। स्त्रियाँ साड़ी व ब्लाउज पहनती हैं। दिन में बाहर निकलते वक्त घूँघट निकालती हैं। यदि घर में रहती हैं तो सिर हमेशा ढकी रहती हैं। सास-श्वसुर, जेठ-जेठानी या बड़े लोगों के समक्ष चारपाई या कुर्सी पर नहीं बैठती हैं। आभूषणों में सोना, चांदी के जेवर पहनती हैं। गले में हँसुली, माला, कानों में कर्णफूल, नाक में नथिया, पैरों में कड़ा-छड़ा, भुजाओं में बाजूबन्द, गले में हुमेल, कानों में तरकी आदि पहनती हैं।

खान-पान में भोजपुरी क्षेत्र के लोग सामान्य रूप से सादा भोजन करते हैं। शादी-व्याह के अवसर पर सामान्यतः दाल, भात और पूड़ी-सब्जी, दही-खीर आदि का प्रचलन है। सत्तू इस क्षेत्र की तुरन्ता भोजन है। यह अपनी चटपट की विशेषता के कारण अधिक लोकप्रिय खाद्य है। ग्राम्यांचल के लोक जीवन में धूम्रपान विशेष रूप से प्रचलित है। हुक्का, बीड़ी सबसे अधिक प्रचलित है।

भोजपुरी क्षेत्र में वर्ष भर मेले और उत्सव तथा तीज-त्यौहार आदि मनाए जाते हैं। दशहरा का मेला तो पूरे भारत में धूमधाम से मनाया जाता है। इन मेलों की सबसे बड़ी विशेषता है कि इनमें बिकने वाली अधिकतर चीजे लोक कलाकारों द्वारा निर्मित होती है। छोटे बच्चों की गाड़ी, कजरौटा (काजल रखने वाला पात्र) हँसुआ, कुदाल, खुरपी, सरौता, मिट्टी के खिलौने आदि भोजपुरी लोककला के उत्कृष्ट रूप मेलों में दिखने को मिलता है, कहीं नट अपनी कलाकारी दिखाता है, तो कहीं बिरहा और आल्हा सुनने को भीड़ जुटी रहती है।

अतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि किसी भी देश और जाति की संस्कृति की अभिव्यक्ति और पहचान वहाँ के मेलों, तीज-त्यौहारों, विभिन्न संस्कारों, खान-पान, वेशभूषा, लोक-विश्वासों, लोक-कलाओं, लोक-गीतों, लोक-कथाओं, लोक-गाथाओं आदि से मिलती है।

अत: हम कह सकते हैं कि भोजपुरी लोक साहित्य में जो वर्णन मिलते हैं उनमें भोजपुरी लोक संस्कृति सर्वाधित अभिव्यक्त हुई है। भोजपुरी लोक संस्कृति जिस प्रकार यहाँ के लोगों के खान-पान, रहन-सहन, धार्मिक विश्वास, लोक-विश्वास, अंध विश्वास, आचार-विचार द्वारा अभिव्यक्त होती है, उसी प्रकार भोजपुरी लोक साहित्य की प्रत्येक विधा के द्वारा भी निरन्तर अभिव्यक्त होती है। भोजपुरी लोक साहित्य में जहाँ एक ओर अपार सांस्कृतिक चेतना छिपी हुई है, वहीं दूसरी ओर यह साहित्य राष्ट्रीय चेतना से भी पूर्ण है।

स्त्री संघर्ष का लोक निर्मित स्वरुप

डॉ. संगीता मौर्य
असिस्टेंट प्रोफेसर-हिंदी
राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय गाजीपुर, उ.प्र.

आधुनिक ज्ञान- विज्ञान के आलोक में हुए स्त्री आंदोलन के बहुत पहले भी नून-तेल की चिंता के साथ ही अपने समय-समाज की तमाम असमानताओं, विरोधों, पाबंदियों को झेलते हुए बहुत सी स्त्रियाँ, भक्त कवयित्रियां, थेरियों आदि ने अपनी मुक्ति की राह निकाली। इन स्त्रियों में थेरियों की अपेक्षा भक्ति कालीन कवयित्रियों पर खूब लिखा-पढ़ा गया है। जबकि भारत में स्त्री जीवन की प्रामाणिक प्रथम सामूहिक अभिव्यक्ति थेरियां ही हैं। बौद्ध धर्म के 'त्रिपिटक' के 'सुत्तपिटक' के अंतर्गत पांच निकाय हैं। उसमें से एक 'खुद्दक निकाय' के नवें भाग में 73 बौद्ध भिक्षुणियों के जीवन गाथाओं का संकलन है। ये बौद्ध भिक्षुणी ही 'थेरी' कहलायीं। इन थेरियों में अमीर-गरीब, निम्न-उच्च, स्वामी और दासी के साथ ही समाज से सर्वथा बहिष्कृत, वेश्याओं के लिए भी जगह थी। विमल कीर्ति की थेरी गाथा पढ़ते हुये हम देखते हैं कि भिक्खुड़ी सुमंगला अपने जीवन के कष्टों को उजागर करती हुई कहती हैं कि-

अहो ! मैं मुक्त नारी! मेरी मुक्ति कितनी धन्य है!
पहले मैं मूसल से लेकर धान कूटा करती थी,
आज उससे मुक्त हुई। मेरी दरिद्रवस्था के वे छोटे-छोटे बर्तन!
जिनके बीच में मैं मैली-कुचौली बैठती थी,
और मेरा निर्लज्ज पति मुझे उन छातों से भी तुच्छ समझता था,
जिन्हें वह अपनी जीविका के लिए बनाता था।
अब उस जीवन की आसक्तियों और मलों को
मैंने छोड़ दिया।
.....
अहो ! अब मैं कितनी सुखी हूँ !...

इसी तरह धान कूट कर जीवन-यापन करने, अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करने की बात अन्य थेरियाँ भी करती हैं। जैसा कि हम जानते हैं एक सामान्य स्त्री घर-गृहस्थी के बोझ तले दबी केवल एक हाड़-मांस का लोदा नहीं है बल्कि घर से बाहर निकलने तथा समाज के प्रति अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने में भी सक्षम है। वह अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सोचने-समझने की भरपूर शक्ति रखती हैं। लेकिन फिर भी देखा जाय तो हमारे समाज में स्त्रियों के हकमारी का इतिहास अनंत काल से जारी है। वह आधुनिक काल में अपने अधिकार एवं कर्तव्यबोध को लेकर आधुनिक शिक्षा एवं स्त्री मुक्ति आंदोलनों

के माध्यम से अधिक सचेत होती हैं। इससे पूर्व कि स्थिति पर यदि हम एक दृष्टि डालें तो पाते हैं कि लोक प्रथाओं से लेकर धार्मिक मान्यताओं तक स्त्रियों ने अपने दु:ख और उससे मुक्ति के लिए अपनी सशक्त अभिव्यक्ति को एक माध्यम बनाया है।

थेरीगाथा के संबंध में डॉ. विमल कीर्ति लिखते हैं- "थेरीगाथा नारी स्वतंत्रता को प्रकट करने वाला प्रथम ग्रन्थ है।" यदि हम स्त्रियों की स्वतंत्रता को ब्राह्मण और बौद्ध धर्म की दृष्टि से देंखें तो पाते हैं कि ब्राह्मण ध र्म में स्त्रियों को संन्यास लेने और विमुक्ति का अधिकार नहीं था। स्त्रियों को वर्णभेद से अलग तथा भेदपरक संस्कारों से इतर ज्ञान और विमुक्ति की चाह ने उन्हें बुद्ध की शरण में जाने को प्रेरित किया। इसलिए वे सब दु:खों से मुक्ति के लिए वे बुद्ध की शरण में जाना चाहती हैं। बुद्ध की इन्हीं समानतागत विचारों को आत्मसात करते हुए लोक की स्त्रियाँ सारे सांसारिक कष्टों को झेलते हुए अपनी मुक्ति की राह इसी लोक में ढूँढती हैं। वह संन्यास ग्रहण नहीं करतीं बल्कि उसकी अपेक्षा अपने कर्म को अधिक महत्व देती हैं। केवल मात्र संन्यास ग्रहण कर लेना ही लोक कल्याण का साधन नहीं है बल्कि इसी लोक में रहते हुए, लोक में व्याप्त समस्यायों के निराकरण हेतु सतत प्रयास करना संन्यास का बेहतर विकल्प हो सकता है। इसको अपने सांसारिक सन्दर्भों में देखें तो आज भी हमारे दैनिक जीवन में समाज की लोक मान्यताएँ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं।

मुझे याद है जब मैं बहुत छोटी थी। उस समय जब बेटियाँ अपने ससुराल से मायके जाती थीं। वह तब भी रोती थीं। मेरी बुआ जब एक बार अपने मायके आयीं तब पिता जी का पैर पकड़ कर खूब जोर-जोर से रो रही थीं। तब की स्त्रियाँ आज - कल की लड़कियों की तरह नहीं रोती थीं बल्कि अपने गीतों में अपने पूरे दु:ख की गगरी को उड़ेल दिया करती थीं। मेरी बुआ रोते-रोते कह रही थीं-

'ऊँची-ऊँची महलिया देखि बियहला भैया बिरनू / घरवां क मरमिया नाही जनला भईया बिरनू।
नौ-मन कुटी ला, नौ मन पिसी ला, नौ मन सिझई ला, रसोईयां भईया बिरनू।
पिछली टिकरिया हमारो भोजनिया भईया बिरनू। ओहू में कुकुरा-बिलरिया भईया बिरनू।"

भले ही उस समय इस गीत को समझने की हमारी उम्र नहीं थी लेकिन हम जानते थे कि बुआ को ससुराल वाले बहुत मारते-पिटते और सताते हैं इसीलिए वह रो रही हैं। बुआ को रोते देख हम सब भी रो देते, यहाँ तक कि पिता जी भी। फिर याद आने लगा कि हमारी दादी जिनको हमलोग आजी कहा करते थे। उनको भी दादा जी बात-बात पर डांट दिया करते, उनके मन - मुताबिक काम न होने पर हाथ उठा देते। घर-बाहर ऐसी स्थिति को देखते हुए मन दु:खी हो जाता। धीरे - धीरे यह सब स्त्रियों की नियति मान ली गयी।

बचपन की सारी बातें आज फिर जेहन में बार-बार आने लगीं! माँ से पूछने पर वह बताती हैं कि रात में दो - तीन बजे से ही ढेकी (पैर से धन कूटने के लिए लकड़ी का बनाया हुआ) चलने लगती थी! ओखली से धान कूटते - कूटते हाथ में छाले पड़ जाते थे। काम करते कमर टूट जाती थी। मुझे अपना बचपन याद आता है जब मैं सोचती थी कि कुछ समय के लिए माँ मेरे पास बैठ जाय लेकिन घर गृहस्थी के काम के बोझ तले दबी माँ के पास समय नहीं होता। गीतांजलि श्री का उपन्यास 'माई' पढ़ते हुए बार - बार अपने गाँव - घर की कितनी माएँ उठ खड़ी होती हैं। जहाँ काम वाला हिस्सा उन सबके जिम्में और नाम किसी और के

हिस्से। गीतांजलि श्री लिखती हैं- "दादा को घर में क्या हो रहा है, उसमें न दिलचस्पी थी न उनका ज्ञान, ..पर सरगना वही थे और जब चाहे दिलचस्पी ले लेते, न बोली बात भी सुन लेते क्या मजाल कि उनकी मंशा के खिलाफ कुछ हो। या उनकी चाह टाली जाय। ...दादा किसी सोच में डूबे भूल से कह जाएँ, "आज मटर का निमोना और चावल खाएँगे" ख्रतो बना–बनाया खाना एक तरफ सरकाके माई दोबारा जुट जाती।" आगे लिखती हैं–" उन्हें औरतें नापसंद थीं। औरतों का घर के सामने की तरफ दिख जाना उन्हें खलता। मुझे याद है कि फाटक से घर तक बजरी की सड़क के किनारे,.....फाटक खुलने की आवाज हुयी, मेहमान का जायजा लेने के पहले ही दादा फौरन बोले, "सुनैना अन्दर जाओ, कुछ चाय–नाश्ता भेजने को कहो।" मैंने अपने में औरत उस पल देख ली।" इन सारी बातों को याद करती हूँ तो लगता है भारत के इन गाँवों में 'माई' की कितनी सीरीज बन सकती है! सिमोन ऐसे ही थोड़े कहती हैं "स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है।" आन्तरीकरण की इसी प्रक्रिया को समाजीकरण कहा जाता है जिसमें व्यक्तियों को व्यवस्था से कैसे सामंजस्य बिठाया जाय, सिखाया जाता है। स्त्रियों के लिए इसे एक अनिवार्य शर्त के रूप में देखा जाता है। इस तरह स्त्रियों की एक परिधि का निर्धारण कर दिया जाता है। जिससे उसके अन्दर के सुख – दु:ख को उनकी नियति मान ली जाती है। भारत के इन गाँवों में स्त्री के जीवन से संबंधित उनके दु:ख–दर्द से संबंधित कितने गीत लोक मानस में व्याप्त हैं। एक लड़की जब अपने मायके में रहती है तबकी उसकी स्थिति और जब शादी हो जाती है तब उसकी परिस्थितियां समय के अनुसार बदल जाती है–

"कथी के चटईया पापा हो बिछौले बाड़ा, हमरो के बयिठौवले बाड़ा ना।
कथी के करेजवा पापा हो बनवले बाड़ा, हमरो के बिसरवले बड़ा ना।।
कुश के चटईया बेटी हो बिछौले बाड़ी, तोहरा के बयिठौले बाड़ी हो।
काठ के करेजवा बेटी हो बनवले बाड़ी, ये ही से बिसरवले बाड़ी हो।।"

ये स्त्रियाँ अपनी आवाज और अपने जीवन के अनुभव को लोक गीतों में पिरो कर डाल दी हैं। अपने जीवन की समस्याओं को सामने लाकर, अपने दु:ख को साझा कर उस दु:ख से उबरने की कोशिश करती हैं।

"आँख के पुतरिया पापा हो तोहरे रहली, धिया हम दुलारी रहली ना।
कैसे बिसरौला पापा हो दुलारी बिया, हिय के समझवला कैसे ना।।
बगिया के फुलवा बेटी हो तोहीं रहलू, तोहिं घर के कोयलिया रहलू हो।
परत सिनुरवा बेटी हो पराया भईलू, तूं तो पराया रहलू हो।।
केतनो मनाई पापा हो, माने नाहीं लोरवा नयनवा ढारे हो।
छुटल जाता सखिया सहेलिया हमरो, अब सब बेगाना लागे हो।।"

यह गीत पिता–पुत्री के संबंधों की पहचान लोक के माध्यम से करती हुई यह बताने की कोशिश करती है कि एक स्त्री जब तक उसकी शादी नहीं हुई होती तब तक तो पिता के आँखों की पुतरी बनी रहती है लेकिन शादी के बाद ही पराया हो जाती है। वह स्त्री इस बदले हुए व्यवहार के लिए अपने मन को मनाने की बार–बार कोशिश करती है। लेकिन जो घर अभी तक अपना था उसके पराया होने और सखी–सहेलियों की याद आने से आँखों से लगातार आँसू निकल रहे हैं। इस तरह से देखा जाय तो तमाम ऐसे गीत हैं जिसके

माध्यम से स्त्रियाँ अपने मन की अभिव्यक्ति को प्रकट करती हैं। यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी की ये सारे गीत इन स्त्रियों के जीवन के अभिन्न अंग हैं, जिसको इनसे अलगाया नहीं किया जा सकता। इस सन्दर्भ में सुजाता लिखती हैं कि- "स्त्रियों के लिए भी जो अभिव्यक्तियाँ, जो बातें यो कहना मुश्किल होती है। वे अक्सर लोक गीतों में व्यक्त हो जाती हैं। जिसे सिमोन स्त्रियों की सब्जेक्टिविटी (आत्मीयता) कहती हैं। वह इन गीतों में सामने आती है। ये वे तमाम भोगे हुए अनुभव हैं जो स्त्री को मनुष्य के रूप में स्थापित करते हैं। जो दुनिया को देखने के 'पुरुष कोण' को बदलते हैं और स्त्री की दुनिया में लिए चलते हैं। वे तमाम अनुभव जिनसे स्त्री का होना और 'बनाया जाना' समझ आता है, वे दर्ज होते हैं और स्त्रियाँ खुद ही अपनी 'अदरिंग' की प्रक्रिया को उलटती हैं। उसका भी मन है, उसके भी आँसू हैं, उसके भी कष्ट हैं, वह भी मुँह में जबान रखती है। भले ही उस पर पहरे हैं लेकिन वह अपने रास्ते निकलती है और भाषा की सांकेतिकता का बखूबी इस्तेमाल करती है। लोक गीतों, लोक - गाथाओं और परीकथाओं का अध्ययन स्त्रीवाद और भाषा-विज्ञानियों ने खूब किया है।"

मुझे याद है जब हमारे यहाँ धान की रोपनी होती थी। तब ढेर सारी औरतें बाहर (पलामू - झारखण्ड) से आती थीं। खेत में जातीं तब खूब गीत गातीं। उन गीतों को सुनकर मन लहराने लगता। लेकिन, उनके अंतर्मन की गहराइयों में झांके तो लगता है कि उनमें उनके जीवन का दु:ख और लाचारी अधिक व्याप्त थी। इन गीतों के माध्यम से वे अपने को उत्साहित करतीं और दिलासा दिलाती ताकि उनका ध्यान शारीरिक श्रम की थकान से हटे। कार्ल मार्क्स के शब्दों को उधार लें तो यह कह सकते हैं कि ये गीत एक अफीम की तरफ कार्य करते हैं जिनको गाकर उन्हें अपनी थकान का एहसास कम होता। लगभग दस - पंद्रह दिन की रोपनी होती। हम बहनें चाची के साथ मिलकर इन सबके लिए रोज नाश्ता बनाते, (नाश्ते में रोटी बनती कभी चने या मटर की घुघुनी, या गेहूँ उबाल कर नमक मिलाकर दिया जाता) खाना बनाते, हम रोज दिन गिनते रहते कब रोपनी समाप्त हो और ये लोग यहाँ से जाएँ, हम इतना काम करके उब जाते। लेकिन उनके लिए खाना-नाश्ता बनाने का कार्य तो हमारे लिए कुछ ही दिन का था, लेकिन अपने जीविकोपार्जन हेतु उन्हें प्रतिदिन ऐसे कार्य करने पड़ते हैं। हम याद करें कि रोपनी के समय की धूप तो मिर्ची से भी तेज होती है। उसमें भी झुककर रोपनी करना, कितना कष्टकारी है! इस दर्द को वह धान रोपने वाली रोपनी ही बता सकती है -

हाली-हाली रोप सखी परती में धान हो/ संगे-संगे गाव गीतिया लागी नाहीं घाम हो।
देखला पर नीमन लगे धनवाँ के जाय(जौ) हो/ गुबू-गुबू रोपत रयिहा/ लागी नाहीं घाम हो।।

एक रोपनी जो अभी नई-नई इस काम करना शुरू करती है। वह कहती है-

बानी सुकुमार हमार कोमल बदनियाँ/ पिया रोपनिया हमसे नाहीं होई।
घर में बईठ के तूं जे बनबू कनियाँ/ भोजनियाँ ये धनियाँ कहवाँ से आई।।
सच में, दो-जून की रोटी की चिंता न हो तो इतना कठिन काम भला कौन करना चाहेगा।
हमरा से सईयाँ धान न रोपाई/ दुखे कमर मोरा दुखे कलाई/ धरता जोख हमार देहियाँ दबा के ।।

सच में धान की रोपनी का काम कितना कठिन होता है यह समझाया नहीं जा सकता। झुकने के लिए भोजपुरी में एक शब्द 'निहुरना' है। सही शब्द का इस्तेमाल करें तो दिन भर निहुरने से कमर दर्द से फटने लगती है। 'जोंक' यह अंग्रेजी वाला जोक्स नहीं है बल्कि यह खून चूसने वाला एक पानी का जीव है जो कीचड़ में ही रहता है। जिसके काटने से दर्द होता है। इन सबकी चिंता किये बिना रोपनहारी अपने काम में लगी रहती हैं।

आज जब मनोरंजन के इतने साधन उपलब्ध हैं तब भी पता नहीं क्यों उन गीतों की ओर मन बार – बार जाता है। उन रोपनियों के गीत मन में बार – बार कौंधने लगते हैं। हमें खाना बनाने में भले ही खराब लगता लेकिन उनके रहने से पूरा घर गुलजार रहता। वे दिन–भर धान रोपतीं रात में कोई कहानी कहतीं, कोई गीत गातीं, उनमें से तो कई झूमर नृत्य भी करतीं। आज जब कोई करने वाला नहीं बचा, सारे खेत बटाई पर दिए जाने लगे। अब जब भी रोपनी का समय आता है। मन एक बार उन रोपनिहारियों को जरुर याद करता है।

कुछ समय पहले तक गाँव में खेतों में पानी भरने के लिए मोट (चमड़े का बना हुआ एक बड़ा सा थैला, जिसमें ज्यादा पानी आ सके) हुआ करता था। दो बैलों के सहारे कुँए से पानी इसी मोट के सहारे बाहर निकाला जाता था। दिन–दिन भर मोट चलते ही रहते थे। माँ कुछ ऐसी बातें बताती हैं कि विस्मय! और आश्चर्य से मन भर जाता है। माँ उन दिनों को याद करते हुए बताती है कि रात में तीन बजे ही मोट चलने लगते। मेरी दोनों बड़ी बहन तीन बजे रात से ही मोट हांकने लगतीं दो क्यारी खेत थे जो रोज सींचे जाते एक तरफ का सींचा जाता तब दूसरी तरफ से सुखने लगता। माँ कहतीं हम कितने दिन – दिन उपासे रह जाते। कभी रस पीकर, कभी सांवा – कोदो, तो कभी ककड़ी खाकर काम चलाना पड़ता। दोनों बहनें फूट (ककड़ी की ही एक प्रजाति) खाकर दिनभर मोट हांकती रहतीं। गीत गाती रहतीं। जिससे उनका काम में मन लगा रहे। काम का बोझ कुछ हल्का हो जाय। यह सब बताते – बताते माँ की आँखों में आँसू आ जाते। माँ कहतीं ये सब क्यों पूछती हो बहुत दु:ख के दिन काटें हैं हमने। ये सब जानकर क्या करोगी! सच में देखा जाय तो ये सब बातें जानकर अब हम बहुत कुछ बदल तो नहीं सकते लेकिन हम सब यह अनुमान लगा सकते हैं कि लोक कैसे निर्मित होता है। यह लोक भूख, से प्यास से दु:ख – दर्द से और तमाम उन चीजों से मिलकर निर्मित होता जिसमें फूल कम काँटे अधिक होते हैं।

धनवा सूखइनॅ ए बेटी, धान के कियरिया हो/पनवा बरैया के दुकान।
गंगा सुखैनी ए बेटी, जमुना सुखैनी हो सुखि गइली नदिया के सेवार।।
अमवा की डारी सुगनवा बोले हो/महुआ के डारी कोयलरिया हो।
मोरी बहिनी रानी की महलिया कागा बोले हो।
त बोलिया बड़ी सुहावन लागे हो।।

पानी भरते हुए जब स्त्रियाँ थक जाती तब यह गीत कि धान के खेत सुख गये और धान भी सुख गया क्योंकि गंगा, यमुना सभी नदियाँ सुख गईं और नदियों के सूखने से नदी के सारे किनारे भी सुख गये। हम देख सकते हैं तब की यांत्रिक दुनिया में व्यक्ति एक आयामी होता था। वह दिनभर एक ही काम में लगा रहता

और अपनी अभिव्यक्तियों को गा - गुनगुना कर प्रकट करता। इस तरह से देखा जाय तो स्त्रियाँ अपने मन की अभिव्यक्ति इन गीतों के माध्यम से करती थीं तो वही जतसार के गीत भी लोकप्रिय हैं-

"जंतवा पीसत सासू देहली हो सरपवा, देहली हो सरपवा
तोरे लेखे बहुरी हो असली रे सरपवा, बहुरि मोरे लेखे लपसी मछरिया हो ना.

इस गीत के माध्यम से सास-बहु के संबंधों की व्याख्या होती है जन्ता पिसते हुए सास बहु को श्राप देती है जिसकी उलाहना बहु सास को देती है तब सास कहती है जो तुमको श्राप लग रहा है वह मेरे लिए लपसी मछली का काम कर रहा है।

सासू जंतवा गड़ावे गजवाओबर हो राम, सासू महले में कटतू झरोखवा त झुरी-झुरी बयारि आवत हो, रहिया के चलत बटोहिया त हो, भईया हमरो सनेसा लीहले जईहा न हो,

हमरऽ सनेसा हमरे ही रे अंगनवा कईहा, भइया तोर धन पीसतइ पसीजलि हो राम"

रोपनी के गीत, पानी भरने के गीत आदि गीत गाकर अपने श्रम को कम करने की कोशिश भी करती थीं। आज भी देखा जाता है कि माएँ अपने बच्चों को सुलाते समय लोरियाँ गाया करती हैं। सुमन राजे लिखती हैं- "यह विचित्र किन्तु सत्य है कि लोक नायक तो बहुत हैं, जिनमें से कई लोक महाकाव्यों के नायक भी हैं, पर स्त्री नायिकाएँ सिर्फ स्त्री के कंठ में हैं।" आगे वे लिखती हैं- "लोक जीवन की ये नायिकाएँ लोक के भीतर से ही उठती है और लोक द्वारा निर्धारित मूल्यों पर अपना उत्सर्ग करती हैं। ये गीत-कथाएँ स्त्रियों की ही रचनाएँ हैं, इसका प्रमाण यह है कि ये केवल स्त्रियों द्वारा ही गाई जाती हैं।"

लोक ज्ञान पद्धति का यह दृष्टिकोण 'विज्ञान' और 'व्यावहारिक बुद्धि' में अंतर को मिटाना है जिसमें व्यक्ति लोक जीवन में अपनी सारी समस्यायों का निराकरण इसी पद्धति के माध्यम से तलाशता है। उदाहरण के तौर पर एक निरक्षर वृद्ध स्त्री दूध को गर्म इसलिए कर देती है कि खराब न हो। उसे यह नहीं मालूम कि उसमें बैक्टीरिया की संख्या अधिक होने से दूध खराब हो सकता है। उसी तरह जब नागपंचमी के बाद हम बच्चे मिट्टी का एक लोदा लेते (वह नमी युक्त बायो खाद वाली मिट्टी होती थी) उसे खूब जतन करके गोल बनाते फिर उस गोल मिट्टी के नीचे का आकार चपटा कर देते। उस मिट्टी में जरई बो देते, रोज-रोज उस जरई में थोडा-थोड़ा पानी डालते रहते एक दिन वह जरई एक बित्ते का हो जाता तब कजरी के दिन हम लडकियाँ उस जरई को मिट्टी के साथ गीत गाते तालाब या पोखरे की ओर चल देते। चारो तरफ से कई गाँव की लड़कियाँ उस पोखरे में जातीं। उस समय जायसी की 'पद्मावत' की वह पंक्ति बार-बार याद आती है जिसमें वे कहते हैं- "पद्मावती सब सखी बुलाई, जनु फुलवारी सबै चली आई।" हम सब लड़कियाँ मिट्टी के जरई के साथ एक साथ पोखरे में डूबते फिर मिट्टी नीचे छोड़ देते और जरई लेकर ऊपर आ जाते। उस जरई को हम अपने घर और पड़ोस में लोगों के कान पर रखते। यह एक रस्म हुआ करती थी इसके बदले लोग हमें पैसा देते। यह हमारे लिए एक सांस्कृतिक महोत्सव हुआ करता था। धीरे-धीरे पोखरा- तालाब भी जाते रहे और यह प्रथा भी! आज जब इतने वर्षों बाद पीछे मुड़कर देखती हूँ तब लगता है कि इन सब त्योहारों का

क्या औचित्य था। इसको कृषि वैज्ञानिक लोग ठीक से समझेंगे लेकिन एक किसान परिवार में जन्म लेने की वजह से आज जो मैं महसूस कर पाती हूँ वह यह है कि उस समय बीज के अनुकूलन हेतु तापक्रम और नमी की टेस्टिंग भी इसी माध्यम से हो जाती थी। गौर करें तो कजरी के समय भी रोपनी का समय हुआ करती है। कजरी के समय लड़कियों के गीतों की अनुगूँज सुनाई पड़ती थी–

"धीरे–धीरे गिरे यमुना जी क पानी, नहर धईले जाला ये हरी।
ओही नहरिया पर ससुर जी नोकरवा, धीरे–धीरे ढीलय नहर में पानी।
नहर धईले जाला ये हरी"

बुवाई आने तक यह बीज घर की प्रयोगशाला में पास हो जाया करता था। हम बच्चों के माध्यम से बड़ों के कान तक पहुँच कर उनतक उन्नत बीज की बानगी पहुँच जाती थी। साथ ही जिस गोबर खाद का हम बच्चे इस्तेमाल करते थे उतना ही खाद खेती के लिए पर्याप्त थी (कहने का तात्पर्य उस अनुपात से है) जो बाद में हम रसायनिक खाद की तरफ मुड़ते हैं और सेहत के विनाश का रास्ता भी बनाते चलते हैं। इन गीतों और परम्पराओं के माध्यम से स्त्रियों ने लोक की उपस्थिति को जीवित किया हुआ है। हम जानते हैं कि स्त्रियाँ उत्सवधर्मी होती हैं। ये छोटे–छोटे तीज–त्यौहार उनके लिए खुशियाँ लेकर आता है। अपने गीत–गजल के माध्यम से ये स्त्रियाँ उन त्योहारों में रंग भरती हैं। इतना ही नहीं सदियों से ये गीत ही इन स्त्रियों की अभिव्यक्ति का माध्यम भी रहा है।

अमरकांत के उपन्यासों में ग्रामीण संवेदना

चन्दन राम
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

भूमिका

भारतवर्ष में ग्राम्य व्यवस्था प्राचीन काल से ही चली आ रही है। गाँव में रहने वाले लोग ग्रामीण कहलाते हैं। ग्रामीण लोगों की अपनी कुछ मान्यताएं तथा परंपराएं होती हैं। उन मान्यताओं तथा परंपराओं के आलोक में ही ग्रामीण जीवन पद्धति निर्धारित होती है। जीवन शैली की दृष्टि से अनोखापन ही ग्रामीण समाज की अपनी विशिष्ट पहचान होती है। खान पान, रहन-सहन, पहनावा तथा व्यवहार, सब कुछ विशिष्ट होने के कारण गाँव की अपनी अलग पहचान होती है। ग्रामीण व्यवस्था कृषि आधारित होने के साथ-साथ प्रकृति के सीधे संपर्क में होती है जिसके कारण विकास की नवीन दशाओं से सर्वथा दूर ही रह जाती है। भारतीय गाँव को तो दूर से ही देखकर पहचाना जा सकता है। स्वास्थ्य शिक्षा तथा समृद्धि तीनों दृष्टिकोण से गाँव उपेक्षा का शिकार होता है। ऐसी स्थिति में समाज में कई वर्गों का उदय हो जाता है, जिसमें एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। शोषण की विभीषिका सामाजिक वैषम्य को जन्म देती है और सामाजिक संघर्ष की नईश्शृंखला प्रारंभ हो जाती है। ग्रामीण जनजीवन विकास के सोपानों पर कदम बढ़ाने से हिचकिचाता है और अपनी परंपरा का ही अनुपालन करना चाहता है। ग्रामीण समाज परंपरागत रूढ़ियों तथा मान्यताओं के आधार पर ही गतिमान होता है। यद्यपि विकास के सोपान क्रम से गाँव का वातावरण भी अब परिवर्तन की ओर अग्रसर है, किन्तु फिर भी परंपरागत समाज में कुछ ऐसी विशेषताएं विद्यमान है जो आज भी बखूबी जारी हैं और किसी भी सार्थक परिवर्तन के विरुद्ध होती हैं। विमर्श के इस बिंदु पर अमरकांत के उपन्यासों के संदर्भ में ग्रामीण जीवन की पारंपरिक विशिष्टताओं तथा समस्याओं पर सम्यक प्रकाश प्रक्षेपित करने का प्रयास किया जाएगा।

प्राचीन समय से ही समाज मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित हुआ है जिसमें निम्न वर्ग, मध्य वर्ग तथा उच्च वर्ग की कल्पना की गई है। उपन्यास के माध्यम से समाज का सीधा चित्रण किया जाता है। परंपरागत ग्रामीण समाज में ऐसी अनेकों विशिष्टताएं होती हैं जिन्हें उपन्यासों के पटल पर निहारा जा सकता है। अमरकांत के उपन्यास प्रमुख रूप से इन्हीं सामाजिक विभाजनों के आधार पर समस्त कथावस्तु का चित्रण करते दिखाई देते हैं, जिनमे मानवीय संवेदनाओं के साथ-साथ समाज की यथार्थ स्थिति प्रस्तुत की गई है। उनके उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर भारत के मध्यवर्गीय समाज की विभिन्न परिस्थितियों का उल्लेख है। उनके उपन्यासों के कथ्य

सामाजिक व्यवस्था में मध्यवर्गीय एवं निम्न मध्यवर्गीय जीवन यापन करने वाले लोगों की परिस्थितियों से ही ग्रहण किए गए हैं। इन परिस्थितियों में व्यक्ति की आशाएं- आकांक्षाएं, रीति रिवाज, परंपरागत मूल्य तथा नैतिक वर्जनाओं के साथ-साथ सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा शोषण के विविध स्वरूपों का यथार्थ परक चित्रण किया गया है। युवा पात्रों के माध्यम से मध्यवर्गीय जीवन की परिस्थितियों का जितनी बेबाकी के साथ अमरकांत जी के उपन्यास चित्रण करते हैं, उतना किसी अन्य के साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होता। अमरकांत के उपन्यासों के पात्रों का जीवन निम्न मध्यवर्गीय समाज की मानसिक कुंठा तथा आर्थिक विषमताओं के परिवेश में ही विकसित होता है। उनके उपन्यासों में उनके जीवन की अनुभूतियाँ समाहित है। इन्हीं अनुभूतियों के आधार पर ही उन्होंने सामाजिक पक्ष का बड़ी बेबाकी के साथ चित्रण किया है। अमरकांत जी के उपन्यासों में मध्य वर्गीय सामाजिक जीवन के विविध पक्ष दिखाई देते हैं जिनमें सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक तथा राजनीतिक पक्ष प्रमुख हैं। प्रस्तुत अध्याय में इन सभी पक्षों का बड़ी बेबाकी के साथ अध्ययन किया जाएगा, साथ ही समाज में शोषक शोषित संघर्ष, संवर्गीय संघर्ष, पीढ़ियों का संघर्ष तथा मानसिक विकृतियों के बारे में अध्ययन करते हुए जाति भेद, वर्ग भेद, तथा लिंग भेद के आधार पर होने वाले शोषण का भी मूल्यांकन किया गया है। पीढ़ियों के बदलने के साथ ही सामाजिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन होता दिखाई देता है। एक ही वर्ग में रहने वाले लोगों के बीच भी संघर्ष देखा गया है जिसे संवर्गीय संघर्ष के नाम से जाना जाता है। पीढ़ीगत संघर्ष भी अमर कांत के उपन्यासों में स्थान प्राप्त करते हैं। अब हम परंपरागत समाज के इन्हीं पक्षो की संक्षिप्तता पूर्वक विवेचना करेंगे।

सम्बंधों का निर्माण तो समाज के अंतर्गत ही संभव होता है। तभी तो समाज को सामाजिक सम्बंधों का जाल कहा गया है। समाज के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के लोग निवास करते हैं जिनमे विविध स्तरों पर नाना प्रकार के आपसी सम्बंध पाए जाते हैं। माता-पिता, पुत्र-पुत्री, मित्र सखा आदि सभी सम्बंध समाज रूपी पर्यावरण में ही पुष्पित पल्लवित होते हैं। कभी-कभी इन सम्बंधों की वजह से बहुत सारी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं जिससे समाज के लोगों में संघर्ष की परिस्थितियाँ व्याप्त हो जाती हैं। अमरकांत के उपन्यासों में इन्हीं परिस्थितियों का सम्यक रूपेण चित्रण किया गया है, साथ ही अनेकों सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी अमरकांत के उपन्यासों की विशेषता है।

सामाजिक शोषण की गाथा कोई नई नहीं है, बल्कि यह सशष्टि के प्रारंभ से ही अनवरत रूप से गतिमान है। आज भी सामाजिक रूप से प्रबल पक्ष निर्बल पक्ष का शोषण करता है परिणाम स्वरूप संघर्ष की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है। यह संघर्ष समाज के सभी स्तरों पर दिखाई देता है। मध्यवर्गीय जीवन यापन करने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को अभाव तथा दुर्व्यवस्था से ऊपर उठाना चाहता है किन्तु इस वर्ग में कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो परिस्थितियों से संतुष्ट होते हैं और जहाँ है वहीं रहना चाहते हैं। किन्तु प्रत्येक वर्ग में कुछ ऐसे महत्वाकांक्षी लोग विद्यमान होते हैं जो इन परिस्थितियों को चीर कर बाहर निकलना चाहते हैं। वह जीवन में शोषण के विरुद्ध संघर्ष के लिए उद्यत होते हैं। अमरकांत जी के उपन्यास साहित्य में इस तरह की परिस्थितियों तथा सामाजिक समस्याओं को उजागर किया गया है, साथ ही ऐसी निरीह तथा उपेक्षित जनता के प्रति अमरकांत जी ने अपनी हार्दिक संवेदना भी व्यक्त की है। भारतीय समाज में शोषण की जड़े बहुत गहराई

तक प्रविष्ट हो चुकी है, जिसमें मानवता को ताक पर रखते हुए एक सफल व्यक्ति दूसरे निर्बल व्यक्ति का शोषण करता है। कभी–कभी तो यह शोषण जातिवादी आधार भी ग्रहण करता दिखाई देता है, जिसका शिकार अधिकतर निम्न मध्य वर्ग ही होता है। अमरकांत के उपन्यासों में ऐसे शोषण के कारण उत्पन्न होने वाले सामाजिक संघर्ष की झलक देखी जा सकती है।

'सूखा पत्ता' अमरकांत जी का एक प्रमुख उपन्यास है जिसमें जाति व्यवस्था द्वारा उत्पन्न समस्याओं को दर्शाया गया है। इस उपन्यास में उर्मिला तथा कृष्ण परस्पर विजातीय है। उर्मिला के पिता श्री गंगधारी बाबू कृष्ण के पिता के मित्र हैं किन्तु दोनों अलग–अलग जाति से सम्बंध रखते हैं। उर्मिला के पिता का बरसात के दिनों में मकान ढह जाने की वजह से वह अपने मित्र तथा कृष्ण के पिता के यहाँ रहने लगते हैं, जहाँ उर्मिला और कृष्ण की मुलाकात होती है। प्रथम दृष्टि से ही दोनों में प्रेम उत्पन्न होने लगता है किन्तु जाति प्रथा की विभीषिका के कारण उन दोनों का प्रेम परवान नहीं चढ़ पाता। उन दोनों के बीच विवाह की बात को दोनों ही परिवार के लोग नकार देते हैं। उर्मिला की माँ इस बात से नाराज होकर कृष्ण का घर छोड़ने लगती हैं और अंत में दोनों बिछुड़ जाते हैं। कृष्ण एक ऐसे युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो जाति प्रथा को कोरी बकवास मानता है और इसे सबल लोगों के द्वारा दुर्बल लोगों पर अत्याचार करने के उद्देश्य से बनाया गया नियम मानता है। इसी जाति प्रथा के कारण ही उसको व्यक्तिगत भावनाओं की बलि देनी पड़ती है। समाज में छुआछूत का आलम ऐसा है की कृष्ण का परिवार उर्मिला के हाथ से बना हुआ भोजन ग्रहण नहीं करता। लेकिन कृष्णा पूरी तरह से आधुनिक विचारों का युवक है और वह उर्मिला के प्रेम में इतना दीवाना होता है कि वह उर्मिला से विवाह करने के लिए अड़ जाता है। जाति प्रथा के बारे में टिप्पणी करते हुए वह कहता है– "जाति एक सामाजिक ढकोसला है, अपने झूठे अहंकार का कमजोर किला। कुछ साधन सम्पन्न लोगों ने कमजोरों को दबाना चाहा और इसके लिए उनकी सीमाए निश्चित कर दीं। इस संसार में दो ही जातिया हैं– एक अच्छे लोगों की और दूसरी बुरे लोगों की। एक साधन सम्पन्न लोगों की और दूसरी साधन विहीन लोगों की। क्या ब्राह्मण जाति में एक से एक कमीने बदमाश व्यभिचारी और लुच्चे नहीं भरें हैं, क्या और दूसरी जातियों में अच्छे लोग नहीं हैं, क्या यह सच नहीं है कि उच्च कही जाने वाली जातियों के लोग छिपकर कुकर्म करते हैं और फिर भी अपने को श्रेष्ठ समझते हैं।"[1]

कृष्ण किसी भी जातिगत श्रेष्ठता को नहीं मानता और इसे केवल दिखावा समझता है। उसकी दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति के मन की शुद्ध ता होती है। समाज की जातिगत व्यवस्था के कारण ही उर्मिला और कृष्ण को अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जबकि उन्होंने पवित्र मन से एक दूसरे से प्रेम किया है। कृष्ण को पुरुष होने के नाते थोड़ी बहुत दिक्कतें कम झेलनी पड़ती हैं लेकिन उर्मिला बहुत सारी यातनाओं का शिकार होती है। उर्मिला की माँ को जब इस बात का पता चलता है तो वह कृष्ण का घर छोड़ देती है और उर्मिला को बहुत डांट ्टकार लगाती है। कृष्ण के माता–पिता भी उर्मिला के साथ उसके किसी भी सम्बंध को स्वीकार नहीं करते जिसके कारण कृष्ण अपनी दृढ़ता का परिचय देते हुए कहता है– "ठीक है, पर मैंने भी निश्चय कर लिया है कि शादी करू तो उर्मिला से ही। मैंने वचन दिया है और उससे विचलित होना नामुमकिन है। अपने वचन के अनुसार कार्य करना में सबसे बड़ा धर्म समझता हूँ यह मुझे उस दिन मालूम

हुआ जब में जेल में था और आपने खबर भिजवाई थी कि मैं किसी भी हालत में मफी नहीं माहू। आदमी वादा करके और तोड़ दे बेईमानी और धोखेबाजी का रास्ता पकड़े तो वही शर्म की बात है बेइज्जती की बात है। मैंने कोई बुरा काम नहीं किया और जिस चीज को मैं अच्छा समझता हूँ, उसके लिए जान तक दे दूँगा।"[2]

कृष्ण ने तो अपना फैसला सुना दिया था जिसमें वह अपने चुने हुए रास्ते से न हटने का संकल्प कर चुका था। उर्मिला के लिए वह अपनी जान देने तक को तैयार हो जाता है। उर्मिला के माता पिता को अपने घर से चले जाने पर वह उन्हें पत्र लिखकर जाति व्यवस्था को दुर्भाग्यपूर्ण कहता है और उसके एक दिन नष्ट हो जाने की बात समझता है। अपने पत्र में वह कहता है- "यह जाति की सीमा बहुत ही तुच्छ सीमा है, चाचाजी। एक दिन यह नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगी। मैं ब्राह्मण हूँ तो क्यों किसी से श्रेष्ठ हूँ और कोई शूद्र है तो क्यों मुझसे बड़ा नहीं है? इनसान इनसान बराबर है। सभी जातियों में अच्छे और बुरे लोग होते हैं और सभी के सुख और दुख एक ही किस्म के होते हैं। चाचाजी, मैंने और उर्मिला ने एक-दूसरे से शादी करने का निश्चय किया है। मैंने तो फैसला कर लिया है कि चाहे जान चली जाए, पर एक बार जिसका हाथ पकड़ लिया है, उसको किसी भी हालत में नहीं छोड़ेंगा। एक बात यह भी तय है कि यदि उर्मिला को मुझसे अलग करने की कोशिश की गई तो वह कभी सुखी नहीं रहेगी और घुल-घुलकर एक दिन प्राण त्याग देगी। चाचाजी, आप दो निर्दोष जिन्दगियों को बरबाद होने से रोक सकते हैं। मैं आपके पैर पड़कर प्रार्थना करता हूँ कि आप हमको अपना स्नेहाशीर्वाद दें।"[3]

कृष्ण समाज के साथ-साथ माता-पिता के सामने भी न झुकने की बात करता है। उर्मिला के फूफा संकटा प्रसाद उसे धमकाने की कोशिश करते हैं। किन्तु किसी भी प्रकार की गुंडई का प्रतिरोध करने की बात करता है। यद्यपि उसे इस बात की चिंता सताती रहती है कि उर्मिला के पिताजी उनकी शादी करने के लिए कभी तैयार नहीं होंगे। उर्मिला के पिताजी एक शरीफ इंसान है और उनको दो बेटियाँ और भी हैं इस तरह के विवाह से उन्हें समाज में जिल्लत झेलनी पड़ेगी और उसके दोनों बेटियों की शादी भी करना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए वह कृष्ण से उर्मिला को भूल जाने की विनती करते हैं। कुछ दिनों बाद कृष्ण को भी उनकी बातें समझ में आती हैं और उर्मिला को भूल जाने के लिए तैयार हो जाता है। वह उर्मिला को समझाना भी है कि उसके माता-पिता जहाँ चाहे वह भी शादी करने के लिए तैयार हो जाए इसी में दोनों लोगों की भलाई है।

''तुम अपने सारे गम छोड़कर खुशी-खुशी तुम्हारे माँ-बाप जिससे तुम्हारी शादी करना चाहें, कर लेना। तुम मुझको भूल जाना।''[4]

उसकी बात सुनकर उर्मिला रोने लगती है वह किसी भी कीमत पर कश्ष्ण को खोना नहीं चाहती। किन्तु कृष्ण ने उर्मिला के पिता को उसे भूल जाने का वादा कर चुका था। उर्मिला के कहने पर वह कहता है- ''नहीं उर्मिला, तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम मुझे भूल जाओ। तुम्हारे माता-पिता जैसा कहें वैसा ही करो। तुम्हारे खानदान और तुम्हारी बहनों की इसी में भलाई है। मैंने आखिरी फैसला कर लिया है। यह तुम मेरी प्रार्थना समझो या आज्ञा। मैं तुमसे यही कहने आया था।"[5]

अंत में उर्मिला की शादी कहीं और तय कर दी जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं की दोनों की जाति सामान न होने के कारण आपस में सच्चा प्रेम करते हुए भी दोनों एक दूसरे से बिछड़ जाते हैं। उन्हें विजातीय होने का दंश उठना पड़ता है और अंतत वह हार मान लेते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कृष्ण और उर्मिला दोनों समाज की जाति व्यवस्था का शिकार हो जाते हैं।

'ग्राम सेविका' उपन्यास का कथा विन्यास भी जाति व्यवस्था पर ही आधारित दिखाई देता है। यह भी नारी संघर्षों पर आधारित उपन्यास ही है जिसकी नायिका दमयंती बाल्य काल से लेकर अपने जीवन पर्यंत विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करती दिखाई देती है। दमयंती एक हृष्ट पुष्ट लड़की थी। जब वह कक्षा 8 में पढ़ती थी तभी उसकी उम्र लगभग 16 वर्ष की थी। दमयंती के पड़ोस में अतुल नाम का एक सुंदर लड़का रहता था जिसका सम्बंध एक अन्य जाति से था। वह रुड़की में रहकर ओवरसीयरी की पढ़ाई करता था। पूरे एक साल बाद वह गाँव वापस आया था। दमयंती की एक सहेली मुन्नी का घर भी उसके घर से थोड़ी ही दूर पर था। दमयंती का मुन्नी के घर अक्सर आना जाना लगा रहता था। एक दिन जब दमयंती मुन्नी के घर जाती है तब वहाँ अतुल नाम के लड़के को बैठा हुआ पाती है। चलते हुए अतुल ने उसके रास्ते में अपनी टांग अड़ा दी जिसके कारण वह गिरते गिरते बच गई। इसलिए उसने कभी भी मुन्नी के घर न जाने का फैसला किया था। लेकिन अतुल दमयंती का पीछा छोड़ने को तैयार नहीं था। उसने दमयंती को प्रेम पत्र लिखकर अपनी मन: स्थिति का वर्णन किया। उसने दमयंती को यह भी बताया कि उसके प्रेम में उसे रात–रात नींद नहीं आती और उसे खाना पीना भी बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। अगर दमयंती उसका प्रेम स्वीकार नहीं करती तो उसे खुद उसे अपने हाथ से उसको जहर खिलाना पड़ेगा। वह दमयंती के लिए कुछ भी करने को तैयार था। उसने दमयंती को यह आश्वासन दिया था कि यदि दमयंती उसके प्यार को स्वीकार कर लेती है तो वह आगे चलकर एक बड़ा आदमी बनने का प्रयास करेगा। वह दमयंती को समझाने का प्रयास करता है कि उसके साथ उसके प्यार में कोई धोखा नहीं, बल्कि वह पवित्र मन से दमयंती को प्यार करता है। वह दमयंती से कहता है कि यदि वह उसको प्यार नहीं करती तो उसके प्रेम पत्र को फाड़ कर फेंक दें। अतुल का प्रेम पत्र पढ़कर दमयंती कांप जाती है और डर के मारे रोने लगती है। उसे डर रहता है कि यदि इस प्रेम पत्र के बारे में उसके परिवार वालों को पता चल गया तो वह उसका जीना हराम कर देंगे। वैसे भी अतुल एक दूसरी जाति से सम्बंध रखता है और उसके माता–पिता कभी भी दूसरी जाति के लड़के से सम्बंध रखना स्वीकार नहीं कर पाएंगे। इसलिए वह जानती है की अतुल से शादी संभव ही नहीं है तो फिर उससे प्रेम ही क्यों किया जाए? उसने निश्चय किया कि अगर अतुल अब उसे दूसरा प्रेम पत्र भेजता है तो वह निश्चित ही अपनी दादी को सब कुछ बता देगी। अतुल की छुटियां धीरे–धीरे समाप्त होने को आती हैं और वह दमयंती से मिलने उसके घर की ओर चल देता है। दमयंती उसे देखकर घर के भीतर भागने लगती है तो वह उसे रोक कर कहता है–

"थोड़ी देर के लिए रुको...। मैं तुमसे एक बात पूछने आया हूँ कि तुमने मेरे पत्र का जबाव नहीं दिया। तुम नहीं जानती कि मैं तुम्हारे कहने पर इसी क्षण जान भी दे सकता हूँ। तुम्हारे लिए इस दुनिया में कुछ भी कर सकता हूँ। मुझसे कोई गलती हुई तो मफ करो। बस मैं यही जानना चाहता हूँ कि तुम मुझसे घृणा करती हो या नहीं...।"[6]

अतुल की बात सुनकर दमयंती का चेहरा काला पड़ जाता है। अतुल के बार–बार पूछने पर वह उसे हाँ में जवाब देती है, जिस पर अतुल यह कहता है कि उसका इतना कहना ही उसके जीवन भर के लिए काफी है। वह दमयंती को बताता है कि वह जीवन भर उसकी प्रतीक्षा कर सकता है। फिलहाल वह दशहरा की छुट्टियों में घर वापस आने की बात कह कर वहाँ से चला जाता है। अतुल के जाने के बाद दमयंती बहुत रोती है किन्तु धीरे–धीरे उसके मन में भी अतुल के प्रति प्रेम की उत्पत्ति होना शुरू हो जाती है। वह उसके शारीरिक सौष्ठव पर विचार करने लगती है। अतुल के बारे में सोच सोच कर उसको रात भर नींद नहीं आती और पता नहीं क्यों मन ही मन उसे अतुल के सारे हाव–भाव अच्छे लगने लगते हैं। उसके मन में हमेशा अतुल का ही चिंतन चलने लगता है। वह सोचती है– "उसकी छाती कितनी चौड़ी है। उसकी आँखें कितनी अच्छी है। उसकी बोली कितनी मीठी है। उसकी बातें सोचकर वह अपने हृदय में अजीब मीठे दर्द महसूस करने लगी। कभी उसको गर्व होता कि अतुल जैसा लड़का उसके लिए अपना सर्व कुछ कुर्बान करने को तैयार है। कभी उसकी आ अनायास भर आतीं। वह सोचती कि दशहरा कब आएगा उसका एर्क एक दिन कठिनता से बीतने लगा। कभी–कभी वह निराश हो जाती और उसको लगता कि यह सब सपना है। अतुल उसके दिल में सदा बना रहता। वह उसके रोम–रोम में बस गया था। वह मानसिक रूप से एकदम बदल गई थी। पहले वह बच्ची थी, परन्तु अब वह एक ऐसी स्त्री हो चुकी थी, जो एक सशक्त पुरुष के दिल में बसती थी।"[7]

फिलहाल अतुल के वापस घर आने पर दमयंती सर दर्द का बहाना लेकर अपने कमरे में पड़ी रहती है किन्तु अतुल उसे ढूँढता हुआ उसके घर आ जाता है। धीरे–धीरे दोनों में बातचीत होने लगती है और उनका प्रेम परवान चढ़ने लगता है। दोनों आपस में प्रेम करने लगते हैं। अतुल छुट्टियों में दमयंती के लिए अच्छी–अच्छी किताबें लाता है और दोनों रात को भी चुपके–चुपके मिलना प्रारंभ कर देते हैं ऐसी स्थिति में दोनों के बीच शारीरिक सम्बंध भी बन जाते हैं। दमयंती हमेशा अतुल से बातचीत करने का अवसर ढूँढती रहती किन्तु धीरे–धीरे उसे अतुल के व्यवहार में एक अजीब सा परिवर्तन दिखाई देने लगता है और न जाने क्यों अतुल अब उससे दूर जाने लगता है।

कुछ ही दिनों बाद दमयंती को यह खबर मिलती है कि अतुल की शादी किसी दूसरी लड़की के साथ तय कर दी गई है और इसीलिए अतुल अब उससे दूरी बनाने लगा है। अतुल के परिवार वाले दहेज की लालच में अतुल का विवाह किसी दूसरे व्यक्ति से करने को राजी हो जाते हैं। अतुल के साथ ब्याही जाने वाली लड़की का आप भी बहुत धनी है जो तिलक के रूप में 10000 देने को तैयार है यह सुनकर दमयंती का शरीर चेतना विहीन होने लगा था।

"लड़की बहुत सुन्दर है और उसके बाप बहुत धनी हैं जो तिलक में दस हज़ार देंगे। यह सुनकर दमयंती का सारा शरीर सुन हो गया था जैसे देह का सारा खून बाहर निकल गया हो परन्तु उसको विश्वास न हुआ। जिसने उसके शरीर को आग्लिंगन में बाध कर कसमें खाई उसको अच्छी–अच्छी रायें देता रहा और उसकी भलाई के लिए सदा सोचता रहा। वह ऐसा नहीं कर सकता।"[8]

इस प्रकार अमरकांत के उपर्युक्त उपन्यासों में ग्रामीण संवेदना के व्यापक चित्र मिलते हैं। दहेज, बाल–विवाह, बाल–शोशण, प्यार, समर्पण आदि संवेदनात्मक स्थितियों का चित्रण मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अमरकांत, सूखा पत्ता, पृष्ठ-160, संस्करण-2015, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. वही, पृष्ठ-160
3. वही, पृष्ठ-162
4. वही, पृष्ठ-174
5. वही, पृष्ठ-174
6. अमरकांत, ग्राम सेविका, पृष्ठ-14, पहला संस्करण-2008, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
7. वही, पृष्ठ-15
8. वही, पृष्ठ-18

आधुनिक काल में सशक्त स्त्री की दशा एवं दिशा

राजश्री *(हिंदी शोधार्थी) पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना*
*शोध पर्यवेक्षक–**डॉक्टर चित्रलेखा** सह प्राध्यापक, बीएस कॉलेज दानापुर, पटना*

आधुनिक काल का अर्थ – आधुनिकता का अभिप्राय उस व्यवस्था से है जिसमें औद्योगिकन क्रांति के फल स्वरुप कुछ ऐसे तत्व सम्मिलित हो गए हैं, जो प्राचीन परंपराओं में परिवर्तन ला रहे हैं। आधुनिकता एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के नाम है, जिसमें प्राचीन परंपराओं के स्थान पर नवीन मान्यताओं को स्थान दिया गया है। आधुनिक शब्द के शब्द मॉडर्न का हिंदी रूपांतरण है। जिसका अभिप्राय है, प्रचलन या फैशन जो भी समकालीन है अर्थात वर्तमान समय में चलन मे है, वही आधुनिक है।

परिभाषा

आधुनिक के संदर्भ में श्डेनियल लर्नरश् ने परिभाषा देते हुए कहा– आधुनिक प्रगति उन्नति की ओर समानता तथा अनुकूलन की तत्परता से संबंधित मन की आकांक्षाओं की एक अवस्था है।–[1]

प्रस्तावना

स्त्री का सम्मान करना एवं उसके हितों की रक्षा करना हमारे देश की सदियों पुराने संस्कृति है। यह एक विडंबना ही है कि भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति अत्यंत विरोधाभासी रही है। एक तरह से तो उसे शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है तो दूसरी ओर से उसे बेचारी अबला भी कहा जाता है। इन दोनों ही अतिवादी धारणाओं ने स्त्री के स्वतंत्र विकास में बाधा पहुंचाई है। प्राचीन काल से ही स्त्री को इंसान के रूप में देखने के प्रयास संभवतः कम हुए हैं। पुरुष के बराबर स्थान एवं अधिकारों की मांग में भी उसे अत्यधिक छला है। अतः वह समाज तक श्मानवीश का स्थान प्राप्त करने से भी वंचित रही है।

सदियों से समय की धार पर चलती हुई स्त्री अनेक विडम्बनाओ और विसंगतियों के बीच जीती रही है। पूजा, भोग्या, सहचरी, सहधरमिणी, मां, बहन एवं अर्धांगिनी इन सभी रूपों में उसका शोषित और दमित स्वरूप दिखाई पड़ता है।

आधुनिक स्त्री में बदलाव

आधुनिक काल में स्त्री अपनी अस्मिता, पुरानी मान्यताओं का संघर्ष रुढियों और बंधनो की जकड़न इन सब के प्रति विद्रोह करके अपने आप को एक नया सांचा दिया है। आधुनिकता का अर्थ ही है अपनी पहचान। इससे स्पष्ट होता है कि स्वयं का व्यक्तित्व, विकास, क्षमता, समर्थ, कर्मठता, निर्भीकता और आत्मविश्वास से भरा ऐसा नारीत्व की पुरुष उसका सम्मान करें, उसकी शक्ति को पहचाने, उससे प्रेरणा प्राप्त करें और उसे पाने के लिए प्रयत्न करें। कुछ बनाकर दिखाएं। आधुनिक काल में नारी अपनी अस्मिता के प्रति सचेत होने लगी। उसने पुराने अंधविश्वास, परंपराओं का विघटन, पुरानी मान्यताओं का संघर्ष, रूढ़ियों और बंदों की जकड़न इन सब के प्रति विद्रोह करके अपने आप को एक नया सांचा दिया है। आधुनिक स्त्री आर्थिक स्वालंबन की मांग करती है, ताकि वह शोषित न रह सके।

'मैत्रयी पुष्पा' ने बेतवा बहती रही में नारी की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- "विभिन्न मानसिकता के दो मुंह समाज में आज की नारी वस्तु मात्र संपत्ति विनिमय की चीज है।"[2] नमिता सिंह 'अपनी सलीबे' में नारी की वर्तमान स्थिति का बयान इस प्रकार करती है- "यह जिंदगी तो जैसे अंधेरे घने जंगल से निकलने वाली पगडंडी का नाम है कब किधर से कोई बाघ या भेड़िया हमला कर दे किस पेड़ के पीछे से जंगली सूअर दौड़ता हुआ आए और टक्कर मार कर गिरा दे।"[3]

स्त्रियों का अस्तित्व संकटमय

स्त्री परिवार की धुरी है अत: मुख्य रूप से सामाजिक संदर्भो की बारीक जांच पड़ताल ही उसकी अस्मिता की खोज कर सकती है। परिवार में उसकी विभिन्न भूमिकाएं, नारी के प्रति उपयोगिता दृष्टिकोण, सहनशीलता की सीमा, पुरुष सहकर्मियों की दृष्टिकोण, नारी को मात्र देह मानकर सामाजिक नैतिकता के मानदंड उसे एक वस्तु समझना यह सब बातें आधुनिक नारी के अस्तित्व को संकट में बना देती है। 'आधुनिक स्त्रियों में विद्रोह की भावना'-

आधुनिक स्त्री जब-जब कलम उठाती है पुरुष परेशान में पड़ जाते हैं। उनका अहम घायल होता है और स्त्री को बराबरी से जीने और समान अवसर पाने की आकांक्षा में उन्हें हर तटस्थ समीक्षा में भी बगावत के स्वर सुनाई देते हैं। पुरुषों को आईना ना पसंद है और स्त्री दिखाएं तो उनके विवेक का बांध टूट जाता है। आजादी के बाद स्त्री चेतना में तेजी से परिवर्तन हुआ उसकी संघशीलता में, जुझारू क्षमताओं में और स्त्री चुनौती को स्वीकार करने में निसंदेह परिवर्तित सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं की शिक्षा रोजगार के अवसरों और समानता के अधिकारों में काफी वृद्धि हुई है। लेकिन फिर भी नैतिकताओं, मान्यताओं, मूल्य और सामाजिक मानसिकता के कारण अनेक विसंगतियां में स्त्री जीवन पर दोहरे मानदंडों को लागू किया गया है। यह भयंकर रोग सामाजिक रोग की तरह कानून और अंधविश्वासों के दोहरे शिकंजो ने स्त्री मन को आहत भी किया है, और विद्रोही भी बनाया है।

आदिकाल से आधुनिक काल तक दर असल पुरुष की हर युग में कमोवेश यही धारणा रही है स्त्री को लेकर मन बहलाने के लिए एक सुंदर देह और बच्चा पैदा करने के लिए एक उर्वरक कोख इससे ज्यादा औरत के अन्तर्मन झांकने की अहमत पुरुष नहीं उठाता।"[4]

जब तक शरीर से आगे जाकर दिमाग के दरवाजे नहीं खटखटाएंगे तब तक कैसे समझेंगे कि यही दबदबा है। स्त्री पुरुष के बीच यही संघर्ष है। पुरुष, स्त्री के लिए महल बनवाए, तमाम संसाधन जुटाए, सुविधाए इसलिए नहीं सब किया कि स्त्री चाहती है, बल्कि इसलिए कि इसे स्वयं उसका सामाजिक रुतबा बढेगा। ताजमहल शाहजहां ने मुमताज के लिए नहीं, अपने वैभव को प्रति फलन के लिए बनवाया था। अपनी हैसियत के विस्तार के लिए ऐसी इमारतें बनाई गई फिर भी मुमताज खुश होने के लिए दुनिया थी ही कहा।"[5]

'सशक्त स्त्री की दशा एवं दिशा'– आधुनिक समाज में अगर दृष्टि डाला जाता है तो यह स्पष्ट होता है कि मानव समाज के मूलभूत ढांचे पर पुरुष की तरह स्त्री की भी बराबरी भूमिका रही है। भारतीय समाज में पुरुष की प्रधानता रही है इसलिए स्त्री को कमजोर मानते हुए उनकी भूमिका को नजरअंदाज किया गया। परंतु धीरे–धीरे जब वैज्ञानिक आविष्कार हुए और शिक्षा का प्रसार हुआ तो स्त्री को भी समाज के सशक्तिकरण के लिए प्रमुख माना गया, और उन्हें पुरुष के के भाती दर्जा प्राप्त होने लगा। आधुनिक समय में हम देखे तो समाज का चाहे कोई भी क्षेत्र हो नारी पीछे नहीं है। उदाहरण के रूप में लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगनाओं ने मैदान में जंग लड़कर अंग्रेजों से टक्कर ली, फिर 20वीं सदी में स्वतंत्रता संग्राम में कस्तूरबा गांधी, सरोजिनी नायडू, विजय लक्ष्मी पंडित जैसी महिलाओं ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर न सिर्फ सहयोग दिया वरन अग्रणी रहकर स्वतंत्रता की लड़ाई में बढ़–चढ़कर भाग लिया। फिर राजनीति की नब्ज पहचानने वाली महिलाओं के उदाहरण हमारे सामने हैं। जिन्होंने स्वतंत्रता के पश्चात 20वीं सदी के अंत में 21वीं सदी के शुरुआत में देशभर में अपनी योग्यता से परचम लहराया है। इंदिरा गांधी, जय ललिता ममता बनर्जी, नजमा हेपतूल्ल, सोनिया गांधी, सुषमा स्वराज, प्रतिभा पाटिल जैसे समस्त सशक्त महिलाओं ने अपनी क्षमताओं से अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों को ललकारा है। खेल सहित्य, संगीत, अंतरिक्ष विज्ञान, पुलिस तथा उच्च दर्जे के उद्योगों में साइना नेहवाल, महाश्वेता देवी, लता मंगेशकर, कल्पना चावला, किरण बेदी जैसी स्त्रियों ने देश के सामने उदाहरण प्रस्तुत किया है, कि चाहे स्त्री तो किसी भी ऊंचाई तक पहुंच सकती है, और सफलता प्राप्त कर सकती है। इन महिलाओं ने अपने देश में ही नहीं बल्कि अंतरराष्ट्रीय पहचान बनाई है और देश का नाम रौशन किया है।[6]

इन सभी उदाहरणों को देखते हुए कहा जा सकता है कि समय आ गया है कि पुरुष स्त्री की योग्यता को समझकर उसे घर की बंदिशों में रखकर चार दिवारी में रहने के लिए विवश न करें। पारिवारिक जीवन में उसे सहयोग दें, वे पुरुषगत अहम एवं ईर्ष्या को छोड़कर यदि पत्नी में योग्यता है तो उसे आगे बढ़ाने में सहयोग करें। अन्यथा वे विद्रोह करके भी सफल होकर ही रहेगी।[7]

यह सभी विचार विमर्श उन स्त्रियों को है जिन्हें परिवार ने विशेष सहयोग प्रदान किया है, और वह सक्षम घराने से संबंधित रही है। किंतु व्यावहारिक तौर पर देखा जाए तो आधुनिक समाज में आज भी स्त्री अपनी जागरूकता के अभाव में एवं शिक्षा की कमी के कारण आज भी विशेष रूप से

अग्रणी स्त्रियां आधुनिक समाज में विकास की मुख्य धारा में नहीं जुड़ पाई है। अत: स्पष्ट है कि आधुनिक समाज में स्त्री की दशा सशक्त हो गई है, किंतु व्यावहारिक तौर पर इतनी मात्रा में सशक्त नहीं हो पाई है जीतनी की आधुनिक समाज की जरूरत है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आधुनिक समाज में पिछले कुछ दशकों में भारत में महिलाओं ने बहुत प्रगति की है और भारत को विकासशील राष्ट्र बनाने में उनका भरपूर योगदान है। कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें स्त्री पुरुषों से पीछे हो। और जब कोई स्त्री अपने चुने हुए कार्य में शिखर तक पहुंचती है तो वह देश की सभी स्त्रियों के लिए प्रेरणा स्रोत बनती है। उद्यमी और सफल भारतीय स्त्रियों के प्रेरणात्मक कार्य से आधुनिक समाज आगे बढ़ रहा है। आधुनिक समाज में स्त्री अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए आगे आ रही है, और स्वयं स्वावलंबी बनाने के लिए अग्रसर हो रही है। आज भी स्त्री की स्थिति सुधारने हेतु सरकारी एवं गैर सरकारी सभी स्तरों पर प्रयास करने की आवश्यकता है। तभी सभी मायने में भारतीय स्त्री संपूर्ण रूप से सक्षम एवं सशक्त बन पाएगी।

अबला नहीं सबला है नारी
आगे नारी, पीछे पुरुषों की है बरी
हर अवसर में पुरुषों के बराबरी नारी है अधिकारी।
"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तंत्र देवता।"[8]

अर्थात हमारे भारतीय इतिहास की परंपरा रही है कि जहां स्त्री का सम्मान होता है वही देवता वास करते हैं। मनुष्य के व्यक्तिगत सामाजिक और पारिवारिक जीवन के संचालन में पुरुषों के समान स्त्रियों की भूमिका रही है। जीवन संचालन में पुरुषों की तुलना में प्रकृति को महिलाओं का साथ अधिक चाहिए। स्त्री मात्र सुंदर और प्रेम की ही प्रतिमूर्ति नहीं है, आज स्त्रियों का दबदबा इतना बढ़ गया है कि पुरुष उसके बढ़ाते हुए अस्तित्व को देखकर स्वयं रसोई घर में उसका हाथ बटाने लगा है। पहले उसे हेय समझा जाता था परंतु अब पुरुषों के मानसिकता में भी परिवर्तन आया है।

उपसंहार

भारत में शताब्दियों की पराधीनता के कारण स्त्रियां अभी तक समाज में पूरी तरह वह स्थान प्राप्त नहीं कर सकी है जो उन्हें मिलना चाहिए। वही हमारी सभ्यता और संस्कृति परंपरा और शिक्षा के प्रसार तथा नित्य प्रति बढ़ रही जागरूकता के कारण भारत की नारी आज भी दुनिया की महिलाओं से आगे है। पुरुष के साथ हर क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर देश और समाज की प्रगति में अपना सहयोग दे रही है।

यह दुनिया पल-पल बदलती रही है और स्त्रियों को मौजूदा परिस्थितियों के अनुसार लगातार बदलते रहना होगा। आज हम देखते हैं कि भारत के स्त्री समाज में तेजी से जागृति आ रही है। पुरुषों ने भी स्त्रियों का महत्व को समझना शुरू कर दिया है। थोड़ी ही समय में स्त्रियों ने सिद्ध कर दिया है कि स्त्री संसार की किसी भी जाति अथवा बुद्धि, सौंदर्य और वीरता में कम नहीं है।

युग युग से नर की दासी बन,
जिसने सही यातना भारी
शूर सपूतों की हो जननी
महापीड़िता भारत नारी
रही सदा अनुरूप नरो के
किंतु उपेक्षित दास अभी है।
बढ़ेगा, जब नारी सम्मान
भारत का कल्याण तभी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बोरा, डॉक्टर राजकमल, आधुनिकता और राष्ट्रीयता औरंगाबाद महाराष्ट्र, सत्र- 2002, पृष्ठ संख्या- 4
2. बेतवा बहती रहे उपन्यास, मैत्रयी पुष्पा, पृष्ठ संख्या -28
3. अपनी सालीबे, नमिता सिंह, पृष्ठ संख्या- 45
4. स्त्री आकांक्षा के मानचित्र, पृष्ठ संख्या- 153
5. स्त्री आकांक्षा के मानचित्र, पृष्ठ संख्या- 151
6. गर्ग चित्रा, भारतीय शेखर महिलाएं, राज्यपाल एंड संस, कश्मीरी गेट दिल्ली- 6, सत्र- 2012, पृष्ठ संख्या -5-6
7. गर्ग चित्रा, भारतीय शेखर महिलाएं राज्यपाल एंड सन कश्मीरी गेट दिल्ली- 6, सत्र-2012, पृष्ठ संख्या- पृष्ठ संख्या 6
8 आदिले डॉक्टर प्यारेलाल, नियमित डायरी लेखन, 8 अगस्त, सत्र-2020 पृष्ठ संख्या -21

PART – II

Microfinance: A Comprehensive Review of The Existing Literature

Dr. Shashimala Kumari
M.Com, Gold Medalist
Ph.D. (Univ. Deptt. of Comm & Buss Adm T.M.B.U. Bhagalpur)

Introduction

Although the word finance is in the term microfinance, and the core elements of microfinance are those of the finance discipline, microfinance has yet to break into the mainstream or entrepreneurial finance literature. The purpose of this article is to introduce the finance academic community to the discipline of microfinance and microfinance institutions (MFIs). We provide a comprehensive review of over 350 articles and address the issues of MFI sustainability, products and services, management practices, clientele targeting, regulation and policy, and impact assessment.

Throughout the world, poor people are excluded from formal financial systems. In wealthy nations, exclusion might vary from partial to complete, or almost complete, in less developed nations (LDCs). Absent access to formal financial services, the poor have developed a wide variety of informal, community-based financial arrangements to meet their financial needs.1.

Furthermore, a growing number of formal sector (private, public, and non-governmental) organizations have been established during the past 20 years with the aim of fulfilling those similar demands. The word "microfinance" has become widely used to describe these kinds of unofficial and official agreements providing financial services to the underprivileged.

Microfinance has been there since the emergence of formal financial systems and may even have been before them, albeit primarily in the background and hidden from the general public. However, significant global attempts to formalize the supply of financial services to the impoverished have only been undertaken in the last forty years. Since it started in earnest in the early to mid-1980s, this process has gained a remarkable amount of pace. An estimated 100–200 million impoverished people worldwide receive financial services from thousands

of MFIs now (Christen et al., 1995). What started as a grassroots movement driven primarily by a development paradigm is developing into an international sector increasingly influenced by a commercial/financial perspective.

When considered in the context of history, the microfinance industry's rise is a tremendous success. It has challenged preconceived notions about the impoverished as consumers of financial services, dispelled myths about them being unbankable, given rise to a range of lending practices proving that it is feasible to offer the impoverished affordable financial services, and raised millions of dollars in —social investment|| for the underprivileged (Mutua, et al., 1996). It is also important to stress that the goal of the microfinance movement was to reduce poverty. Furthermore, microfinance offers the chance to reduce poverty while covering its costs and maybe even making a profit—doing well by doing good. More than anything else, this potential explains how microfinance has become a global phenomenon.

Although scholarly interest in microfinance has not kept pace with industrial advancements, it is currently expanding at a swift pace. Prior to 1997, there were very few scholarly publications on microfinance; but, since then, hundreds of peer-reviewed articles have been published in scholarly journals. However, microfinance is still not widely discussed in finance publications. This is true even though the word "finance" in microfinance refers to the fact that the fundamental goods provided by microfinance institutions (MFIs)—namely investing (savings), lending (credit services), and insurance (risk management)—are all well-established topics of mainstream finance research.

Thus, the aim of this paper is to present microfinance to the scholarly finance community and to offer a framework for further investigation. We give a synthesis assessment of more than 350 peer-reviewed articles that touch on at least one aspect of microfinance in order to achieve these goals.2.

We concentrate on peer-reviewed articles, with a few notable exceptions, as we believe the academic finance community will find these to be most interesting.3.

A list of peer-reviewed journals that feature at least one paper on microfinance is shown in Table I. Small Enterprise Development Journal (SED), which has published 102 articles on microfinance since its founding in 1990, is the journal with the most articles in Table I.

The Journal of Microfinance (JMF), which has published 57 articles since its debut in the fall of 1999, is followed in order by World Development (WD), which has published 25 articles, The Journal of Developmental Entrepreneurship (JDE), which has published 23 articles, and the Journal of International Development (JID), which has published 21 articles. While WD

and JID are multidisciplinary publications covering themes of general interest, SED, JMF, and JDE concentrate solely or primarily on microfinance or the closely related field of micro and small enterprise development.

Sixty-four percent of the 228/357 publications that were reviewed for this study were published in one of the five journals mentioned above. Sixty-six percent of the total are published in 78 different publications, 56 of which have one microfinance article in them. These other periodicals' genres include, among others, law, statistics, public administration, economics, international development, public policy, and organizational behaviour.

1. Self - sufficiency and sustainability of MFIs

Unlike formal sector financial institutions, the large majority of MFIs are not "sustainable," where sustainability is equated in microfinance literature and parlance with financial self-sufficiency.4 Instead, most MFIs are able to operate without covering their costs due to subsidies and gifts from governments and other donors. Notwithstanding, the According to the institutionist paradigm that permeates the microfinance sector (Morduch, 2000; Woller et al., 1999a), an MFI should be able to pay for its program earnings in order to meet its operating and financing costs. The work of academics at Ohio State University's Rural Finance Program is largely responsible for the conceptual underpinnings of the institutionist worldview. According to Gonzalez-Vega's (1994) analysis, the main reason behind the failure of the rural credit agencies that were established by several LDC governments in the 1960s and 1970s was the "lack of institutional viability." Two main inferences could be drawn logically from this diagnosis:

Financial self-sufficiency was a prerequisite for institutional sustainability, and institutional sustainability itself depended on financial self-sufficiency.5.

The institutionalist perspective aligns with the findings of Hollis and Sweetman (1998a), who examine six past instances to pinpoint the institutional frameworks that promoted the prosperity and long-term viability of loan funds during the 19th century in Italy, Germany, and the UK. The authors draw the conclusion that compared to loan funds that were funded by depositors, subsidized loan funds were more brittle and easily lost concentration.

On the other hand, Welfarists disagree with institutionists over the sustainability issue. According to Welfarists (Morduch (2000), Woller et al. (1999a)), MFIs can attain sustainability without becoming financially self-sufficient. They contend that because gifts function as a kind of equity, the givers are regarded as social investors. Social investors don't anticipate financial

gains, in contrast to private investors who buy stock in a publicly traded company. Rather, these donor-investors experience an intrinsic, or social, return. Even if the predicted risk-adjusted return of the socially responsible fund is less than that of an index fund, social investors might be likened to equity investors who invest in socially responsible funds. These socially responsible fund investors are willing to accept a lower expected financial return because they also receive the intrinsic return of not investing in firms that they find offensive. Microfinance social investors take this notion to the limit, generally earning zero financial returns and relying totally upon intrinsic returns.

II. Microfinance institution product and services

MFIs provide similar products and services to their customers as formal sector financial institutions. The scale and method of delivery differ, but the fundamental services of savings, loans, and insurance are the same. Despite this, the majority of attempts to formalize microfinance have thus far concentrated on enterprise lending, or loans for the establishment and growth of businesses, which continues to be by far the most popular service provided by MFIs (Nourse (2001), Voller (2002a)). That has started to progressively alter, though. These days, MFIs are starting to provide more and more products, like insurance, business education, savings, consumption, and emergency loans. Nourse (2001) examines the background and development of microfinance products and makes the case that the impoverished want more than simply credit products; they also require savings and insurance services. He continues by making the case that MFIs should offer customized lending services to the underprivileged rather than inflexible loan products. Eyiah (2001) creates a model of small construction management contractors and MFIs in developing nations that offers a customized funding framework for microenterprise contractors, hence corroborating Nourse's (2001) latter claim. In a similar vein, Wohler (2002a), Cohen (2002), and Dunn (2002) contend that MFIs must adopt a more client-focused approach and provide a variety of financial solutions that are specifically designed to meet the needs and preferences of low-income customers.

Even among the clients of microfinance programs, there is still a strong need for moneylenders, which has startled those in the microfinance industry who thought official MFIs would force traditional moneylenders out of business. Perry (2002) provides a nice example of this, wherein women moneylenders in Senegal financed their own money lending enterprises using loans from a nearby MFI. It turns out that the terms of enterprise loans offered by MFIs (slow turnaround, inflexible terms, repayment periods measured in days or weeks) make them just as ill-suited as the terms of loans offered by moneylenders (rapid loan approval, flexible

terms, repayment periods measured in days or weeks, and lump-sum payments at exorbitant interest rates).

Pawn shops are a major source of emergency loans and consumption in poor nations. For instance, Ismail and Ahmad (1997) talk about the significance of pawnshop financing in Malaysia. According to their analysis, among other things, more inexpensive transportation, interest rate controls, and financial liberation have all contributed to the growth of Malaysian pawnshops as lending institutions.

In addition to the lending function, there is a savings market in underdeveloped regions of the world. Forced and voluntary savings are the two categories into which MFIs' savings services fall, with forced savings vastly outweighing voluntary saves. Microfinance members are obligated to save a minimum amount per week (or other predetermined length of time) under a forced savings scheme. In theory, forced savings helps consumers learn financial responsibility and gives the MFI more client data. Forcible savings are generally used as a type of cash collateral. Typically, there are very rigorous guidelines governing when and how clients may withdraw forced savings.

The second form of savings is voluntary, flexible savings (Nourse (2001), Montgomery (1996)). Millions from all strata of poor do not operate enterprises, but they do save, albeit often in very small amounts and at inconsistent intervals (Beverly and Sherraden (1999)). Savings are integral to poor households' risk management strategies; they constitute the first line of defense to help poor households cope with the external shocks, emergencies, and life-cycle events to which they are so vulnerable; and they play a crucial role in allowing the poor to take advantage of productive investment opportunities (Grosh and Somolekae, (1996)).

The discussion in this section has demonstrated that at the core, the issues challenging microfinance institutions and formal sector institutions are very similar. The commonalities between both sectors encourages us that mainstream finance tools can be applied to microfinance. At the same time, the unique characteristics of microfinance, provide an interesting laboratory to test existing financial theory and to create new theory. Having addressed microfinance products and services, we now turn our attention to the management of microfinance institutions.

III. Best practices in Microfinance Institution Management

In this section, we discuss the notion of best practice for microfinance institutions.11 When we use the term best practice, we use it in a general framework, realizing, as Dunford (2000) argues, that as the domains of microfinance develop, best practices shift and evolve

continuously.

Best practices need to be flexible enough to fit the unique setting that each MFI operates in, given the diverse range of environments in which these institutions operate as well as the type of their clients. After talking about MFI vehicles, technology, and performance evaluations, Bhatt and Tang (2001c) come to the conclusion that customized MFI designs for individual consumers will be essential to the future success of microfinance. The claim made by Bhatt and Tang emphasizes how crucial research is to creating MFI design and management best practices.

Whether to offer group or individual loans is a major topic that has been thoroughly examined in the literature on MFI best practices. MFIs frequently use social collateral inside lending groups, as was covered in Section II, to secure their loans (Woolcock, 2001). There is empirical data supporting the significance of social collateral from Gomez and Santors (2001). According to an empirical study conducted in Canada with 612 group borrowers and 52 individual borrowers, group lending and the presence of neighbors are positively correlated with profits from self-employment. As a result, it will be simpler for borrowers with greater incomes to repay their microloans.

In publications that focus on more specialized aspects of loan structure, Painter and MkNelly (1999) and Schreiner (2001) examine the variables that influence loan growth and size, respectively. Schreiner lists seven factors that affect loan size and how MFI's profitability and depth of reach are affected by them. Painter and MkNelly pinpoint the variables that propel loan growth and demonstrate how these variables change throughout the course of loan cycles.

IV. Client Target

In the preceding section, we address management practices for MFIs. A major extension of this preceding section, worthy of its own section, is that of client targeting. There are two primary issues in client targeting: first, gender targeting (lending to women versus lending to men) and second, poverty targeting (lending to the very poor and poor versus lending to the marginally poor and non-poor).

A. Gender Targeting

A lot of MFIs target women entirely or mostly. This practice is predicated on the widespread perception that women are more likely than men to invest loan monies in enhancing family welfare or in productive endeavors. Men are presumed to consume rather than invest loan

funds. Pitt and Khandker (1998) evaluate the claim that women use borrowed monies more effectively than men by using actual data collected in Bangladesh between 1991 and 1992.

As measurement outcomes, they look at household spending, nonland assets owned by women, the labor supply of men and women, and the educational attainment of boys and girls. The authors discover that while having access to microfinance benefits all six areas overall, it only significantly affects one of the six categories when males borrow. In contrast, all six areas are considerably impacted when women borrow. They conclude that in Bangladeshi microfinance programs, women utilize borrowed monies more effectively than males. Kevane and Wydick (2001) examine a related subject by analyzing the claim that women assist more poverty alleviation and that male borrowers cause more economic growth than female borrowers using a sample of 342 MFI participants in Guatemala. They discover a minor advantage in employment generation by males over women, but no appreciable differences in business sales generation between men and women. They blame women's roles in childbirth for the differences between males and women.

B. Very Poor versus marginally poor targeting

As mentioned earlier, one of the most significant and controversial debates in microfinance is whether and to what extent there exists a trade-off between financial selfsufficiency and depth of outreach. Integral to this debate is whether to achieve self-sufficiency MFIs must target marginally-poor or non-poor clientele so as to capture economies of scale and cover costs.13 Addressing this issue, Navajas et al. (2000) analyze the outreach of five Bolivian MFIs. The authors find that most clients were near the poverty line (i.e., the marginally poor). They also find that group lenders had more depth of outreach than individual lenders, that urban poorest were more likely borrowers, but that rural borrowers were among the poorest of all borrowers. Similarly, Servon (1997) studies three MFIs in the US and finds that they served those at the margin of the mainstream economy, not the very poor.

V. Policy and Microfinance

Having addressed targeting of clientele in the preceding section, we now address the key policy issues of microfinance. We use the term —policy|| to refer to microfinance as a poverty alleviation strategy and to the regulatory conditions in which MFIs operate.

VI. Impact of Microfinance

We have already defined and examined the first five microfinance domains. The last area of microfinance is covered in this part, which aims to evaluate the influence of microfinance on customers, their businesses, households, and the communities in which they reside. Unlike the usual formal financial institution, which focuses only on the financial bottom line, MFIs typically aim to achieve both the social and financial bottom lines. Financial return measurement is a somewhat simple process. Microfinance has extensively incorporated elements from the conventional financial sector's financial accounting and performance criteria. Terms like portfolio-at-risk, return on equity, return on assets, and so forth are gradually becoming synonymous with the microfinance sector.15

The measurement of social return, however, is far from simple. The precise effects of microfinance are difficult to define in practice and even more so to quantify. Impact assessments necessitate the use of research methodologies that can distinguish particular effects from a complex web of mediating and causative factors as well as high levels of random environmental noise. They also require the assignment of specific measurement units to tangible and intangible impacts that may or may not be amenable to exact definitions or measurements.

Despite the fact that most MFIs do not attempt to evaluate social effect because to its inherent difficulties and expense, donors and legislators have a right to know how well their social investments are doing. Therefore, in order to evaluate the overall effectiveness of a program, MFI management and other stakeholders (such as donors and policymakers) need to have some understanding of social impact. (An imperfect picture of program performance is provided by data on financial performance alone.)

VII. Conclusion of the Study

The purpose of this article has been to introduce the finance academic community to the discipline of microfinance and microfinance institutions. We have discussed the issues of MFI sustainability, products and services, management practices, client targeting, regulation and policy, and impact assessment in a summary literature review. Our hope is that this article will help turn the attention of finance researchers to the important issues in microfinance. Many of the tools, models, and frameworks in the existing finance literature can be brought to bear on the problem of world poverty and have the potential to significantly move both the theory and practice of microfinance forward. Microfinance offers the finance discipline a possible avenue to make a significant difference in the lives of millions of poor people.

References

1. Gutiérrez-Nieto, B., Serrano-Cinca, C., & Molinero, C. M. (2007). Microfinance institutions and efficiency. *Omega,* 35(2), 131-142.
2. Mersland, R., & Strøm, R. Ø. (2009). Performance and governance in microfinance institutions. *Journal of Banking & Finance,* 33(4), 662-669.
3. Okibo, B. W., & Makanga, N. (2014). Effects of micro finance institutions on poverty reduction in Kenya. *International Journal of current research and Academic Review,* 2(2), 76-95.
4. Assefa, E., Hermes, N., & Meesters, A. (2013). Competition and the performance of microfinance institutions. *Applied Financial Economics,* 23(9), 767-782.
5. Hartungi, R. (2007). Understanding the success factors of micro finance institution in a developing country. *International Journal of Social Economics,* 34(6), 388-401.
6. Hermes, N., Lensink, R., & Meesters, A. (2018). Financial development and the efficiency of microfinance institutions. In *Research Handbook on Small Business Social Responsibility* (pp. 177-205). Edward Elgar Publishing.
7. Hermes, N., Lensink, R., & Meesters, A. (2011). Outreach and efficiency of microfinance institutions. *World development,* 39(6), 938-948.
8. Ahlin, C., Lin, J., & Maio, M. (2011). Where does microfinance flourish? Microfinance institution performance in macroeconomic context. *Journal of Development economics,* 95(2), 105-120.
9. Hartungi, R. (2007). Understanding the success factors of micro finance institution in a developing country. *International Journal of Social Economics,* 34(6), 388-401.

Experimental Investigation on Utilization of Municipal Solid Waste in Bricks

R.Saravanan
Department of Civil Engineering, Kings College of Engineering,
Thanjavur, Tamil Nadu, India, 613303
****R. Someswaran***
Department of Civil Engineering,
Mohamed Sathak A.J College of Engineering, Siruseri, Chennai
*****Anbuchezian Ashokan***
Department of Civil Engineering, Annapoorana Engineering College,
Salem, Tamil Nadu, India 636308
******C. Anbalagan***
Department of Civil Engineering,
Bharath Institute of Higher Education and Research, Chennai,
Tamil Nadu, India, 600073

Abstract

One of the most common building materials is Bricks as masonry units because of their properties. Incorporation of wastes for the production of bricks have been carried out using wood sawdust, fly ash, rubber, limestone dust, tea waste etc. The practical solution for pollution problem is recycling such wastes by incorporating into building materials. These types of bricks with various types of waste show positive effects on the properties of fired clay bricks. The reuse of dry sludge waste in the preparation of bricks is dealt which enables cleaner environment. It is based on the comprehensive review of available literature on the construction materials including different kinds of solid wastes. The traditional methods for producing constructions materials are using the valuable natural resources. Besides, the industrial and urban management systems are generating Municipal solid wastes, and dumping them in open fields. These activities pose serious detrimental effects on the environment.

Key Words: Pollution, clay bricks, Environment, sludge mixture, compressive strength tests

1. Introduction

Clay is the main constituent in the process of brick making. But clay mining for brick making causes problems. Mining of clays several meters below the ground surface may create land stability problems in addition to disturbing the hydrological regime of the affected regions. The excessive removal of clays leaves vast areas of fallow lands unsuitable for any agricultural activity. So an effective action should be taken in order to protect the environment.

In other hand the rate of production of sewage sludge is increasing because of the increase in population. There is a strong demand for environmentally safe reuse and effective disposal methods for sludge due to the increasing amount of sludge generated by the wastewater treatment plants. While sanitary landfills are commonly used for disposal or sewage sludge, rapid urbanization has made increasingly difficult to find suitable landfill sites. But using sewage sludge for land filling also causes many problems. There is potential for negative impacts on soil physical properties due to the blockage of pores by the sewage sludge itself or the associated microbial growth and the potential formation of crusts. Although a number of the pollutants within sewage sludge have the potential to accumulate within the soil there is no evidence of direct impact on soil physical properties. However, soil quality may be affected indirectly through negative impact on soil organisms. Leaching of sewage sludge applied pollutants to groundwater, except nitrogen, appears to be limited. The application of sewage sludge to land can lead to the emission of ammonia and the major greenhouse gases, carbon dioxide, methane and nitrous oxide. This paper gives a solution for both clay mining and sewage disposal by producing bricks with both clay and sewage sludge. Use of sludge as construction and building material converts the waste into useful products that can alleviate the disposal problems. Both oven-dried sludge and incinerated sludge ash could be used as brick making materials. In this paper, we systematically investigated the incorporation of sun dried sewage sludge in manufacturing of bricks. In order to obtain the suitable manufacturing conditions, the proportion of sludge in the brick that might affect the qualities of bricks were investigated. Different proportions of sludge and clay mix is prepared and tested to determine the proper proportion of mix for brick making.

2. Materials and Methods

2.1 Sample Collection

The sludge is collected from the waste water treatment plant (WWTP) which is located near Arasu Colony, Karur. The waste water from Karur Corporation, is collected in the waste water treatment plant at arasu colony. In this plant the waste water from pipelines are made to flow through the screening chambers, grid chambers and finally passed to the sludge drying tank. The sludge from the drying tank is dewatered and dumped in a separate area. The sewage collected in that area is dried under sunlight for 24 hours. After drying, the unwanted materials like grass, plastics, threads, etc., are removed from the sludge by manually. Now the sewage sludge is analysed to determine the basic engineering properties for the replacement process. Then the sludge is brought in to the brick manufacturing unit for manufacturing of sewage sludge replaced brick. Fig. 3.1 shows a flowchart of the experimental procedures for this project. The dewatered sewage sludge sample was collected from the belt press dewatering machine of a municipal wastewater treatment plant in Karur. The plant handles 0.4 to 0.5 million tons of wastewater per day, which generates about 160 tons of waste sludge monthly. Upon collection, the sludge sample was dried in an oven at 103oC for 1 day. The basic physicochemical characteristics, including particle size, pH, basic chemical elements, particle density and organic matter content were analyzed. We assessed the possibility of using the sludge sludge as a brick material. The incinerated sludge was then used as a clay substitute without further treatment .A clay sample of normal bricks was obtained from a local brick manufacturing plant. Upon collection, it was ground with a crushing machine. Using this OMC, the mixtures with various proportions of sludge and clay were prepared in batches. The sludge-clay mixtures were then intruded into a series of standard brick molds (length 230 mm, width 110 mm, thickness 60 mm). A clay only mixture was used as a reference specimen. After a 24 h maturation followed by another 24 h 1057C oven-drying period, each of the molded mixtures were fired in a combustion chamber at the design temperatures of 950, 1,000, and 1,0507C, respectively, for 6 h. The produced bricks then received a series of tests, including firing shrinkage, weight loss on ignition, water absorption, bulk density, and compressive strength, to determine the suitable conditions for producing qualified bricks.

Figure 1. Sewage After Passed Through Screen &Grid Chambers

4. Results and Discussion

The pH value of sewage sludge is obtained as 7.4, hence it is taken as a Neutral material.

Liquid Limit for Clay

Percentage of Water Content	25	27	29	31	33
Number of Blows	65	52	47	34	21

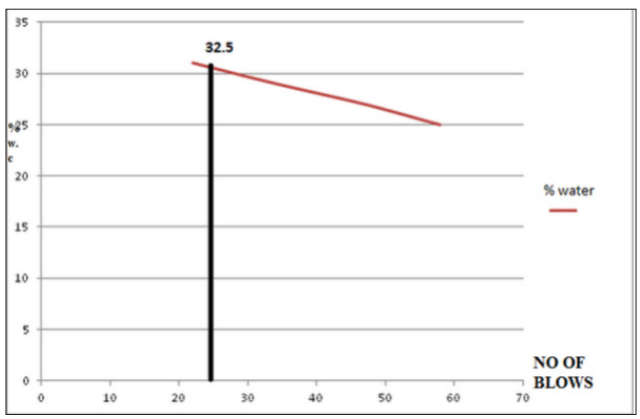

Fig 4.1Liquid Limit

Liquid Limit for Sludge Mix

% OF REPLACEMENT	PLASTIC LIMIT	LIQUID LIMIT	PLASTICITY INDEX
FOR 5 % REPLACEMENT	14.3	30.7	16.4
FOR 10 % REPLACEMENT	13.6	28.9	15.3
FOR 15 % REPLACEMENT	12.9	27.1	14.2
FOR 20 % REPLACEMENT	12.2	25.3	13.1

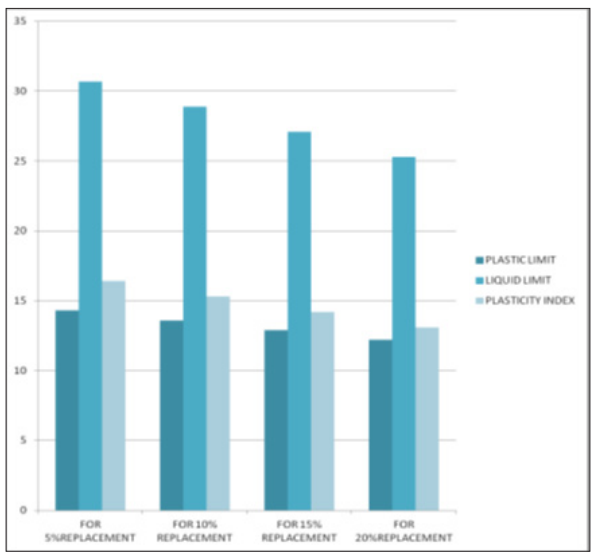

Fig 4.2 Atterberg's Limits For Replaced Mixture

Properties of Normal Brick

S.NO	Length cm	Breadth cm	Depth cm	Wt before immersion (Kg)	Wt after immersion (Kg)	Water absorption (%)
1	22.5	10.5	7	3.287	3.695	12.41
2	22.5	10.5	7	3.118	3.496	12.12
3	22.5	10.5	7	3.152	3.529	11.96
4	22.5	10.5	7	3.127	3.498	11.86
5	22.5	10.5	7	3.212	3.596	11.96

Average water absorption = 12.06%

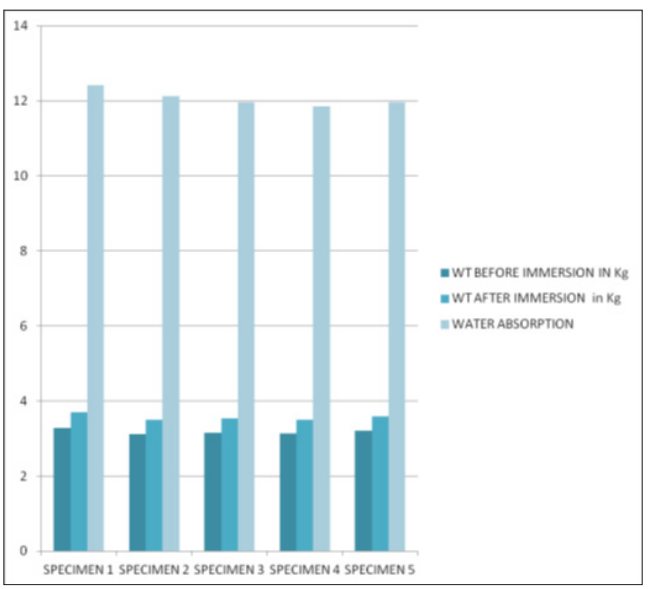

Fig 4.3 water absorption for normal clay bricks

Compressive Strength of Normal Brick

S.NO	Length cm	Breadth cm	Depth cm	Breaking Load (KN)	Compressive Strength (N/mm2)	Water absorption (%)
1	22.5	10.5	7	124	5.25	12.41
2	22.5	10.5	7	118	4.99	12.12
3	22.5	10.5	7	120	5.08	11.96
4	22.5	10.5	7	122	5.16	11.86
5	22.5	10.5	7	124	5.25	11.96

Properties of Sludge-Clay Bricks

4.4.1 Water Absorption For Sludge-Clay Bricks

Tabulation

S.NO	Length cm	Breadth cm	Depth cm	Wt before immersion (Kg)	Wt after immersion (Kg)	Water absorption (%)
1	22.3	10.2	6.5	3.247	3.453	11.75
2	22.3	10.2	6.5	3.124	3.125	11.62
3	22.3	10.2	6.5	3.0753	3.152	11.25
4	22.5	10.5	7	122	5.16	11.86
5	22.5	10.5	7	124	5.25	11.96

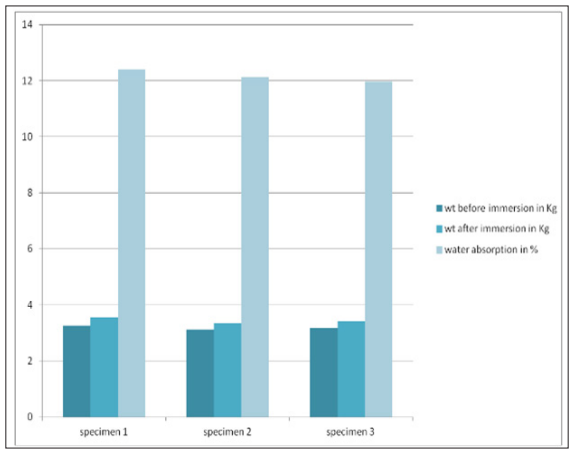

Fig 4.4 Water Absorption For Sludge-Clay Bricks

Conclusion

This work has demonstrated a feasible way of using incinerated sewage sludge as a clay substitute to produce quality bricks. Different measurements of both clay-sewage sludge admixtures and brick were carried out to evaluate the factors that could affect brick quality. Major findings in this study are as follows:

1. Increasing the amount of sewage in replacement of clay, the SSA of that corresponding mixture decreases proportionally. As a result, the overall particle fineness and water requirement for mixing decrease with increasing percentage of sludge in the mixture. Increasing the amount of sewage added to the mixture results in a decrease in its plastic behavior.

2. The brick manufactured did not show any deformation or uneven surfaces occurring at all firing temperatures when 13 to 15% optimum moisture content was applied in the molded mixtures. Increasing the firing temperature and decreasing the amount of sludge in the brick resulted in a decrease in water absorption. It might be much easier to manufacture a brick to meet the second-class brick water absorption criteria, but for a first-class brick, one should control the sludge content to less than 25% and fire at greater than 1,1027C.

3. In order to yield a good quality brick, the proportion of sludge in the mixture and the firing temperature are the two key factors controlling the shrinkage in the firing process. Increasing the temperature results in an increase in shrinkage, the quality of brick can be improved by incorporating sludge in brick to narrow the degree of firing shrinkage. When brick contains 10% sludge, the shrinkage sharply decreases from that of normal clay brick of 13.3 to 8.5%. A

linear relationship between the shrinkage and the sludge proportion was observed for 10 to 50% sludgesludge added. A good quality brick can be produced under the following conditions: over 15% sludge used and fired at 9507C, over 20% sludge at 1,0007C, and over 30% sludge at 1,0507C.

4. Increasing the percentage of sludge resulted in a decrease in brick weight loss. The bricks made for this study all meet the criterion of 15% weight loss on ignition for a normal clay brick. The uneven surface mainly caused by the burn-off of the organic component during the firing process can be improved with the addition of sludge. The brick weight loss on ignition is not only attributed to the organic matter content in the clay, but also depends on the inorganic substances in both clay and sludge being burnt off during the firing process.

5. The results of compressive strength tests on the bricks made from both clay and sludge sludge indicate that the strength is greatly dependent on the amount of sludge in the brick and the firing temperature. The optimum amount of sludge sludge that could be mixed with clay to produce good bonding of bricks was 20% by weight. With up to 40% sludge sludge added to the bricks, the strength at all temperatures can be as high as that of normal clay bricks.

The results indicated that the optimum firing temperature at which maximum compressive strengths occurred was 1,0007C. The compressive strength of the bricks made from sludge-clay mixtures all meet the CNS382 R2002 brick standard. In all, the recommended proportion of sludge sludge in brick is 20 to 40%, with a13 to 15% optimum moisture content prepared in the molded mixtures and fired at 1,0007C to produce a good quality brick. We revealed that incinerated sludge sludge is a potential material for the brick components. The advantages of less firing shrinkage, less weight loss on ignition, and gaining more compressive strength in making an sludge-clay brick would stimulate the use of sludge sludge as a brick additive in the near future.

References

1. Al-Futaisi A, Rajmohan N, Al-Touqi S (2007). Groundwater quality monitoring in and around Barka dumping site, Sultanate of Oman. The Second IASTED (The International Association of Science and Technology for Development) International Conference on Water Resources Management (WRM 2007), Honolulu, Hawaii, USA, pp.20–22.
2. APHA, (1995). "Standard methods for the examination of water and wastewater," 19th edition, American Public Health Association. Washington, D.C., pp.1467.
3. Arivarasi R and Ganesan M. (2017), Seasonal variation in ground water quality and its suitability for drinking and agriculture –A case study in Kancheepuram region, Tamil Nadu, India, Global NEST Journal, 19(1), pp.131-139.
4. Ayers, R S. (1977). Quality of water for irrigation. Journal of Irrigation and Drainage Div., ASCE, 103(2): pp.135-154.
5. Bhargava D S, and Killender D J (1988) The technology of water resources in industries. A rational approach. J Ind Water Works Assoc Issue-20, pp107–112

6. Bhat M A, Grewal M S, Ramprakash R, Wani S A, Dar E A (2016) Assessment of Groundwater Quality for Irrigation Purposes using Chemical Indices. Indian Journal of Ecology 43: pp.574-579.
7. Christiansen, J E., Olsen, E C. and Willardson L S.(1977). Irrigation water quality evaluation. Journal of Irrigation and Drainage Div., ASCE, 103(2): pp.155-169.
8. Domenico, P. A., and Schwartz, F. W. (1990). Physical and chemical hydrogeology. New York:Wiley.
9. Golditch, S S.(1938) A study in rock weathering, Journal of Geology,V.46,pp.17-19.
10. Jalali M (2005) Nitrates leaching from agricultural land in Hamadan, western Iran. AgricEcosyst Environ 110:pp.210–218.
11. Lakshmanan, E. Kannan, R. and M. Senthil Kumar, M. (2003). Major ion chemistry and identification of hydro geochemical processes of ground water in a part of Kancheepuram district, Tamil Nadu, India. Journal of Environmental Geosciences.10 (4): pp.157–166.
12. Nagaraju A, Suresh S, Killham K and Hudson-Edwards K (2006), Hydrogeochemistry of Waters of Mangampeta Barite Mining Area, Cuddapah Basin, Andhra Pradesh, India. Turkish Journal of Engineering and Environmental Sciences. 30, pp.203-219.
13. Prasad N.B.N (1984) Hydrogeological studies in the Bhadra River Basin. Ph.D. thesis, University of Mysore, Karnataka, India, p 323.
14. Pritchard M, Mkandawire T, O'Neill JG (2008) Assessment of groundwater quality in shallow wells within the southern districts of Malawi. Phys Chem Earth 33:pp.812–823
15. Rajmohan N, Elango L, Ramachandran S, Natarajan M (2000) Major ion correlation in groundwater of Kancheepuram region, south India. Indian J Environ Protection 20(3):pp.188–193.
16. Ramakrishnaiah C.R., Sadashivaiah C. and Ranganna G. (2009), Assessment of Water Quality Index for the Groundwater in Tumkur Taluk, Karnataka State, India, E-Journal of Chemistry, 6(2), pp.523-530.
17. Ramamoorthy P, Rammohan V, (2014). Assessment of ground water quality in varahanadhi sub basin in Tamilnadu, India, India, International journal of water research, 2(1): pp.10-15.
18. Ramamoorthy.P, Rammohan.V, Subramani.T,(2014)Spatial analysis of groundwater quality in Varahanadi Watershed, Tamil Nadu, using GIS Techniques. International Journal Of Scientific Research ,Volume: 3 | Issue : 3 ,pp.141-145.
19. Ramamoorthy P and Rammohan.V(2015), Assessment of Groundwater potential zone using remote sensing and GIS in Varahanadhi watershed Tamilnadu, India, International Journal for Research in Applied Science & Engineering Technology , Volume 3 Issue V,pp-695- 702.
20. Ramamoorthy P, Ramkumar R, Raguraman R, Ranjithkumar M, Venkatesan P, (2017), Assessment Of Groundwater Quality For Drinking and Irrigation Purposes In Gingee Block ,Villupuram District, Tamilnadu, IJSART,Vol-3,Issue-9,pp 282-287.
21. Ramamoorthy.P, Senthilkumar.S, Rammohan.V,(2018) Hydrogeochemical Modeling of Groundwater, Using WATEQ4F. A Case Study in Lower Varahanadhi Sub basin, Tamilnadu, India. International Journal for Research in Applied Science & Engineering Technology (IJRASET) Volume 6,pp.1060-1065.
22. Ramamoorthy.P, Rammohan.V (2018).Assessment of Water Quality Index (WQI) for Drinking Purpose of Groundwater in Lower Varahanadhi subbasin, Tamilnadu, India. International Journal for Research in Applied Science & Engineering Technology (IJRASET) Volume 6,Issue-III,pp.920-924
23. Ramamoorthy P, Backiaraj S and AjithkumarR (2018),"Evaluation of ground water quality for drinking and irrigation suitability: A case study in Marakkanam block Villupuram district, Tamilnadu, India," Journal of Industrial Pollution Control, vol. 34, no. 2, pp. 2159–2163.
24. Ramamoorthy P, Senthil S and Kirubaharan M,(2020),Experimental Investigation Of Groundwater Quality In Thellar

Village, Thiruvannamalai District, Tamilnadu, India. Solid State Technology,V.63,Issue.6,pp.10364-10373

25. Rao N S, Rao J P, Devadas D J, Rao K S, Krishna C, et al. (2002) Hydrogeochemistry and groundwater quality in a developing urban environment of a semi-arid region, Guntur, Andhra Pradesh. Journal of the Geological Society of India 59: pp.159-166.
26. Richard L.A. (1954), 'Diagnosis and improvement of saline and alkali soils', Agricultural handbook 60, US Department of Agriculture, Washington DC.
27. Rivers CN, Hiscock KM, Feast NA, Barrett MH, Dennis PF (1996) Use of nitrogen isotopes to identify nitrogen contamination of the Sherwood sandstone aquifer beneath the city of Nottingham, UK. Hydrol J 4(1):pp.90–102.
28. Anjay Kumar S, Binod Bihari N and Dinabandhu B,(2009) Environmental studies on river water quality with reference to suitability for agricultural purposes: Mahanadi river estuarine system, India – a case study, Environ Monit Assess (2009) 155:pp.227–243.
29. Sanjay Kumar S, Binod Bihari N, Dinabandhu B (2009). Environmental studies on river water quality with reference to suitability for agricultural purposes: Mahanadi river estuarine system, India – a case study. Environ Monit Assess 155:pp.227–243.

Sleep Deprivation and Stress among Indians during COVID-19

Anusha Popli,
Shreya Biswas and Dr. Om Prakash Koli

Abstract

COVID-19 has caused significant turmoil all over the world. Apart from the deaths caused by the deadly virus, the impact quarantine had on people's mental health is also noticeable. This research is an attempt to analyse the relationship between the pandemic and sleep deprivation and stress among Indians. Sleep Deprivation is a condition characterized by insufficient sleep length and/or quality to maintain adequate alertness, performance, and health. It can be chronic or acute, and the intensity can vary greatly. Any change that creates physical, emotional, or psychological discomfort is referred to as stress. The present research aims to study the relationship between sleep deprivation and stress. We also intend to analyse the contribution of the COVID-19 pandemic to the levels of sleep deprivation and stress among Indians. The study is based on both primary and secondary data sources. To assess the impact of the outbreak of COVID-19, we conducted a survey at a local level in the Delhi region in the year of 2021. The sample size will be around 166 people within the age group of 18-25 years. Both qualitative and quantitative techniques are used to analyse the indicators of mental health among Indians, especially for sleep deprivation and stress.

Keywords: sleep deprivation, stress, COVID-19, insomnia, anxiety

Introduction

The World Health Organization (WHO) proclaimed the new coronavirus outbreak (COVID-19) a global pandemic on March 11, 2020 (WHO, 2023). COVID-19 is a virus that originated in Wuhan, China, and has since spread to almost every country in the world, having an impact on health, economy, human behaviour, and mental well-being (Holmes et al., 2020). Evidence about people's psychological reactions to this global public health crisis becomes more important as the number of deaths rises because it provides insights that could

help policymakers and practitioners improve health communication, promote preventive behaviours, and provide social and emotional support to those who need it (Bavel et al., 2020; Dryhurst et al., 2020).

This lockdown has presented a change in lifestyle. Physical exercise, mobility, and the availability of nutritious meals were all restricted. As a result, chronobiological rhythms have been altered, as they are influenced not only by light but also by other zeitgebers such as food, social interaction, and physical activity. (Galli et al., 2020; Gupta et al., 2020; Altena et al., 2020a;.Altena et al., 2020b). The value of sleep has often gone unnoticed in the midst of this upheaval. However, as the pandemic has progressed, experts have discovered that it has had a significant impact on sleep *(Sleep Foundation, 2023).*

COVID-19 continues to infect millions of people throughout the world two years after the pandemic was announced, while society tries to adjust to a new normal. Sleeping soundly is a priority during this vital stage and can provide significant health benefits *(Sleep Foundation, 2023).*

Sleep is essential for physical health and the immune system's proper functioning. It is also an important promoter of emotional wellness and mental health, as it aids in the reduction of stress, despair, and anxiety *(Sleep Foundation, 2023).* Thus, disruption of sleep patterns and quality can severely affect one's mental health.

The impact on child and adolescent mental health is an acute effect of pandemic-related stress (Fegert et al., 2020). Chronic stress is linked to a higher risk of anxiety and depression when social isolation is mixed with fears of contagion and quarantine, as well as potential information overload. Social isolation is described as a reduction in the quality and/or amount of contact that an individual has with others.

Stress has an adverse association with sleep in general, but not always. Sleep reactivity influences the impact of stress on sleep quality, timing, and duration. People with high reactivity have insomnia during stressful events, whilst those who do not do so do not. As a result, home confinement as a result of lockdown increases the risk of disrupted sleep and insomnia as a result of stress. (Kalmbach et al., 2018)

While prior to the COVID-19 pandemic, social isolation primarily impacted the elderly, global initiatives to combat the spread of SARS-CoV-2 have exposed people of all ages to the impacts of social isolation (Cianfarani & Pampanini, 2023).

The current COVID-19 outbreak is an uncommon instance in which a large number of people are confined to their homes and are not required to follow a scheduled routine. The effect

of confinement on sleep has previously been studied in astronauts training for a Mars trip, jailed women, and mariners. (Basner et al., 2013; Harner & Budescu, 2014; Hystad & Eid, 2016) The findings of this research, however, cannot be generalised to home confinement during the COVID-19 lockdown due to the nature of confinement. First, the Mars mission simulation featured only six people of various nationalities, a limited amount of area for physical activity, active training, and a 520-day confinement period. (Basner et al., 2013) Despite the fact that the study among jailed women had a higher sample size, it cannot be applied to the general population because stress and sleep settings differed from those in home confinement. (Harner & Budescu, 2014) The third research comprised seamen who were on board and going about their daily business. Aside from that, the participants in these studies had no duties outside of their employment, few chances for leisure activities, and no reason to fear for their lives.

In order to address the current gap in the literature, this research aims to estimate the relationship between sleep and stress. It further aims to investigate the effects of the pandemic on the sleep quality and the stress levels of Indians within the age group of 18-25 years.

It is found that COVID-19 lockout was connected to poor sleep quality, a shift in the sleep cycle to the delayed phase, sleep deprivation based on night-time sleep, and depression symptoms in a large number of people in accordance with their study. An online questionnaire using the Survey Monkey platform was distributed among the general public. A semi-structured proforma was created by them to collect data on socio-demographic, work responsibilities, sleep patterns, screen usage, other medical comorbidities, and medication intake. Bedtime was pushed back, sleep onset latency was lengthened, and the percentage of people who napped during the day increased. Napping during the day lowers sleep pressure, delaying bedtime and increasing sleep-onset latency. Thus, sleep is influenced by both circadian and homeostatic variables, which combine to determine the timing and latency of sleep onset. Screen time, which increased following lockdown, is another factor impacting sleep habits. Shorter sleep and lower sleep efficiency are linked to spending more time in front of the screen (Gupta et al., 2020).

The study conducted by a group of researcher team presents evidence from close-knit communities in peri-urban India about awareness of COVID-19 symptoms, risk perception, worry, stress, and changes in behaviour in response to the COVID-19 pandemic. They have identified potential information gaps among residents (e.g. a lack of awareness of asymptomatic characteristics) as well as prevalent anxieties and sources of stress since the lockdown. From May 20–25, 2020, in communities from eleven census towns in peri-urban areas in Tamil Nadu, India, a cross-sectional phone survey was conducted. In reaction to the pandemic, the majority of the 2044 participants reported modifying their daily routines, including minimising social gatherings (73.8%), increasing social distance (80.7%), and informing people about COVID

(70.2%). They also reported an increase in cell phone/internet use (61.2%) and housework (cooking, cleaning) (66.9%). A substantial percentage of people (78.7%) expressed increased financial stress, as well as heightened tension about the lockout (50.5%) (Kuang et al., 2020).

The purpose of the study of another team is to summarise the impact of the pandemic COVID-19 on the Indian population's lifestyle behaviour. They conducted a literature search on PubMed and Google Scholar from dawn till October 2020 to recognise all applicable studies. In the majority of research reviews, sleep was found to be impacted. Importantly, not only the quantity but also the quality of sleep was seen to be changed. The prevalence of any sort of mental stress, especially anxiety, was determined to be at an all-time high. The majority of the participants with greater mental stress had a poor food pattern. Around 36.4% of participants were distressed as a result of social media, and over 80% felt the need for mental health and counselling (Rawat et al., 2021).

A team undertook a study to determine the prevalence of depression, anxiety, and stress among the Indian people during the shutdown and analyse their socio-demographic correlations. An electronic questionnaire was used to perform a cross-sectional survey. A total of 354 people were chosen at random from a convenience sample. The Depression Anxiety Stress Scale (DASS-21), a 21-item self-reported questionnaire, was used to assess depression, anxiety, and stress. According to the results, 25.1%, 28%, and 11% of the parties were depressed, anxious, and depressed, respectively. Binge drinking was also linked to sadness, anxiety, and stress in a significant and beneficial way (Verma & Mishra, 2020).

Objectives

In order to study, the following objectives are being covered-

- To study the relationship between sleep deprivation and stress
- To analyse the contribution of the COVID-19 pandemic to the levels of sleep deprivation and stress among Indians

Study Area

The study "Sleep deprivation and Stress among Indians during COVID-19" has been conducted on both- Micro and Macro scales in India in the year of 2020-21. Under the micro scale, an online survey was conducted to study sleep quality and stress levels during the COVID-19 pandemic through questionnaire. This questionnaire was filled out by 166 people

across India. In order to get quantitative numbers, the questions asked were close-ended. The questionnaires overed both qualitative and quantitative in nature.

The macro aspect of the study was covered by the review of literature. Analysis of the already existing literature such as articles, essays and research papers helped provide a broader perspective of the global scenario of the underlying issues. Moreover, the Literature review assists in the study.

Hypothesis

In the process of executing the above objectives, the research would test the following hypothesis-

1. Stress and Sleep are directly proportional to each other. Poor sleep quality will lead to higher stress levels and vice-versa.
2. The COVID-19 pandemic has negatively impacted sleep quality and stress levels of a person.

Data Source and Methodology

In this attempt to learn about 'Sleep Deprivation and Stress among Indians during COVID-19', we used both primary and secondary sources of data. Under the primary source, the questionnaire method has been used. The questionnaire consisted of questions from the Sleep Quality Scale and Perceived Stress Scale indexes to get quantitative figures for the study. Due to the critical conditions of the Lockdown, a google form was created and forwarded through various channels like WhatsApp, LinkedIn, Instagram, Facebook and Word of Mouth. The sample size was 166 responses with the age group of 18-25 years. The Snowball sampling method was also used in the circulation of the questionnaire. For secondary sources, the review of literature has been chosen. The literature review included previously published papers, articles, essays and other personal experiences. The primary source i.e., questionnaire method is used to study the first objective. The second objective is studied by the secondary source, Literature Review.

Ethical Considerations

The participants involved in the survey were made aware of the purpose and motive of the research. They were also assured that their personal details such as their name, location, and mail address would not be disclosed or revealed at any cost.

All the data collected is purely through the means of the survey.

Results

Problems	Percentage of People Experiencing the Problem
Difficulty in falling asleep	19
Waking up in the middle of the night	16
Difficulty in falling asleep once woken	14
Unable to fall in deep sleep	36
Sensitive to noise when sleeping	25
No interest in daily work due to insufficient amount of sleep	27
Headache and irritation due to poor sleep	28

Table1: Quality of sleep

Problems	Percentage of People Experiencing the Problem
Unable to control important things in life	25
Feeling nervous and stressed regularly	18
Unable to cope with the work load	33
Anger caused by the inability to keep up pending work	23
Difficulty in completing day-to-day tasks	27

Table 2: Stress levels

Discussion

1. Relation between stress and sleep

Stress, in the psychological term, is the response of the living body to any situation which requires immediate attention or action. Stress and sleep are interlinked as they both affect each

other. Chronic stress can lead to loss of sleep and on the other hand, unhealthy sleeping habits can cause physical as well as mental stress.

Stress can be short-termed as well as chronic. Short-term stress is an important survival mechanism for human beings which makes the body more alert to fight dangers or threats. But chronic stress leads to severe damage. It not only causes physical problems like muscle pains, headaches, and imbalance in blood pressure but also mental issues like anxiety and depression. Stress also affects sleeping patterns. It causes the release of the adrenaline hormone which keeps the body in a constant alert state making it hard to relax and eventually fall asleep.

Stress can lead to trouble in falling asleep or altogether alter the whole sleeping pattern of a person. From our survey, we saw that almost 20% of the people faced difficulty in sleeping or disturbed sleeping pattern. Stress may also cause a person to wake up in between sleep. About 16% person of our respondents wake up abruptly in the middle of the night which is also symbolic of the fact that stress prevents a person from falling into a deep sound sleep. Furthermore, stress can increase the frequency of the occurrence of nightmares while sleeping thus hampering the sleeping pattern. Chronic stress could also lead to sleep disorders like insomnia.

Like stress has a negative impact, lack of sleep can also increase the level of stress in our bodies. Not getting proper rest slows down all the physiological functions of the body. Lack of sleep puts the body in a state of distress and increases the release of the stress hormone – cortisol. High levels of cortisol cause cardiovascular problems and may lead to chronic stress. Inadequate sleep hampers the hormonal cycle of the body which in turn affects cortisol secretion. At least 7-8 hours of sleep daily is required for the body to relieve fatigue and stress.

2. Contribution of covid-19 pandemic to increase levels of stress and sleep deprivation

The covid-19 pandemic has brought about major changes in the lives of people all over the globe. It had an impact on the physical, mental as well as emotional health and well-being of people. Lockdown and the eventual shutdown of every institution and office got people stuck up in their houses with little to no socialization and physical movement. This has had a severe impact on people's health especially mentally.

From our study, it can be seen that about 33% of the respondents have experienced an increased level of stress and fatigue during this pandemic. As a result, most of them have trouble maintaining a proper sleep schedule as well as have difficulty falling asleep. Furthermore, about

64.24% of the respondents cannot go back to sleep once woken up in the middle of the night. As a result of lack of sound sleep about 23.38% of the respondents are faced with a loss of appetite, mood swings, headaches, inability to concentrate on work and fatigue. The respondents rarely feel energized or active after waking up and about 23% of them feel that their sleeping hours are not enough. About 24% of the respondents feel exhausted throughout the day and they are unable to keep up with their daily work schedule. This again triggers stress as they start feeling they are unable to be on top of their work pile.

The change in lifestyle and the consequent rise in the usage of digital platforms has increased people's screen timing significantly. About 20% of smartphone users had an average screen time of 4.5 hours a day in 2021 which is approximate. Increased screen timings have various negative impacts on a person's health and well-being. Sitting in front of a cell phone or computer screen for most parts, without much physical movement, causes physical stress, back pain and chronic neck pain. The blue ray radiated from electronic screens inhibits the proper functioning of a person's sleep cycle. This leads to the inability to fall asleep easily and ultimately increases the stress hormone in the body as mentioned earlier which again inhibits the sleep cycle. Thus, it goes on in a chain pattern where both sleep deprivation and stress affect each other.

Emotional Geography and Sleep

Emotional Geography is a subfield of Human Geography that studies the connections between emotions and geographic locations and their contexts. Emotional geography is the study of how human emotions interact with and influence the environment around them. It aims to provide psychoanalysis of human emotions, people, and the environment. Because emotions play such a significant role in how people think and behave, they have an impact on the actions and decisions people make throughout their lives. As a result, it seeks to map a community's emotional geography.

Sleep cultures, economies and practices are active agents in the creation of a wide range of locations and spaces. Sleep and the Spaces of Every-Night Life The activities that surround it – such as going to sleep and waking up – are critical but often overlooked components of human geographies across the globe. Sleep and sleeping aren't only a 'gap' in our waking existence, nor are they a symbolic device for satirical commentary. They are part of a complex set of discourses and actions that produce and are implicated in geographies that demand immediate critical attention. (Davidson & Milligan, 2007)

Conclusion

This study on 'Sleep Deprivation and Stress among Indians during Covid-19' reflected the fact that the pandemic has brought abrupt changes in the lives of humans. It is understood how stress and sleep share an interconnection and how they have both positive and negative impacts on our bodies.

Limitations

Like any other study, the current study also has some limitations. Firstly, the researchers were unable to collect data in the field because of the country's lockdown condition. Secondly, they collected data using electronic methods such as convenience sampling and snowball sampling. As a result, the findings of this research cannot be applied to the entire population. Third, the survey's replies were self-reported. It could have resulted in social desirability reporting biases, which could have influenced the results.

Acknowledgements

We thank Riza Ahmed and Bidagdha Goswami for their time and review of the questionnaire and are grateful for their contributions. Lastly, we would like to extend our gratitude to the participants and volunteers who answered the questionnaire.

References

1. Altena, E., Baglioni, C., Espie, C. A., Ellis, J., Gavriloff, D., Holzinger, B., Schlarb, A., Frase, L., Jernelöv, S., & Riemann, D. (2020a). Dealing with sleep problems during home confinement due to the COVID-19 outbreak: Practical recommendations from a task force of the European CBT-I Academy. *Journal of Sleep Research*, 29(4). https://doi.org/10.1111/JSR.13052
2. Basner, M., Dinges, D. F., Mollicone, D., Ecker, A., Jones, C. W., Hyder, E. C., di Antonio, A., Savelev, I., Kan, K., Goel, N., Morukov, B. v., & Sutton, J. P. (2013). Mars 520-d mission simulation reveals protracted crew hypokinesis and alterations of sleep duration and timing. *Proceedings of the National Academy of Sciences of the United States of America,* 110(7), 2635–2640. https://doi.org/10.1073/PNAS.1212646110/SUPPL_FILE/SAPP.PDF
3. Bavel, J. J. V., Baicker, K., Boggio, P. S., Capraro, V., Cichocka, A., Cikara, M., Crockett, M. J., Crum, A. J., Douglas, K. M., Druckman, J. N., Drury, J., Dube, O., Ellemers, N., Finkel, E. J., Fowler, J. H., Gelfand, M., Han, S., Haslam, S. A., Jetten, J., … Willer, R. (2020). Using social and behavioural science to support COVID-19 pandemic response. *Nature Human Behaviour,* 4(5), 460–471. https://doi.org/10.1038/S41562-020-0884-Z
4. Cianfarani, S., & Pampanini, V. (2023). The Impact of Stress on Health in Childhood and Adolescence in the Era of the COVID-19 Pandemic. *Hormone Research in Paediatrics, 96(1),* 83–87. https://doi.org/10.1159/000517460

5. Davidson, J., & Milligan, C. (2007). Embodying emotion sensing space: introducing emotional geographies. *Https://Doi.Org/10.1080/1464936042000317677, 5(4), 523–532. https://doi.org/10.1080/1464936042000317677*

6. Dryhurst, S., Schneider, C. R., Kerr, J., Freeman, A. L. J., Recchia, G., van der Bles, A. M., Spiegelhalter, D., & van der Linden, S. (2020). Risk perceptions of COVID-19 around the world. *Taylor & Francis,* 23(7–8), 994–1006. https://doi.org/10.1080/13669877.2020.1758193

7. Fegert, J. M., Vitiello, B., Plener, P. L., & Clemens, V. (2020). Challenges and burden of the Coronavirus 2019 (COVID-19) pandemic for child and adolescent mental health: A narrative review to highlight clinical and research needs in the acute phase and the long return to normality. *Child and Adolescent Psychiatry and Mental Health,* 14(1), 1–11. https://doi.org/10.1186/S13034-020-00329-3/FIGURES/1

8. Galli, F., Reglero, G., Bartolini, D., PharmaNutrition, F. V.-, & 2020, undefined. (n.d.). Better prepare for the next one. Lifestyle lessons from the COVID-19 pandemic. *Ncbi.Nlm.Nih.Gov.* Retrieved February 7, 2023, from https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC7202804/

9. Gupta, R., Grover, S., Basu, A., Krishnan, V., Tripathi, A., Subramanyam, A., Nischal, A., Hussain, A., Mehra, A., Ambekar, A., Saha, G., Mishra, K., Bathla, M., Jagiwala, M., Manjunatha, N., Nebhinani, N., Gaur, N., Kumar, N., Dalal, P., … Avasthi, A. (2020). Changes in sleep pattern and sleep quality during COVID-19 lockdown. *Indian Journal of Psychiatry,* 62(4), 370. https://doi.org/10.4103/PSYCHIATRY.INDIANJPSYCHIATRY_523_20

10. Harner, H. M., & Budescu, M. (2014). Sleep Quality and Risk for Sleep Apnea in Incarcerated Women. *Nursing Research,* 63(3), 158. https://doi.org/10.1097/NNR.0000000000000031

11. Holmes, E. A., O'Connor, R. C., Perry, V. H., Tracey, I., Wessely, S., Arseneault, L., Ballard, C., Christensen, H., Cohen Silver, R., Everall, I., Ford, T., John, A., Kabir, T., King, K., Madan, I., Michie, S., Przybylski, A. K., Shafran, R., Sweeney, A., … Bullmore, E. (2020). Multidisciplinary research priorities for the COVID-19 pandemic: a call for action for mental health science. *The Lancet Psychiatry, 7(6), 547–560.* https://doi.org/10.1016/S2215-0366(20)30168-1

12. Hystad, S. W., & Eid, J. (2016). Sleep and Fatigue Among Seafarers: The Role of Environmental Stressors, Duration at Sea and Psychological Capital. *Safety and Health at Work,* 7(4), 363–371. https://doi.org/10.1016/J.SHAW.2016.05.006

13. Kalmbach, D. A., Cuamatzi-Castelan, A. S., Tonnu, C. v., Tran, K. M., Anderson, J. R., Roth, T., & Drake, C. L. (2018). Hyperarousal and sleep reactivity in insomnia: current insights. *Nature and Science of Sleep,* 10, 193. https://doi.org/10.2147/NSS.S138823

14. Kuang, J., Ashraf, S., Das, U., & Bicchieri, C. (2020). Awareness, Risk Perception, and Stress during the COVID-19 Pandemic in Communities of Tamil Nadu, India. *International Journal of Environmental Research and Public Health,* 17(19), 1–12. https://doi.org/10.3390/IJERPH17197177

15. Rawat, D., Dixit, V., Gulati, S., Gulati, S., & Gulati, A. (2021). Impact of COVID-19 outbreak on lifestyle behaviour: A review of studies published in India. *Diabetes & Metabolic Syndrome: Clinical Research & Reviews,* 15(1), 331–336. https://doi.org/10.1016/J.DSX.2020.12.038

16. *Sleep Guidelines and Help During the COVID-19 Pandemic | Sleep Foundation.* (n.d.). Retrieved February 22, 2023, from https://www.sleepfoundation.org/sleep-guidelines-covid-19-isolation

17. Verma, S., & Mishra, A. (2020). Depression, anxiety, and stress and socio-demographic correlates among general Indian public during COVID-19. *The International Journal of Social Psychiatry, 66(8),* 756–762. https://doi.org/10.1177/0020764020934508

18. *WHO: WHO coronavirus disease (COVID-19) dashboard - Google Scholar. (n.d.).* Retrieved February 7, 2023, from https://scholar.google.com/scholar_lookup?title=WHO+Coronavirus+Disease+(COVID-19)+Dashboard&author=WHO&publication_year=2020

Assessing the Imperatives for Electoral Reforms in Strengthening Indian Democracy

Swati Upadhyay *- Research Scholar.*
Gokul Chandra Fulara *-*
Assistant Professor ((Hemwati Nandan Bahuguna Garhwal University).

Abstract

Today, the question of electoral reforms arises due to the growing deterioration in electoral politics. There is a dire need to strengthen the electoral system of our country in order to realize the true potential of a well functioning democracy. Keeping in view of the importance of the subject I conducted a qualitative study on the by using both primary and secondary sources. In this paper an attempt has been made to analyse some of the major issues which are to be resolved and also tried to put forward certain suggestions in respect of electoral reform in India.This research paper critically examines the imperative need for electoral reforms to bolster Indian democracy. Through a comprehensive analysis of existing literature, policy documents, and empirical data, the study identifies key challenges and deficiencies within India's electoral framework. It explores pressing issues such as electoral integrity, political representation, campaign finance, technology adoption, and electoral administration. By delving into these areas, the paper underscores the urgency for reforms to address systemic weaknesses and emerging trends that undermine the effectiveness, integrity, and inclusivity of India's democratic processes. The research highlights the prevalence of electoral malpractices, the underrepresentation of marginalized groups, the influence of money in politics, and the potential of technology to enhance electoral integrity. Moreover, it emphasises the importance of strengthening electoral administration to ensure professionalism, capacity, and independence. Ultimately, this paper provides a comprehensive overview of the challenges and imperatives for electoral reforms in India, serving as a guide for policymakers, electoral authorities, and civil society stakeholders in their efforts to fortify democratic governance and safeguard the principles of fairness, transparency, and accountability in the electoral process.

Keywords: Electoral reforms, Political representation, Electoral integrity, Campaign finance,Technology adoption,Electoral administration,Voter turnout.

Introduction

Electoral reforms in India have been realised mainly through the judiciary, the Election Commission of India (henceforth, ECI) and civil society groups, with a conspicuous absence of legislative effort by Parliament.Elected governments have set up several committees and commissions that made recommendations on issues that the elected representatives have been reluctant to address, namely, criminalisation of politics, election spending, transparency in donations, and the possibilities of an alternative electoral system. The Supreme Court of India (henceforth, SCI) had stepped in to assist and strengthen the hand of the ECI in interpreting the Representation of People's Act (henceforth, RPA), as in the recent judgment on January, 2017, by a seven-judge Constitution Bench led by Chief Justice of Indian an appeal filed in 1990 on whether seeking of votes in the name of religion, race, caste, community or language would be a corrupt practice eligible for disqualification. Perception about the electoral process in a democracy like India might be defined as the opinion of the people gathered by surveys or election studies,and is sought to be represented in political campaigns or decisions on electoral process, interventions of the ECI, judicial verdicts on reforms like candidate affidavits,and authoritative reports of commissions set up to explore electoral reforms.The Judicial and legal opinions that facilitated electoral reforms also entrenched the perception that democracy was ill served by the elected representatives who withheld reforms that could improve the process. There was distrust towards the election process itself due to long-standing and unaddressed violations of the law and of people's trust.Although electoral process reforms, like Electronic Voting Machine or Election Photo Identity Card, had been implemented successfully, perceptions about the process among the voters had remained negative despite the high credibility of the ECI itself as an independent and trusted institution. An efficient electoral process was not entirely sufficient for a good democracy and it was necessary that the perceptions of the voters contributed to ushering in the required reforms. As such reforms were supported by the judiciary and the legal opinion, the research question of this study was, whether or not the judicial and legal interventions in the electoral processwere inclusive of the perception about electoral reforms? The recommendations of the commissions set up by the government to explore electoral reforms had gathered dust until the SCIendorsed civil society action for reforms and facilitated the implementation by the ECI, as in the case of the filing

of candidate affidavits. Similarly, the Law Commission had insisted on several reforms of the electoral process, most prominently, in its reports of 1999, 2014 and 2015. This paper would endeavour to qualitative study the SCI verdicts on electoral reforms and Law Commission reports to ascertain whether the perceptions about the electoral process were included in the judicial and legal support for reforms.

Electoral reforms in India

During the last half-a-century, there have been fifteen general elections to Lok Sabha and a much larger number to various State Legislative Assemblies. The experience in this election has brought to fore many distortions which generate a deep concern in many quarters. There are constant references to the unhealthy role of money power, muscle power and mafia power and to criminalisation, corruption, communalism and casteism. Concerns for electoral reforms have been expressed from almost all quarters in India. With a couple of civil and governmental committees which were setup for suggesting reforms in the electoral process during the recent past, it is generally believed that the concern towards electoral reforms are somewhat new in India. The topic of electoral reforms that has been taken up by numerous government committees in the recent past, including but not limited to:

- Dinesh Goswami Committee on Electoral Reforms (1990)
- Vohra Committee Report (1993)
- Indrajit Gupta Committee on State Funding of Elections (1998)
- Law Commission Report on Reform of the Electoral Laws (1999)
- National Commission to Review the Working of the Constitution (2001)
- Election Commission of India – Proposed Electoral Reforms (2004)
- The Second Administrative Reforms Commission (2008)

Among these the Dinesh Goswami Committee which was setup in 1990 and the Indrajit Gupta Committee set up in 1998 with the central issue of election funding. Kumar(2002,p.3489) shows that in addition, the Election Commission of India has also taken initiative towards suggesting reforms in the election system since the 1980 and in its publication Elections in India-Major Events and New Initiatives 1996-2000 suggested far reaching reforms in the electoral process. In 1996 Parliament enacted the Representation of the People (Amendment) Act, 1996. The Ministry of Law and Justice, Government of India, has constituted a Committee on Electoral Reforms. The Committee takes into account the

opinions of political leaders, Government servants, legal experts, NGOs, scholars, academics, journalists, and other stakeholders. Unfortunately the fact remains that the recommendations of these learned and painstakingly prepared reports are yet to be implemented.

But one should take note that the concern for electoral reforms has not become fashionable only during the recent past. Kumar (2002,p.3489) argues that it was as early as 1974 that Jayaprakash Narayan set up the Committee on Electoral Reforms under the Chairmanship of V.M.Tarkunde on behalf of the Citizens of Democracy, an independent organisation and the report was submitted in the year 1975. It is also popularly known as the Tarkunde Committee. In spite of so many committees and reports of the government, the concern on electoral reforms still continues mainly because, except for bringing some procedural changes in the electoral system, most of the suggestions of these committees and reports have not been implemented by the Government. The question of electoral reforms acquires importance in India at the present day due to the growing deterioration in electoral politics. Today most of the Indian citizens do not have faith in the way that our elected representatives are chosen and it seems to be a danger to the very idea of democracy itself. Widely held views among the public with regard to criminalization of politics, the use of money power in securing votes, the paid- news disease are some of the issues that are enlarging the trust deficit with regard to our electoral process. Some of the problems which deteriorate our electoral system are being discussed.

Issues in Electoral Politics of India

The election at present are not being hold in ideal conditions because of the enormous amount of money required to be spent and large muscle power needed for winning the elections. The major defects which come in the path of electoral system in India are: money power, muscle power, criminalisation of politics, poll violence, booth capturing, communalism, castism, non-serious and independent candidates etc.

Money Power: Electioneering is an expensive affair in every democratic polity which plays a more vital role in India. Money power plays in our electoral system destructive role affecting seriously the working of periodic elections, It leads to all round corruption and contributes mainly to the generation of black money economy which rules at present our country? A prospective candidate in each constituency has to spend millions of money towards transport, publicity and other essential items of election campaign. In recent years the election expenses have increased beyond any limits due to the desire on the part of every political party to spend more than their rivals in the fray. The elections were not as costly in 1952 as they have become today. Political leaders and workers considered it unethical to work with a desire for any

reward. But scenario now has changed. The elections in Indian polity are becoming increasingly expensive and the gap between the expenses incurred and legally permitted is increasing over the years. The observers are watching the system that requires unbelievably enormous expenditure collected through the dubious means by political parties and their candidates. The adoption of planning and of mixed economy with a large amount of control, regulation, licences, permits and quotas in free India provided enormous opportunities for political corruption and resulted in an unethical nexus between the electoral politics and the business sector of the country. This seems to be continued even today with more disastrous consequences of an overflow of black money into the corridors of political parties despite the liberalised economy induced to the political system of country. Elections in India so far from a common man, only those people can participate in elections as a candidate who has a lot of money, because today vote is not a mean of public opinion. It is being purchased.

Muscle Power: Violence, pre-election intimidation, post election , victimisation, most of the riggings of any type, booth capturing both silent and violent are mainly the products of muscle power. These are prevalent in many parts of the country like Bihar, Western Uttar Pradesh, Maharashtra etc. and this cancerous disease is slowly spreading to south like in Andhra Pradesh, Criminalisation of politics and politicalisation of criminals, freely indulged in now, are like two sides of the same coin and are mainly responsible for the manifestation of muscle power at elections. By using of violence, the criminals are able to achieve success at elections for their benefactors.

Misuse of Government Machinery: It is generally complained that the government in power at the time of election misuse official machinery to further the election prospects of its party candidates. The misuse of official machinery takes different forms, such as issue of advertisements at the cost of government and public exchequer highlighting their achievements, disbursements out of the discretionary funds at the disposal of the ministers, use of government vehicles for canvassing etc. The misuse of official machinery in the ways mentioned above gives an unfair advantage to the ruling party at the time of elections. This leads to misuse of public funds for furthering the prospects of candidates of a particular party.

Criminalisation of Politics: During the election period, newspapers are usually full of information about the number of criminals in the field sponsored by every party. The reason of the criminals behind entrance to politics is to gain influence and ensure that cases against them are dropped or not proceeded with. They are able to make it big in the political arena because of their financial clout. Political parties tap criminals for fund and in return provide them with political patronage and protection.6 Rough estimates suggest that in any state election 20 per cent of candidates are drawn from criminal backgrounds: Mafia dons and

other powerful gangsters have shown that they can convert their muscle power into votes often at gun point. Voters in many parts in the country are forced to vote for the local strongman. Tickets were given to the candidates with criminal records even by National Party. All these instances reported time and again show that democracy in India has largely failed to be what it was meant to be because the electoral system has been perverted. Our politics have been corrupted because the corrupt and criminals have to entered it, Criminalisation of politics has become an all-pervasive phenomenon. At one time politicians hired criminals to help them win elections by booth capturing. Today, those same criminals have begun entering parliament and the state legislature.

Non-Serious Candidates in Political Parties: In recent years there has been a steady increase in the number of candidates in elections. The number of candidates has swelled due to the participation of Independents. They contest elections light heartedly and lose their deposits. Non-serious candidates are largely floated by serious candidates either to cut sizeable portion of votes of rival candidates or to split the votes on caste lines or to have additional physical force at polling station and counting centers. The multiplicity of candidates causes inconvenience to election authorities in the management of elections. The voters are also handicapped in identifying the candidates of their own choice. This affects the sanctity of elections. This onslaught of non-seriousness has to be halted.

Challenges stemming from political volatility, a deadlock in parliament, and fragmented assemblies

There has been a great deal of political instability during the last decades. The result has been unstable administration and unstable policies, the hallmark of minority governments. The reasons are not far to seek. The Westminster Model adopted by us, works mainly on the basis of a limited number of political parties. In the United Kingdom, there are only two major political parties. Contrarily in India, politicisation at ground level coupled with a highly fragmented society, has given rise to a multiplicity of political parties. Each one of these exists not on a different ideology or economic programme, but on the basis of having nursed a narrow parochial, mostly caste or religion based, identity for itself and its band of followers. Even this support is usually earned not by doing some constructive work for the concerned group but negatively by bad-mouthing others and all the time pitting one group against the other. The resultant divided vote has made it increasingly difficult for single parties to get a workable majority to form a government at the centre. In order to cobble up a workable majority to form governments, compromises have had to be made and all ideology or notions of quality

of governance have disappeared from the scene. This has had a very negative repercussion on the quality of governance with several consequences. Corruption has flourished, law and order has suffered and control mechanisms have broken down or become very loose. The common citizen has been the victim of all resultant misgovernance This situation has generated its own debate and suggestions have been made to limit the number of political parties as well as independent candidates that are allowed to contest for national elections.

Castism : Although there is hardly any instance in India of a political party being totally identified with any particular caste group, yet there are cases of certain castes lending strong support to particular political parties. Thus while political parties struggle among themselves, to win different caste groups in their favour by making offers to them, caste groups too try to pressurize parties to choose its members for candidature in elections, If the caste group is dominant and the political party is an important one, this interaction is all the more prominent. In many political parties, in place of ideological polarization there occur the determination of policies and programmes as well as the nomination of electoral candidates and the extension of support to them on caste consideration. Caste dominates the political field, especially at the lower level. The emergence of regional parties and the withering away of national outlook and spirit thus sets off another crisis. Candidates come to be selected not in terms to accomplishments, ability and merit but on the appendages of caste, creed and community. Ultimately caste becomes the deciding factor on selection. Caste based politics and castism are eroding the unity principle in the name of regional autonomy.

Communalism: The emergence of India as a secular state, the politics of communalism and religious fundamentalism in the post independence period has led to a number of separate movements in various states and regions of the country. Communal polarization, rather multi-polarization, has posed a threat to the Indian political ethos of pluralism, parliamentarianism and federalism. Despite the adoption of the principle of Secularism as a constitutional creed, which ironically allows communal parties to compete, the trend towards communalism and fundamentalism in Indian politics have been growing day by day. The spirit of tolerance that is essential for a secular society seems to have completely vanished from the body politics of India. The dynamics of national and state politics of the last decade is a mute witness of the clashes and conflicts between the so-called. Secularist and the communalist. Although a comprehensive constitutional amendment Bill (8Oth Amendment Bill) and Representation of the People (Amendment) Bill 1993 were introduced to de-link polities from communalism, castism, and linguism etc. by the minority Government, these could not pass through the Parliament. Caste and religion have in recent years emerged "as rallying points to gain electoral"

support. Unfortunately there is a tendency to play upon caste and religious sentiments and field candidates in elections with an eagle eye on the caste equations and communal configurations.

Lack of Moral Values in Politics: There has been very sharp erosion in the ideological orientation of political parties. Party dynamics in India has led to the emergence of valueless politics much against the ideals of the father of the nation, Mahatma Gandhi, who suggested that the Congress party should be disbanded after the achievement of Independence and its members should engage themselves in the service of the people. While Gandhi taught us tremendous selflessness, self sacrifice and service, to the people, such inspirational values, the democratic norms and institutions have been destroyed systematically over the last years of the working of the Constitution. In the process, both the politicians and political parties have lost their credibility, the ultimate value that should bind them with the masses. There seems to be a crisis of character amongst the politicians, as the system does not encourage the honest leader. Because of the falling moral standards both in the public and among the leaders, criminalisation of politics and politicization of criminals has become the norm. Due to degeneration of leadership, parties have been entangled in power struggle for the sake of personal ends. In a moral pursuit of power polities, every major player seems to be playing a no holds barred game. The Gandhian value of the spirit of service to the nation has become completely extinct from the present day politics.The money and muscle powers are the basic evils that pollute and defile the process and motivate participants to resort to mal practices in elections. This leads to the decline of moral values in the arena of electoral politics. Radical measures- legislative administrative and reformatory are needed to stem the root that is eating vitiate of the democratic process. A game can be fair only if the players are honest and true to its spirit.

Suggestions

In order to put an end to all these ugly developments in the electoral process, the concept of electoral reform assumes special importance. This is essential to cleanse the political system. Electoral reforms seem to have come to occupy a prominent position in the national disclosure in recent times. Chhokar (2001,p.3977) argues that the president of India R.K. Narayanan, while inaugurating the Golden Jubilee Celebrations of the Election Commission of India, which was held in Vigyan Bhawan,New Delhi,on January 17,2001 referred in his speech that "serious malpractices (that) have crept into the election process." The President in his speech quoted the prophetic writings of Mahatma Gandhi in 1920s, "What if unworthy people get elected because we do not come forward? If such people enter the legislatures, the government

will not be able to run the government of an awakened people and it will be laughed at". In the light of the recommendations given by the various Committees and Commissions, the following suggestions may be put forwarded in respect of electoral reform in India.

Funding of elections and electoral reform- In the present day arena when the electoral reforms appear to be corroding the vitality of political parties and vitality of democracy it has been found that campaign expenditures play a significant role in election outcomes. Krishna (2012, p.129) says that the spending by candidates has a larger effect on the vote. If the laws relating to funding of elections intended to be effective with regard to their transparency, they should be general in nature and enforced with respect to everyone, and not just political parties or candidates, but also to the donors as well.

Electoral Rolls and Voter ID-The electoral process begins with the preparation of electoral rolls. If any attempt has been taken to reform the electoral process in our country one must at first tackle the question of faulty electoral rolls. The electoral rolls should be updated constantly and periodically it should be posted on the web site of the Election Commission. Prior to elections, these rolls should be printed and publicly displayed at the post offices in each constituency, as well as at the panchayats or relevant constituency Head Quarters.

Caste and Communal Hatred- The election campaigns which are crafted to create or exacerbate tensions between communities and/or to incite feelings of hatred on the basis of caste, community, religion, race or language attract disqualification at present but effective implementation of laws in this regard is lacking. This deserves the highest degree of attention. If any election is campaigned on the basis of caste or religion and if any attempt is made to spread caste and communal hatred in the society during elections should be punishable with mandatory imprisonment.

Reducing the Cost of Elections-There should be a systematic attempt under law to reduce election expenditure. Various modes of electioneering which creates public nuisance, namely, wall writings, campaign through loudspeakers, holding rallies on the roads and parks, creating traffic jams, etc. can be conveniently curbed by making necessary provisions under law or the rules framed under the parent legislation. Already there exists some legal provisions with regard to cost of elections but what is needed is better enforcement of the provisions so made.

Criminalisation of politics- The influence of muscle power in Indian politics has long been a fact of political life since the First General Elections of 1952. National Commission on review the working of the Constitution mentioned that according to the Central Bureau of Investigation (CBI) report to the Vohra Committee: "all over India, crime syndicates have become a law unto themselves. ..... Even in the smaller towns and rural areas, muscle men have

become the order of the day. Some political leaders become the leader of these gangs/armed senas and over the years get themselves elected to local bodies, State assemblies and national parliament."

Conclusion

The election was a vehicle of hope. When asked why elections mattered, people referred to waiting for a "transcendent utopia of equality'' that overwhelmed the inequality and injustice that surrounded them. This is an adequate reason for ensuring reforms that, as the 2010 Core Committee on Electoral Reforms noted, the election system was in "dire need'' of starting from selection of candidates to election funding. There are repercussions for neglect of the reforms on the quality of democracy itself. For instance, although criminalisation of the electoral process had many forms, the most alarming was "the significant number of elected representatives with criminal charges pending against them.'' Secondly, the impact of money power on elections might be evident in three ways. One, the candidates funded to contest elections might be motivated to earn back the expenditure when they were elected to power. Two, the winning candidates might have to take care of the interests of their "investors," by serving policy interests at the cost of others. Third, such candidates might have neither reason nor an understanding of what the citizens wanted. Elections which imply a chain of processes from filing of nominations to the declaration of results are the necessary concomitant of democracy. But free and fair elections provide the marrow to nurse a healthy democratic life and constitute the yardstick to measure its strength and vitality. The electoral administration saddled with the responsibility of conducting the election and must, therefore,be immune from any undue pressure either by the executive or the legislature. An independent election machinery should ensure that corrupt electoral practices should be kept to the minimum if not totally eliminated. It is quite common to put almost the entire blame for the current state of affairs on the so-called political class in the country. But what is overlooked is the fact that the political class does not exist in isolation; it emerges and evolves out of the society at large. Therefore the society in general, of which all of us are a part, cannot escape the responsibility for the existing state of affairs. Any serious thought over electoral reforms must be based on clear thinking, rational analysis and sensible goals. Opportunities will always knock the doors, and once the goals are clear, it becomes easier to design campaigns and activities to suit the requirements. A vibrant and informed civil society, media exposure and political will to enforce these reforms measures are the vital inputs. The lights of the passing ships might prove enticing

but it's the constant twinkle of the distant star that must navigate the course of political and electoral reforms. It is true that changing the electoral system is not going to be an easy task but it must be done if democracy has to be preserved and strengthened.

References

1. Jain,M.P. (2008).Indian Constitutional Law. Nagpur: Wadhwa and Company.
2. Chopra,J.K.(1984). Election Reforms in India since 1952.(Unpublished doctoral dissertation). Meerut University,Meerut.
3. Prakash,A (2010). Law relating to elections. New Delhi:Universal Law Publishing Co. Pvt. Ltd.
4. Chopra,J.K.(1984). Election Reforms in India since 1952.(Unpublished doctoral dissertation). Meerut University,Meerut.
5. NES 2014 Pre Poll, Lokniti.org, available at http://www.lokniti.org/nes-2014-pre-poll.php, last seen on 04/02/2017.
6. Ministry of Law and Justice, Government of India, Background Paper on Electoral Reforms, 2010, at 5.
7. Model Code of Conduct for the Guidance of Political Parties and Candidates, Election Commission of India, available at http://eci.nic.in/eci_main/MCC-ENGLISH_28022014.pdf, last seen on 04/02/2017.
8. People's Union for Civil Liberties& Anr. v. Union of India, Lok Satta & Anr. v. Union of India and ADR v. Union of India 2003 SC 490, 509, 515.
9. Ministry of Law and Justice, Government of India, Background Paper on Electoral Reforms, 2010, at 5.
10. Dr S.Y. Quraishi, personal interview, Gurgaon, Haryana,26/04/2016, 1.30pm-2.30 pm.
11. Recommendations of Goswami Committee Report (1990) had also considered recommendations of an earlier Tarkunde Committee Report (1973) that had addressed reforms of Indian electoral system and machinery.
12. Association for Democratic Reforms v. Union of India and Anr., AIR 2000 Delhi 126, 2000; (57) DRJ 82.
13. Paper, New Delhi, Nirwachan Sadan, 2001, p. 425.
14. Supra Note 2, p. 53.
15. Agarwalla. Shyam Sunder (1998). Religion and Caste Politics, Jaipur: Rawat, p. 118.
16. Prakash. Chandra (1999). Changing Dimensions of the Communal Politics in India, Delhi : Dominant Publishers; see
17. also, Singh, Mahindera Prasad, "Communalism and Party Politics in India", Trends in Social Science Research, 1(1),
18. January 1994, p.18.
19.. Bhanthhri, C. P. (1998). „Party without Ideolog," Hindustan Thnes, Chandigarh, March.
20. Election Commission of India, Proposed Electoral Reforms, New Delhi: Nirwachan Sadan, 2004.
21. Election Commission of India, Model Code of Conduct for the Guidance of Political Parties and Candidates.

Gender Equality and Empowerment of Women Through Sports

Mrs. Anuradha *(Assistant Professor)*
Arya Mahila PG College, Shahjahanpur, Uttar Pradesh

Abstract

This research paper emphasis on gender equality and empowerment of women through sports that how increasingly participation of women in sports overcome the gender inequality and empower women to achieve their goals. Sports has huge potential to empower women and girls. Sports empower women and girls around the world every day by breaking gender inequalities and stereotype in society. Women and girls have been breaking down these barriers for a long time throughout history and have come a long way. However, women's access to sports is expanding. With more resources and the fight for gender equality, sports bring empowerment to more and more women around the world every day. Participation in sports also enables women and girls to enjoy freedom of expression, movement and increase their self – esteem and self confidence. Women are taking an increasingly active role in sports and through sports they have improve leadership role and participation in decision making.

Sports have played an important role in gender equality and empowerment of women. An example of this can be seen in the Olympic Games 2020, in which the number of players participating in the female players was equal to the number of male players, which was zero compared to the men in the Olympic Games 1896. The growing popularity and influence of sports has led to success in gender equality and women's empowerment today.

Keywords: Gender Equality, Women Empowerment, Sports, Olympic, Leadership

Gender Equality in Sports

Sports is one of the most powerful platforms for promoting Gender Equality and Empowering women and girls. Gender Equality refers to the equal rights, responsibilities and opportunities of women and men, girls and boys. It implies that the interests, needs and

priorities of both women and men are taken into consideration, recognizing the diversity of different groups of women and men. Sports can be used as a tool to achieve gender equality. Women are improving at a faster rate than men. If this rate of improvement continuous at the current pace there will soon be a time when women will be overtaking men, at least in sports competitions. The support the implementation of Olympic Agenda 2020+5, the IOC has set gender equality and inclusion objectives for 2021-2024. These objectives build on many of the recommendations of the IOC gender equality review project with the goal of continuing the "Promotion of women in sports at all levels and in all structures" whilst ensuring an inclusive approach that accounts for diverse and intersectional identities of women and men.

The summer Olympic Games appear to be settings where females have reached near parity with men, sports is a valuable source of empowerment for girls and women. By limiting women's access to highly competitive sport opportunities, media coverage and leadership role, we are restricting their basic human rights. The number of female and male Olympic Games participants has steadily increased over the last century. Graph 1.1 represents the increasing number of female athletes in the Olympic Games.

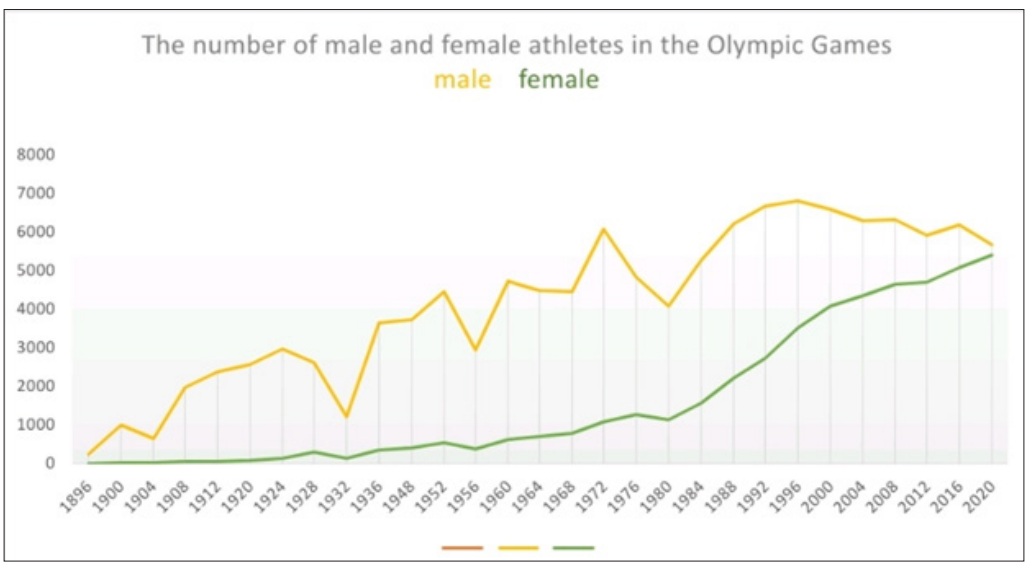

Graph – 1.1

- The Olympic Games have grown to be the largest gender equal sporting event in the world. The number of women competing at the Olympic Games has increased to a new record of 48 percent at Tokyo 2020

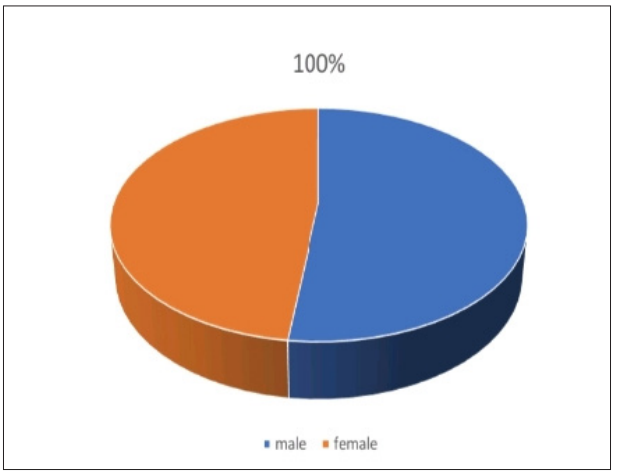

- The gap in the pay of different genders is not unusual, no matter how much it is protested against. However, in a first BCCI has announced that women Cricket players will also be paid the same as men cricketers. In a positive step towards gender equality BCCI has announced . The match fee for both men and women cricketers will be same as we move into a new era of gender equality in Indian cricket. Gender parity in the work force may result in males and females getting equal salaries, having an equal chance of being promoted and having the same leverage and power as any male employee.
- For the first time in the history of the FIFA Men's World Cup Qatar 2022 will be officiated by a woman referee. In fact, among the 36 referees for the tournament, there are three women – Yamashita Yoshimi, Salima Mukansanga and Stephanie Frappart. In addition, Neuza Back, Karen Diaz Medina and Kathryn Nesbitt also head to the World Cup as three of the 69 assistant referees.

These two recent posts in Cricket and Football present before us a great example of Gender Equality in sports.

Empowerment of Women in Sports

"Sport has huge potential to empower women and girls."

In many countries, it has been recognized that sport can be a force to amplify women's voices and tear down gender barriers and discrimination. Women in sport defy the misperception that they are weak or incapable. Every time they clear a hurdle or kick a ball, demonstrating not only physical strength, but also leadership and strategic thinking, they take a step towards gender equality.

There is good evidence that participation in sports can help break-down gender stereotypes, improve girls' and women's self-esteem and contribute to the development of leadership skills. Women are great achievers who play a major role in empowering society. Women in sports has tried to take free from the shackles of discrimination, Social deprivation and cultural biases to establish a promising career for themselves. Their hard work and passion in sports helped them attain respect and they are finally acknowledged And appreciated. There are several phenomenal women athletes that are admired and have inspired the young generation to step forward and live their dreams .women have fought their way out and are at present being credited For their outstanding performance different sports platforms. "Sports is the most effective tool of empowerment," quoted Soheil Tandon founder of (PSD), females increasing participation in the sports makes them more power to break down stereotypes and give them the voice they deserve. Despite the challenges many female athletes have made the country proud with the exceptional talent. Let's take a look at India's most influential sports women.

PT Usha

Also referred to as the "Queen of Indian track and field" PT Usha is a sporting legend and Indian female athlete. Despite coming from a low- income family, Usha's success story has inspired several women worldwide. She made her motherland proud by representing India in international Competitions including Olympics, Asian Games and other World Championships. Once she even broke her own track and field record. As a sportsperson, her achievements are etched in the hearts of every indian. Currently, PT Usha is a member of Board of Advisors of India's International Movement to the United Nations. (I.I.M.U.N.). PT Usha has been a role model and inspiration for lakhs of young girls across the country who have dreamt of taking up a career in sports especially track and field events.

Mary Kom

Six time world champion boxer Mary Kom not only established herself as a recognized National athlete but successfully become a female icon for women and young girls all over the world. She became the first women from India to feature for boxing in 2012 Olympic and had honour of carrying the tricolour after she shined in the games. She was the first women boxer to qualify for London Olympics and also to win a bronze medal in boxing for India. Mary Kom became an inspiration for women, when she broke the stereotype that married women especially mother cannot become successful "The epitome of women empowerment"

Athlete through her grit and determination. She has also awarded by many prestigious national awards. Besides her success on the global stage, she has also inspired budding women boxers to take up their sport irrespective of their social status and where they come from.

PV Sindhu

Pusarla Venkata Sindhu is an Indian badminton player. Considered one of India's most successful sportsperson, Sindhu has won medals at various tournaments such as the Olympic and on the BWF circuit including a gold at the 2019 world championship. She is the first and only Indian to become the world badminton champion and only the second individual athlete from India to win two consecutive medals at the Olympic Games. She rose to a career high world ranking. World badminton champion PV Sindhu is playing a big role in redefining India's perception of women. Sindhu's success story is one founded on self – belief and perseverance and with it, she has become a role model for Indian women.

Mithali Raj

Mithali Raj is an Indian cricket player and the test and ODI captain of the women's national cricket team. She is the right handed opening batsman and the highest run scorer in women's international cricket and the only female cricketer to surpass the 7000 run mark in women's one day international matches. Mithali is the first player to score seven consecutive 50s in ODI. She is the recipient of several national and international awards including the wisden leading women cricketer in the world in 2017. She is one of the most renowned women players worldwide. Mithali will always be remembered as a top female sports icon.

Sania Mirza

Sania is a professional and one of the greatest tennis player. She was ranked no.1 in the world for 91 week straight in the women's doubles category and she is the biggest sporting icon in the nation. She is the first and the only female tennis player from India to win six major title. Mirza is one of the two indian female tennis players to win a WTA title and the only to reach the top 100 singles ranking. She has inspired many women to display their talent and pursue their dreams.

Conclusion

In conclusion, this paper indicates that gender equality and women empowerment through sports has proved to be meaningful to a great extent.

References

1. Women 2000 and beyond. The Division for the Advancement of women of the United Nations Secretariat,(dec.2007)
2. Empowering Girls Through Sports. http://guides.womenwin.org/ig/about/empowering-girls-through-sport
3. G. Mekenzie,(2021); How Sports Empower Women and Girls. https://www.stack.com/a/how-sports-empower-women-and-girls/
4. Inspiring Indian Sports Women Who Are An Inspiration. https://girls.buzz/blogs/10-inspiring-indian-sports-women-who-are-an-inspiration-to-millions/
5. Mary Kom: The Epitome of Women Empowerment. (sep.2021) https://www.potsandpans.in/blogs/articles/mary-kom-the-epitome-of-women-empowerment
6. https://olympics.com/ioc/gender-equality
7. https://www.unwomen.org/en/news/stories/2016/2/lakshmi-puri-speech-at-value-of-hosting-mega-sport-event
8. https://www.kreedon.com/women-in-sports-in-india-stories-of-struggle-and-inspiration/?amp

An Appraisal of Crime of Acid Attack in India

Prof. (Dr) Shiti Kanth Dubey
Law Faculty, Agra College, Agra

Women have been given a position of pride in every religion. Under Christianity and Hinduism, they are respected and due importance is given to their rights and privilege. Women enjoyed position of high esteem in the Rigvedic period. No function of significance could be completed without their participation[1]. In the Quran, a complete surah has been devoted to the welfare, rights, and duties of women[2]. It has been rightly pointed out that women have been and will always be what men make them. However, philosophical student of comparative religion may fail to observe that at the foundation of every spiritual faith stands a woman, whose sympathy blesses the work of infusing new life into humanity[3].

In spite of all these, crimes against women are still on increasing trend not only in urban, but also in rural areas. According to Oxford dictionary, "crime is an action or omission, which constitutes an offence and is punishable by law". Legal glossary published by Govt of India defines the crime as an offense. Section 40 of Indian Penal Code, 1860 also defines the term offence[4].

Women may be victims of all kinds of crime, be it cheating, murder, robbery etc. Crime against women may be considered as an offence against women done by other person causing physical, mental or the other types of tortures[5] including threatening etc., which may be direct or indirect.

Now, most heinous crime against women is acid attack. Acid attack has devastating health consequences for victims. Short term effects include immense pain and long-term effects can include blindness and loss of facial features. Thus, acid violence is considered to be deliberate use of acid to attack another human being. Acid violence is a worldwide menace and a global issue. In the 18th century, sulphuric acid was first time manufactured in England on industrial scale and in the year 1740, people started using it for violent attacks in Western Europe, particularly in USA, during labor unrests and domestic disputes[6]. In long term effects of acid attack may also include mental as well as emotional shock and stigma.

However, by middle of 20th century, violence through acid attacks scaled down in the USA and in the Western Europe due to stringent laws and women empowerment but it gained momentum in the other parts of the world. During last decade of the 20th century and in early 21st century, this type of violence spread in other parts of the world, specially in south Asia. Since 1960, acid violence has increased in South Asia, South East Asia, Sub-Saharan Africa, West Indies and Middle East[7].

Acid violence involves intentional acts of violence in which perpetrators throw, spray or pour acid on to victim's face and body. Acid violence is a gender-based violence that reflects and perpetuates the inequality of women in society and is also prohibited under international law. Acid violence is not restricted to a particular race, religion, or any geographical location. Such attacks occur almost around the world. Although, no authentic information about exact numbers of incidence of acid violence is available, it is however, reported that more than 1500 cases of acid violence are recorded around the world every year. While women and girls are victims in about 80% of acid violence cases, about 30% of them are under age of 18 years.

In most of the countries, particularly under developed and developing countries, easy and unrestrained availability of acid, used in manufacturing and processing of cotton and rubber, considered to be a leading cause of acid violence. Meanwhile, in many countries, prevailing weak laws, political corruption coupled with insensitivity on the part of administration; socio-economic and cultural disparities; gender-based inequalities and coarseness against women are major factors contributing to the increasing incidence of acid attack in many countries, especially in South Asia.

India has ratified the Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women (CEDAW). Gender based violence is the violence that is directed against a woman because she is a woman and such type of disproportionate discrimination is prohibited by CEDAW. Gender based violence reflects and perpetuates gender inequality and discrimination. Although, it is also reprehensible when acid violence occurs against men and boys. However, as observed in the society, acid attacks are more common in women. Acid violence is gender-based violence because it impacts women disproportionately. Indeed, a significant portion of attacks in India occur when a woman exercises decision making power by rejecting a suitor's marriage or love proposal. Therefore, acid attackers aim for a women's face in an attempt to destroy what many members of society consider to be one of her most important assets, her beauty.

Law relating to acid attack in India

Although, the Indian Government initially rejected the need for any legislation to address acid violence, a government appointed expert committee recently stated that it would propose amendments to the Indian Penal Code, 1860 to allow for higher prison terms and majority fines against acid attackers. The Indian Penal Code had made amendments regarding this of late. The Government has also regulations to limit the easy availability of acid for the purpose of preventing acid attacks.

The rights of women have the originating source in the Constitution of India, for all Indian laws have emerged from constitution. The Constitution of India guarantees equality of status and opportunity to men and women. The Fundamental Rights are enshrined in Part III of the Constitution of India. It must be borne in mind that when the Fundamental Rights are infringed, the natural basic human rights inherent in human beings are violated.

Acid attack results in violation of Fundamental Rights of "Gender Equality" and "Right to Life and Liberty". It is a clear violation of the rights under Articles 14, 15 and 21 of the constitution8. These are the relevant Articles of the Constitution of India, which bestow legal rights upon women. Article 51(e) of the Constitution of India enumerates the Fundamental Duties to promote harmony and spirit of common brotherhood amongst all people of India transcending religious, linguistic, and regional or sectional diversities and to renounce practices derogatory to the dignity of women, its true realization in spirit is much awaited.

In India, often incidences of acid attack capture the headlines of Indian media. Unfortunately, in India, there was no separate legislation to deal with acid attacks before passing the Criminal Law (Amendment) Act, 2013. The offence was registered under Sections 320, 322, 325, 326 and 307 of Indian Penal Code, 1860. But it is seen that these Sections do not fulfill the profundity that is required for the earnestness of these offences. Moreover, the term "Acid Attack" was not defined anywhere, and the provisions also restrict them to acerbic substances.

Sections 326A and 326B were inserted after Section 326 with the passing of Act 13 of 2013, i.e., the Criminal Law (Amendment) Act, 2013.

According to Section 326A, "whoever causes permanent or partial damage or deformity to, or burns, or maims, or disfigures, or disables, any part or parts of the body of a person or causes grievous hurt by throwing acid on or by administering acid to that person, or by using any other means with the intention of causing, or with the knowledge that he is likely to cause such injury or hurt, shall be punished with imprisonment of either description for a term which shall not be less than 10 years but which may extend to imprisonment for life, and with fine;

Provided that such fine shall be just and reasonable to meet the medical expenses of the treatment of the victim;

Provided further that any fine imposed under this section shall be paid to the victim".

In the furtherance of this, Section 326B of the IPC, 1860, says that "whoever throws or attempts to throw acid on any person or attempts to administer acid to any person, or attempts to use any other means, with the intention of causing permanent or partial damage, or deformity, or burns, or maiming, or disfigurement, or disability, or grievous hurt to that person shall be punished with imprisonment of either description for a term which shall not be less than 5 years but which may extend to 7 years, and shall also be liable to fine. In this connection, the Indian Penal Code, 1860, by virtue of Criminal Law (Amendment) Act, 2013 under the explanation 1 of Section 326B has defined acid to include, any substance which has acidic or corrosive character of burning nature, capable of causing bodily injury leading to scars, or disfigurement, or temporary or permanent disability.

The basic difference between Sections 326A and 326B of IPC is "the presence of actual injury under Section 326A". The resultant injury has made the offence more serious with a mandatory minimum punishment of 10 years which may extend to imprisonment for life and, in either case, with a fine.

In this continuation, Section 357 of Cr.P.C. deals with order to pay compensation. The function of a criminal court is to punish the offender while that of a Civil Court is to make the wrong doer compensate for the loss or injury caused to the aggrieved party. However, if these two procedures can be combined without affecting the criminal and civil process, it would be just and expedient to do so as it would save time and money in seeking remedies in two different Courts. This section incorporates the idea to an extent and empowers the Court to grant compensation to the victim and to order the payment of costs on the prosecution.

Under Section 357, compensation can be awarded irrespective of whether the offence is punishable with fine and fine is actually imposed; but such compensation can be ordered only if the accused is convicted and sentenced. The compensation should be payable for any loss or injury whether physical or pecuniary, and the Court shall have due regard to the nature of the injury, the manner of inflicting the same, the capacity of accused to pay and other relevant factors.

Section 357C deals with the role of hospitals in acid attack and other offences. This Section says that, "All hospitals, public or private, whether run by the Central Government or State Government, local bodies, or any other person, shall immediately provide the first aid

or medical treatment, free of cost to victims of any offence covered under Sections 326A, 376, 376A, 376B, 376C, 376D or Section 376E of IPC, and shall immediately inform the police of such incident.

Thus, one thing is very clear that mens rea is easily proved in acid attack, which is sometimes difficult to prove in murder also.

The Prevention of Acid Attacks and Rehabilitation of Acid Attacks Victims Bill, 20179 was enacted by Parliament to provide for prevention of acid attacks by regulation of sale, supply, and use of acid or other measures and rehabilitation of women victims of acid attacks and matters connected therewith or incidental thereto.

As we know, acid attack, a crime, being committed against any man or woman, has a specific gender dimension in India. Mostly the crimes of acid attack have been committed on women, particularly young women for rejecting proposals that may be legal or illegal demands. The attacker cannot bear the fact that he has been rejected and seeks to destroy the body of the woman who has dared to stand up to him. It is not surprising that the incidence of acid attack is deeper in patriarchal conservative society.

In order to facilitate rehabilitation of acid attack victims and to prevent unregulated sale of acid, the Bill proposes to make the following provisions:

(i) To provide for classification of acid on the basis of its intensity and concentration and to prevent sale of acid of higher concentration for day-to-day purposes;

(ii) To provide that acid shall not be sold without verifying identity of the buyer and the purpose of its use;

(iii) To provide that proper records of stock, sales, etc. of acid shall be maintained by dealers;

(iv) To make unregulated sale of acid an offence punishable with 6 months imprisonment and fine;

(v) To provide that acid attack victims shall be treated as persons with disabilities for the purposes of availing benefits under various schemes of the governments, including employment under the central government, state governments or bodies thereunder;

(vi) To increase the maximum quantum of punishment for acid attack under Section 326B of the Indian Penal Code to imprisonment for 10 years;

(vii) To stipulate the minimum amount of compensation for acid attack victims as ten lakh in cases of grievous hurt and 3 lakh in other cases or such higher amount as may be specified;

(viii) To provide monthly allowance to certain victims of acid attacks; and

(ix) To provide that any reconstructive cosmetic surgeries shall be treated as medical treatment in case of acid attack victims.

Section 2(a) of Bill defines the term "acid" as any substance which has acidic or corrosive character or burning nature, that is capable of causing bodily injury leading to scars or disfigurement or temporary or permanent disability. Section 2(b) says that "acid attack victim" means a woman on whom acid has been poured or sprinkled with the intention of causing bodily injury or disfigurement and who, as a consequence of such act, has suffered any bodily injury or disfigurement effected by chemical action of the acid. Section 3 and 4 are related with the regulation of sale, supply and use of acid. Section 5 and 6 are related with rehabilitation of acid attack victims. Section 7 of the Bill is related to offences and penalties. Section 7 runs as, "any person who contravenes the provisions of section 3 or Section 4 shall be punishable with simple imprisonment which may extend to 6 months or with fine extending to 5 lakh rupees of with both. Section 8 says that "in the Indian Penal Code, 1860 (hereinafter referred to as the Code) in the Section 326A for words "and with fine", the words "and with fine which shall not be less than 10 lakh rupees" should be substituted. According to Section 9 of the Bill, "in the Code, in the Section 326B, for words "7 years and shall also be liable to fine" the words "10 years and shall also be liable to fine which shall not be less than 3 lakh rupees" shall be substituted.

Judicial pronouncements

In the year 1998, in Gulab Sahib Lal Sheikh v the state of Maharashtra10 case, acid was thrown on a woman who finally died due to burn injuries. In this case accused was sentenced by the Court under Section 302 of IPC, to undergo imprisonment for life and pay a fine of rupees one thousand and also sentenced to rigorous imprisonment for a month. Under Section 326 of the IPC, he was awarded 5 years of imprisonment apart from a fine of rupees 2 thousand and 3 months of rigorous imprisonment.

One of the famous cases of this heinous crime is Laxmi v Union of India11. It was her petition which led the Supreme Court to give a remarkable decision regarding regulations on the sale of acid. The Supreme Court also laid down some important guide lines, which are as follows:

1. Counter sale of acid is absolutely prohibited, until and unless the vendor maintains a record that contains the name of the purchaser.
2. No acid should be sold to a person who is below 18 years of age. A proper ID card should be shown by the consumer at the time of acquiring the acid.

3. All stocks of acid should be confirmed by the vendor with the concerned Sub-Divisional Magistrate (SDM) within a time of 15 days. If it is not affirmed, then the goods will be sequestered by the SDM and the fine of Rs 50000/- will be obtruded on him.

4. The acid victim should be specified a compensation of at least 3 lakhs from the concerned State/ Central Govt as the aftercare and rehabilitation cost. Of this amount, a sum of Rs one lakh shall be paid to the victim within 15 days of the phenomenon of such incident to facilitate instant medical consultation and the rest 2 lakhs must be given within 2 months as early as possible.

But unfortunately, it is observed that the directions given by Honorable Supreme Court in the above case, the minimum compensation of Rs 3 lakh per acid attack victim has not been fixed in some of the States/Union Territories.

In Sabana Khatun v State of West Bengal and others12, the victim in the present case suffered serious injuries due to the pouring of acid in her mouth by the accused. The victim filed a writ petition in the High Court as the compensation was denied to her by the Chief Secretary of West Bengal. The plea taken by the State Govt was that the compensation can only be awarded to the victim on the recommendation of the State Legal Service Authority, was denied by the Court, and it was ordered that compensation amounting to Rs 0.3 million be awarded to the victim and her family.

In Suresh Kumar @ Appu v State13, it was a case pertaining to the rejection of a marriage proposal by a woman who was software engineer. The accused known to the victim was a construction worker and wanted to marry the woman. The proposal was rejected by her as well as her father. The complaint was also made by them to the police and the accused was reprimanded. After some time, he threw acid on the deceased due to which she became blind from one eye. Later, she died due to infection. The Session Court held the accused guilty and imprisoned him for life under Section 302 in addition to 2 years imprisonment under Section 326, IPC, 1860 and a fine of Rs 0.1 million was also ordered. In criminal appeal, Madras High Court increased the amount of compensation to 3 lakh to be awarded by Union Territory of Puducherry State Legal Services Authority under the Union Territory of Puducherry Victim Assistance Scheme.

In the Parivartan Kendra and another v Union of India14 case, following the judgement of the Laxmi case of the concerned State Bihar, the Supreme Court granted compensation of RS 10 lakh to the victim Chanchal and Rs 3 lakh to victim's sister Sonam. In Raja v State of Haryana15, the Court also followed Laxmi's case and awarded compensation to the victim.

In Mahesha v State by Male Bennur Police Devanagere16 case, Karnataka High Court held that victim is permitted to approach the District Legal Services Authority, Devanagere

by filing an application seeking adequate compensation. If such an application is filed, the District Legal Services Authority taking into consideration the young age of the victim, who was a teacher and that she has suffered corrosive injuries in the unfortunate incident and has spent large sums of money for plastic surgery, shall arrive at the appropriate quantum of compensation and make suitable recommendations.

To conclude, acid attacks are the most pernicious form of violence that is reported to, and is mostly gender specific. While acid attacks are reported in many parts of the world, the incidents of acid attacks in India have been on the rise. Although, commencement of law reforms in the acid attacks legislation is a positive sign, yet there is a long way to go to effectively implement these provisions. Though, it is admitted that once the new legislation is enacted, it takes time to settle and is subsequently evolved by the dynamism of judiciary, some of the shortcomings faced prima facie need to be addressed. The current acid attack provisions and judicial approach to the quantum of damages are very restricted in view of nature and the gravity of the offences.

Feminist research and women's activism of the past three decades have shuttered the common understanding that violence against women is a natural aspect of gender relations and of no concern to law and public scrutiny. In many countries, women are victims of acid attacks when they allegedly or actually transgress hegemonic gender norms and roles that discriminate against women and keep them in subordinate positions. Hence, acid attack violence is a form of gender-based violence and discrimination prohibited under international law including the "Women's Bill of Rights", i.e., CEDAW.

To eradicate acid violence, governments must address its root causes; gender inequality and discrimination, the availability of acid, and the impunity of perpetrators. In furtherance of their duty to exercise due diligence to prevent acid violence, governments should enact criminal laws that specifically address acid violence and effectively regulate the production, sale, distribution, use and handling of acid. Government should also effectively enforce and supplement laws designed to deter acid violence and provide victim redress, including compensation for health care costs. Public awareness is also required so that the people become aware of their rights and the appropriate legal procedures.

Refeences

1. Chhabra, K.S. (1982), "Women and the law", Law Journal of the Gurunanak Dev University, Vol. 10, No. 1, p. 11.

2. The Quran, Surah Nissa, IV.

3. Ali, S.A. (1978), "Islamia History and Culture", p. 52.

4. Section 40 of I.P.C., "Except the Chapters and Sections mentioned in clauses 2 and 3 of this section, the word, "offence" denotes a thing made punishable by this Code.

5. Ahuja, Ram (1998), "Crime against women", Criminology, Rawat Publications, Jaipur, p. 215.

6. Acid attack on women: "Repercussions and need for law", ISSN 2331-4171.

7. Ibid.

8. Vishakha and Others v State of Rajasthan, AIR 1997 SC 3011.

9. Bill No. XXVI of 2017.

10. 1998 Bom CR (Cri.).

11. (2015) 5 SCALE 77; (2014) 4 SCC 427.

12. W.P. No. 34704 (w) of 2013 Culcutta High Court (Appellate side).

13. Criminal Appeal No. 362 of 2014, Madras High Court.

14. Writ Petition (Civil) No. 867, 2013 decided on 7th Dec., 2015.

15. CRA-D-484-DB of 2017, decided on 28 May 2019.

16. Criminal Appeal No. 512/2016 (C), decided by the Hogh Court of Karnataka at Bengaluru on 22 July 2021.

Effects of Cypermethrin Induced Toxicity on Environment and Human Health

Jayanti jha
Department of Zoology
Tilka Manjhi Bhagalpur university, Bhagalpur, Bihar

Abstract

Despite considerable concern regarding the wide use of Cypermethrin for agricultural, insecticidal and veterinary, convincing evidence of Cypermethrin toxicity in human is perceived. Cypermethrin is a synthetic parathyroid, catastrophic in nature and no antidote for its poisoning is available till date. The exposure of Cypermethrin targets sodium channel along with magnesium and Apse in human body. Cypermethrin besides of neurotoxin effects also has hepatoxic effects that induce microtonal enzymes in liver. Animals tend to have higher tolerance to Cypermethrin than humans but; in direct contact or oral exposure, it is equally toxic in nature. In this study we reviewed the current state of knowledge on Cypermethrin toxicity and its impact on behavior, molecular level and reproductive system in human and animals

Keywords: Cypermethrin; Toxicity; Neurotoxicity; Molecular Channels; Reproductive Toxicity

Introduction

A pesticide is any substance used to kill, repel, or control certain forms of plant or animal life that are considered to be pests. Pesticides include herbicides for destroying weeds and other unwanted vegetation, insecticides for controlling a wide variety of insects, fungicides used to prevent the growth of molds and mildew, disinfectants for preventing the spread of bacteria, and compounds used to control mice and rats. Because of the widespread use of agricultural chemicals in food production, people are exposed to low levels of pesticide residues through their diets. Scientists do not yet have a clear understanding of the health effects of these pesticide residues. The Agriculture heath study an ongoing study of pesticide exposures in farm families,

also posts results online. Other evidence suggests that children are particularly susceptible to adverse effects from exposure to pesticides, including neurodevelopmental effects. People may also be exposed to pesticides used in a variety of settings including home, schools, hospitals and workplaces

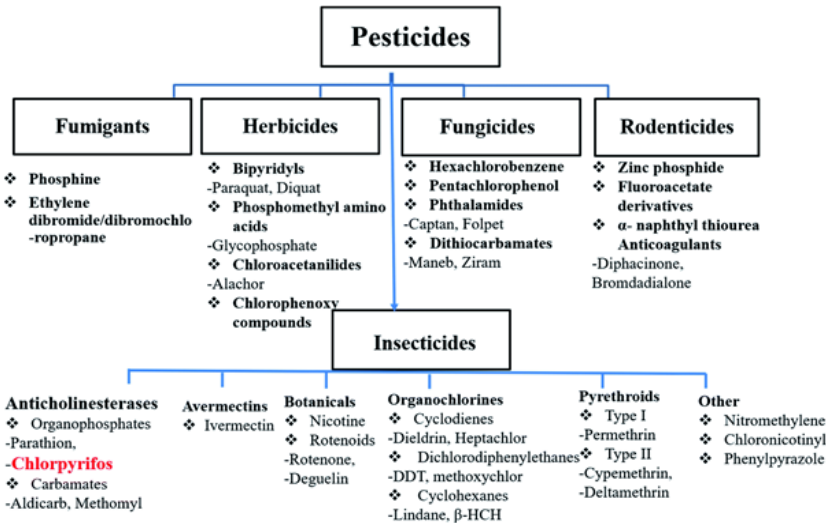

Figure – Classification of Pesticides, Nandani A et al, Royal society of Chemistry, 2021

Cypermethrin was initially synthesized in 1974 and first marketed in 1977 as a highly active synthetic pyrethroid insecticide, effective against a wide range of pests in agriculture, public health, and animal husbandry. In agriculture, its main use is against foliage pests and certain surface soil pests, such as cutworms, but because of its rapid breakdown in soil, it is not recommended for use against soil-borne pests below the surface. In 1980, 92.5% of all the cypermethrin produced in the world was used on cotton; in 1982, world production was 340 tonnes of the active material. It is mainly used in the form of an emulsifiable concentrate, but ultra low volume concentrates, wettable powders, and combined formulations with other pesticides are also available. Chemically, cypermethrin is the alpha-cyano-3-phenoxybenzyl ester of the dichloro analogue of chrysanthemic acid, 2,2-dimethyl-3-(2,2-dichlorovinyl) cyclopropanecarboxylic acid. The molecule embodies three chiral centres, two in the cyclopropane ring and one on the alpha cyano carbon. These isomers are commonly grouped into four cis- and four trans-isomers, the cis-group being the more powerful insecticide. The rati~f cis- to trans-isomers varies from 50:50 to 40:60. Cypermethrin is theruemic mixture of all eight isomers and, in this appraisal, cypermethrin refers exclusively to the racemic mixture (ratio 50:50) unless otherwise stated. Most technical grades of cypermethrin contain more than

90% of the active material. The material varies in physical form from a brown-yellow viscous liquid to a semi-solid. Cypermethrin has a very low vapour pressure and solubility in water, but it is highly soluble in a wide range of organic solvents. Analytical methods are available for the determination of cypermethrin in commercially available preparations. In addition, methods for the determination of residues of cypermethrin in foods and in the environment are well established. In most substrates, the practical limit of determination is 0.01 mg/kg.

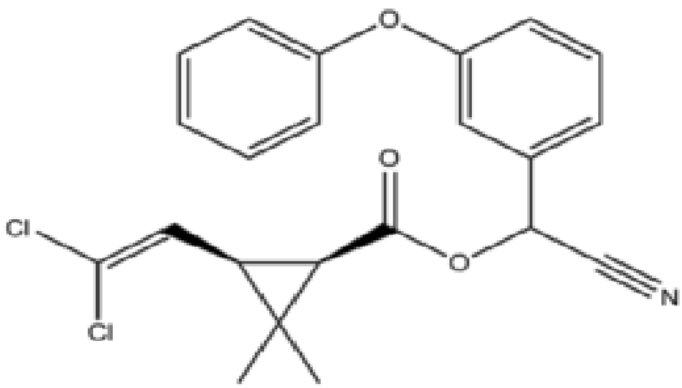

Figure – Chemical structure of cypermethrin, https://www.researchgate.net/figure/Chemical-structure-of-Cypermethrin_fig1_271737468

Environmental Levels and Human Exposure

Cypermethrin is used in a wide range of crops. In general, the maximum residue limits are low, ranging from 0.05 to 2.0 mg/kg in the different food commodities. The residues will be further reduced during food processing. In food of animal origin, residues may range between 0.01 and 0.2 mg/kg product. Residues in non-food commodities are generally higher, ranging up to 20 mg/kg product. Total dietary intake values for man are not available, but it can be expected that the oral exposure of the general population is low to negligible. Kinetics and Metabolism Absorption of cypermethrin from the gastrointestinal tract and its elimination are quite rapid.

The major metabolic reaction is cleavage of the ester bond. Elimination of the cyclopropane moiety in the rat, over a 7-day period, ranged from 40 to 60% in the urine and from 30 to 50% in the faeces; elimination of the phenoxybenzyl moiety was about 30% in the urine and 55 to 60% in the faeces. Biliary excretion is a minor route of elimination for the cyclopropane moiety and small amounts are exhaled as carbon dioxide. In principle, these absorption and elimination

rates and metabolic pathways hold for all animal species studied, including domestic animals. In cows fed 100 mg cypermethrin/day, the highest level found in milk was 0.03 mg/litre; levels of up to 0.1 mg/kg tissue were found in subcutaneous fat. Under practical conditions, the oral intake of cypermethrin with feed will be much lower.

Cypermethrin used as a spray or dip to combat parasites, may give rise to maximum residues of 0.05 mg/kg tissue and 0.01 mg/litre milk. Laying hens exposed orally to 10 mg cypermethrin/kg diet for 2 weeks, showed cypermethrin levels of up to 0.1 mg/kg in the fat, and up to 0.09 mg/kg in the eggs (predominantly in the yolk). Consistent with the lipophilic nature of cypermethrin, the highest mean tissue concentrations are found in body fat, skin, liver, kidneys,, adrenals, and ovaries. Only negligible concentrations are found in the brain. The half-life of cis-cypermethrin in the fat of the rat ranges from 12 to 19 days and that of the trans-isomer, from 3 to 4 days. In mice, these half-lives are 13 days and 1 day, respectively. Overall, the metabolic transformation has been similar in the different animals studied, including man. Differences that occur have been related to the rate of formation rather than to the nature of the metabolites formed and to conjugation reactions.

Cypermethrin (both the cis- and transisomers) is metabolized via the cleavage of the-;ster bond to phenoxybenzoic acid and cyclopropane carbolic acid. The fact that thiocyanate has been identified in in vivo studies, indicates that the cyanide moiety is further metabolized. The 3-phenoxybenzoic acid is mainly excreted as a conjugate. The type of conjugate differs in a number of animal species. Phenoxybenzoic acid is further metabolized to a hydroxy derivative and conjugated with glucuronic acid or sulfate.

Extensive studies have been carried out to explain the mechanism of toxicity of cypermethrin, especially with regard to the effects on the nervous system. The results strongly suggest that the primary target site of cypermethrin (and of pyrethroid insecticides in general) in the vertebrate nervous system is the sodium channel in the nerve membrane. The a-cyano pyrethroids, such as cypermethrin, cause a longlasting prolongation of the normally transient increase in sodium permeability of the nerve membrane during excitation, resulting in long-lasting trains of repetitive impulses in sense organs and a frequency-dependent depression of the nerve impulse in nerve fibres. Since the mechanisms responsible for nerve impulse generation and conduction are basically the same throughout the entire nervous system, pyrethroids may well act in a similar way in various parts of the central nervous system. It is suggested that the facial skin sensations that may be experienced by people handling cypermethrin are brought about by repetitive firing of sensory nerve terminals in the skin, and may be considered as an early warning signal that exposure has occurred

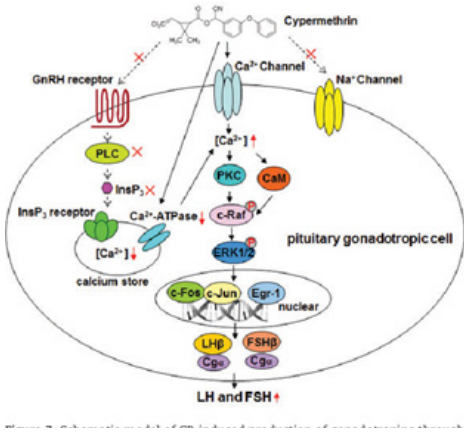

Figure – Mechanism of cypermethrin induced toxicity

Pesticide Toxicity And Exposure

Hazard, or risk, of using pesticides is the potential for injury, or the degree of danger involved in using a pesticide under a given set of conditions. Hazard depends on the toxicity of the pesticide and the amount of exposure to the pesticide and is often illustrated with the following equation:

Hazard = Toxicity x Exposure

The toxicity of a pesticide is a measure of its capacity or ability to cause injury or illness. The toxicity of a particular pesticide is determined by subjecting test animals to varying dosages of the active ingredient (a.i.) and each of its formulated products. The active ingredient is the chemical component in the pesticide product that controls the pest. By understanding the difference in toxicity levels of pesticides, a user can minimize the potential hazard by selecting the pesticide with the lowest toxicity that will control the pest.

Applicators may have little or no control over the availability of low-toxicity products or the toxicity of specific formulated products. However, applicators can minimize or nearly eliminate exposure--and thus reduce hazard--by following the label instructions, using personal protective clothing and equipment (PPE), and handling the pesticide properly. For example, more than 95 percent of all pesticide exposures come from dermal exposure, primarily to the hands and forearms. By wearing a pair of unlined, chemical-resistant gloves, this type of

exposure can be nearly eliminated.

manufactures.

Cholinesterase Testing

Those who regularly work with organophosphates and carbamates should consider having periodic cholinesterase tests. The blood cholinesterase test measures the effect of exposure to organophosphate and carbamate insecticides. Since cholinesterase levels can vary considerably among individuals, a "baseline" must be established for each person. In fact, a small percentage of the population has a genetically determined low level of cholinesterase. Even minimal exposure to cholinesterase inhibitors can present a substantial risk to these people. Baseline testing should always be done during the time of year when pesticides are not being used, or at least 30 days from the most recent exposure. Establishing a baseline value often requires two tests performed at least 72 hours apart but within 14 days of each other. If the test results differ by as much as 20 percent, a third test is often recommended.

Cholinesterase tests can be repeated during times when organophosphate and carbamate insecticides are being used and then compared with the baseline level. The purpose of routine cholinesterase monitoring is to enable a physician to recognize the occurrence of excessive exposure to organophosphates and carbamates. If a laboratory test shows a cholinesterase drop of 30 percent below the established baseline, the worker should be retested immediately. If a second test confirms the drop in cholinesterase, the pesticide handler or agricultural worker should be removed from further contact with organophosphate and carbamate insecticides until cholinesterase levels return to the preexposure baseline range. Your primary care physician can help to establish the frequency of this testing program.

Exposure and Preventative Measures

As mentioned earlier, the hazard or risk involved with using a pesticide depends on both the toxicity of the product and the amount of exposure to the product (Hazard = Toxicity x Exposure). Ideally, use a low-toxicity product when possible, but even they can be harmful if your exposure level is high. However, regardless of the product's toxicity, if the exposure level is low, then the hazard will also be low. To reduce the possibility of exposure and to protect your health, always wear the personal protective equipment (PPE) as indicated on the product label. The following are general PPE guidelines to protect against the four routes of entry.

Dermal

More than 95 percent of all exposures are dermal. Dermal absorption may occur as the result of a splash, spill, or drift or when cleaning or repairing equipment. Wear unlined, chemical-resistant gloves to eliminate most dermal exposures. Minimum dermal protection for most pesticides consists of a long-sleeved shirt, long trousers, gloves, and proper footwear. For extra precaution, consider wearing coveralls, a waterproof hat, and unlined rubber boots. Additionally, wearing a liquid- proof apron or rain suit is recommended when mixing and pouring concentrates or when using highly toxic products.

Inhalation

For many toxic chemicals, the respiratory (breathing) system is the quickest and most direct route of entry into the circulatory system. Respiratory protection is especially important when pesticide powders, dusts, gases, vapors, or small spray droplets can be inhaled.

Use the respirator as designed for its intended use, and always follow the manufacturer's instructions. Select only equipment approved by the National Institute of Occupational Safety and Health (NIOSH) and the Mine Safety and Health Administration (MSHA).

Oral

Accidental oral exposure most frequently occurs when pesticides have been taken from the original container and put into an unlabeled bottle or food container. Unfortunately, children are the most common victims in these situations. Store pesticides only in their original containers, and keep the original label attached to the container. Store pesticides only in their original containers and keep the original label attached to the container. Store in a locked cabinet and/or on a high shelf to keep out of the reach of children. Never use your mouth to clear a spray line or to siphon a pesticide from a tank or container. After handling or working with pesticides, wash your hands and face thoroughly with soap and water before eating, drinking, or smoking.

Eyes

Eyes are very sensitive to many pesticides and, considering their size, are able to absorb large amounts of chemical. Serious eye exposure can result from a splash, spill, or drift or by

rubbing the eyes with contaminated hands or clothing. Tight-fitting chemical splash goggles or a full-face shield should be worn if there is any chance of getting pesticides in the eyes, especially when pouring or mixing concentrates and handling dusts. When pouring from a container, keep the container below eye level to avoid splashing or spilling chemicals on your face or protective clothing.

Discussion of cypermethrin

Effects on Human

Cypermethrin is a highly used pesticide for the purpose of killing pests in households, agricultural crops and for several other reasons. Due to the severe increase in usage of Cypermethrin in daily life and its exposure to human beings to such extent, Cypermethrin has caused many health hazards which results into physiological impact, neurotoxicity, reproductive toxicity, molecular toxicity and so on.

Physiological Impact

Varying degree of mild to moderate toxic symptoms and behavioral changes in both male and female rats were observed by Grewal et al. [7,8]. on administration of Cypermethrin at repeated oral doses of 5ml and 20 mg/kg/day for 30 days. Hemorrhages within myocardium, disruption of branching structure, and loss of striation of cardiac tissue which is further followed by the thickening of alveolar septa in lungs, partial to extensive loss of various stages of spermatogenesis in testes, and loss of follicular cells and oocytes in ovaries [7]. The physiological effect of Cypermethrin is also seen on the reproductive health of male. Ahmad et.al. [9]. has concluded in their study that the exposure to Cypermethrin leads to the decrease in testicular and epididymal sperm count. Also, degeneration, arrested spermatogenesis and connective tissue proliferation in testes, while sperm-less seminal plasma and tailless spermatozoa in epididymis. Hence, it was inferred that Cypermethrin induces defects in sperms and pathological alterations in testes and epididymis [9].

Neurological Impacts

It has been observed that Cypermethrin-induced neurotoxicity through free radical formation, reduced antioxidant defense mechanism, and inhibition of acetylcholinesterase (AChE) activity [10]. Cypermethrin displays AChE inhibitory activity by interacting with

the anionic substrate binding site. Sharma et.al (2014) observed the resveratrol amelioratesby Cypermethrin-induced brain damage by reducing oxidative stress and by enhancing AChE activity in Westar rats [10]. The effect of Cypermethrin is also observed on the neurobehavioral screening. Mcdanielel.al has concluded that Cypermethrin causes neurobehavioral changes in pawing, burrowing, salivation and it also causes whole body tremor to choreoathetosis, hypothermia, and lower the motor activity. Pronounced neuromuscular weakness and equilibrium changes, retropulsion, lateral head movements, alterations in responses to various stimuli, and increased urination were also observed in cypermethrintoxicity [11].

Impacts at Molecular Level

The effect of pesticides mainly Cypermethrin at molecular level in human body is highly discussed in many studies [12]. It has been documented that the pyrethroids targets the sodium channel, and shows minor effects on the magnesium channel and Apse. A few studies state Cypermethrin isan axonic poison if it is chemically altered. It may bind to a protein in nerves at voltagegated sodium channel and prevent it from closing normally which results in continuous nerve stimulation [13]. It leads to tremors and lose of nervous control. Cypermethrin are most of the time used with pepperoni but oxide (PBO) which acts as synergist. PBO enhances the effect of Cypermethrin by inhibiting an enzyme (cytochrome P450) produced by the insect to break down the pesticides. In addition to that the deleterious effect of Cypermethrin has been observed on the nigrostriatal tissues.

Effects on reproductive system

Adverse effect of Cypermethrin in acute or chronic stage has been observed on the seminal gland [14]. Also, the toxic acute activity of the Cypermethrin was observed as an augmentation on the height and proliferation of the cells of the Secretory epithelium of this organ, while both the acute and chronic effects were evidenced by the progressive appearance of mast cells [15]. Rodriguez el.al [14]. Concluded that this phenomenon which could reveal an asymptomatic inflammatory status that, in fact might affect male infertility. The increasing use of Cypermethrin despite in acuteor chronic order may lead to cause the adverse effects on the male fertility in coming years. The food is also under the effect of Cypermethrin as it is highly used pesticide in agricultural practices. Despite that it is highly used in household activities to fight against insects, and regular use may cause chronic toxicity among the humans that may influences the fertility [13].

References

1. Valles SM, Koehler PG (1997) Insecticides Used in the Urban Environment: Mode of Action.
2. Frances SP (2007) Evaluation of bifenthrin and permethrin as barrier treatments for military tents against mosquitoes in Queensland, Australia. J Am Mosq Control Assoc 23(2): 208-212.
3. Hougard JM, Duchon S, Zaim M, Guillet P (2002) Bifenthrin: A Useful Pyrethroid Insecticide for Treatment of Mosquito Nets. J Med Entomol 39(3): 526-533.
4. ShrivastavaB, Shrivastava A, KumarA, Bhatt JL, Bajpai SP, et al. (2011) Impact of Deltamethrin on Environment, use as an Insecticide and its Bacterial degradation - A preliminary study. Int J Env Sci 1(5): 977-985.
5. Stanneck D, Kruedewagen EM, Fourie JJ, Horak IG, Davis W, et al. (2012) Efficacy of an imidacloprid/flumethrin collar against fleas, ticks, mites and lice on dogs. Parasites & Vectors 5: 102.
6. Olsen KR (1994) Poisoning and Drug Overdose (2nd edn.), Appleton & Lange, Norwalk, Connecticut, US.
7. Grewal KK, Sandhu GS, Kaur R, BrarRS, Sandhu HS (2010) Toxic impacts of cypermethrin on behavior and histology of certain tissues of albino rats. Toxicol Int 17 (2): 94-98.
8. Ikpeme EV, Okonko LE,Udensi OU(2016) Detrimental Effects of Chlorpyrifos and Cypermethrin on Reproductive Physiology of Male Albino Rats. Res J Env Toxicol 10(1): 68-74.
9. Ahmad L, Khan A, Khan MZ, Hussain I, Mahmood F, et al. (2012) Toxicopathological effects of cypermethrinupon male reproductive system in rabbits. Pesticide Biochemistry and Physiology 103 (3): 194-201.
10. SharmaP, Firdous S, Singh R (2014) Neurotixic effect of cypermethrin and protective role of resveratrol in wistar rats. Int J Nutrition, Pharmology, Neurological Diseases 4(2): 104-111.
11. Mcdaniel KL, MoserVC (1993) Utility of a neurobehavioral screening battery for differentiating the effects of two pyrethroids, permethrin and cypermethrin; Neurotoxicology andTeratology 15(2): 71-83.
12. Kakko I, ToimelaT, Tähti H (2003) The synaptosomal membrane bound AT Pase as a target for the neurotoxic effects of pyrethroids, permethrin and cypermethrin; Chemosphere 51(6): 475-480.
13. Manna S, Bhattacharyya D, Mandal TK,Dey S (2005) Neuropharmacological effects of alfa-cypermethrin in rats. Indian J Pharmacol 37(1): 18-20.
14. Rodriguez H, Tamayo C, Inostroza J, Soto C, Bustos Obrego´n E, et al. (2009) Cypermethrin effects on the adult mice seminal glands. Ecotoxicol and Environmental Safety 72: 658-662.
15. Mun JY, Lee WY, Han SS (2005). Effects of cypermethrin on the dopaminergic neurons in the progressive hemiparkinsonian rats. ToxicolMech Methods 15(6): 399-404.
16. Nasuti C,Gabbianelli R,Falcioni ML, Di Stefan, A,Sozio P(2007) Cantalamessa, F. Dopaminergic system modulation, behavioral changes and oxidative stress after neonatal administration of pyrethroids. Toxicology 229(3): 194-205.
17. Manna S, Bhattacharyya D, Mandal TK, Dey S (2005) Neuropharmacological effects of alfa-cypermethrin in rats. Indian J Pharmacol 37(1): 18-20.
18. Kale M, Rathore N, John S, Bhatnagar D (1999) Lipid peroxidative damage on pyrethroid exposure and alterations in antioxidant status in rat erythrocytes: a possible involvement of reactive oxygen species. Toxicol Lett 105(3): 197-205.
19. Giray B, Gurbay A, Hincal F (2001) Cypermethrin-induced oxidative stress in rat brain and liver is prevented by Vitamin E or allopurinol. Toxicol Lett 118(3): 139-146.